आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित "चमत्कारत्व" के परिपेक्ष्य में आचार्य ज्ञानसागर द्वारा विरचित "जयोदय" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

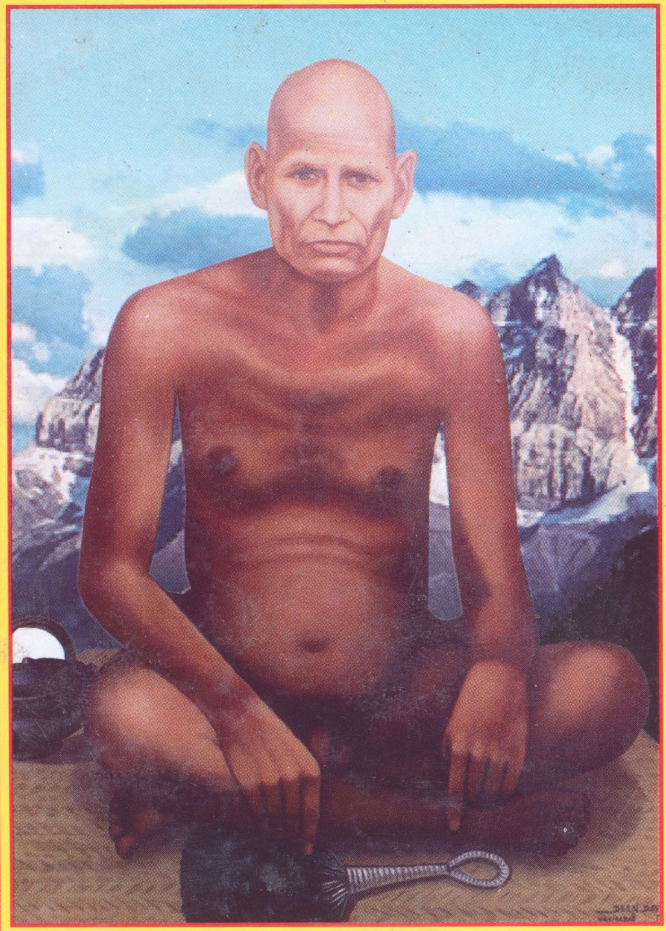

महाकवि आचार्य 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन धर्मप्रभावना समिति

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र नसियांजी

दादाबाड़ी, कोटा (राज.)

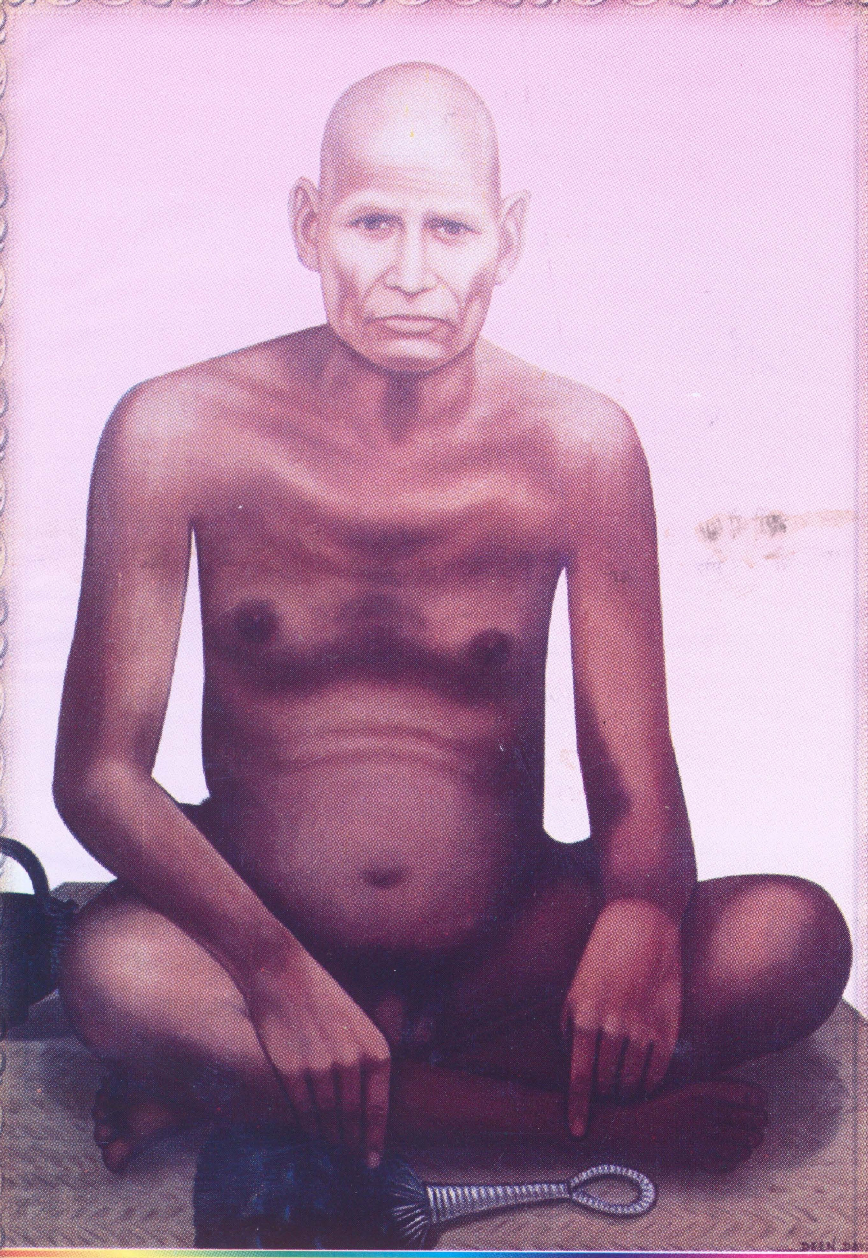

महाकवि आचार्य
108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

प्रकाशकीय समर्पण

आ. श्री विद्यासागरजी महाराज

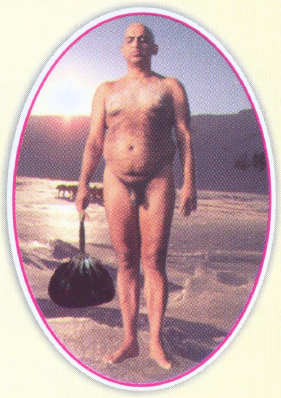

मु. श्री सुधासागरजी महाराज

पंचाचार युक्त

महाकवि, दार्शनिक विचारक,
धर्मदिवाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द
की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों
में
एवं इनके परम सुयोग्य शिष्य
ज्ञान, ध्यान तप युक्त
श्रमण संस्कृति के रक्षक, तीर्थ क्षेत्र जीर्णोद्धारक, ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र
एवं श्रमण संस्कृति संस्थान (छात्रावास), सांगानेर एवं महावीर संस्थान
(छात्रावास) कोटा के सम्प्रेरक वात्सल्य मूर्ति, समता स्वाभावी,
जिनवाणी के यथार्थ उद्घोषक, सांगानेर एवं चाँदखेडी तीर्थ
क्षेत्र के भूगर्भ से यक्षरक्षित रत्नमयी चैत्यालय प्रगट
करने वाले आध्यात्मिकएवं दार्शनिक संत मुनि
श्री सुधासागरजी महाराज के कर कमलों
में आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श
केन्द्र, ब्यावर (राज.)
एवं
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी, सांगानेर, जयपुर
की ओर से सादर समर्पित

आचार्य क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित "चमत्कारतत्व" के परिप्रेक्ष्य में जैन मुनि श्री ज्ञानसागर द्वारा विरचित "जयोदय" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

- प्रेरणा एवं आशीर्वाद -

मुनि श्री 108 सुधासागर जी महाराज

क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज

क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज

अनुसन्धात्री :

श्रीमती मोनिका वार्ष्णेय

एम. ए. (संस्कृत) शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

- प्रकाशक -

श्री दिगम्बर जैन धर्मप्रभावना समिति

एवं

श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र

नसियां दादावाड़ी, कोटा (राज.)

प्रेरक प्रसंग संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि पुंगव श्री सुधासागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के ऐतिहासिक पावन वर्षायोग, सन् 2001 कोटा के शुभ अवसर पर प्रकाशित

संस्करण - 2001 ई.

प्रतियाँ - 1000

मूल्य - 50/- पुनः प्रकाशन हेतु सुरक्षित

प्राप्ति स्थान -

भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मंदिर
संघीजी सांगानेर, जयपुर (राज.) फोन-2730390

मुद्रक - पॉपुलर प्रिन्टर्स
मोती डूंगरी, फतेह टीवा मार्ग, जयपुर
फोन - 2606591, 2606883

आ. क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित ''चमत्कारतव'' के परिप्रेक्ष्य में आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा विरचित ''जयोदय'' महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, की
पी.एच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

मौलिक शोध प्रबन्ध

अनुसन्धात्री :

श्रीमती मोनिका वार्ष्णेय

एम. ए. (संस्कृत)
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली

1999

Dr. (Smt.) Pramod Bala Misra,

M.A., Ph.D.

Reader, Deptt. of Sanskrit,

Bareilly College,

M.J.P. Rohilkhand University,

Bareilly

Cartified that the thesis entitled "आचार्य क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित "चमत्कार तत्त्व" के परिप्रेक्ष्य में जैन मुनि श्री ज्ञानसागर द्वारा विरचित "जयोदय" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन" has been prepared by Smt. Monika Varshney under my supervision. Smt. Monika Varshney worked under me for the period required under ordinances of this University and the thesis embodiea the results of her own observations and original investigations, conducted during the period.

The thesis is of the standard expected of a Candidate for the degree of Doctor of Philosphy and I, therefore, recommend that it may be sent for evaluation.

Dated : 01.09.99

(P. B. Mishra)
Supervisor

अभिबन्धन

जिनकी साधना के चमत्कारिक तत्व सहस्र रश्मि बनकर प्रकाशित होते है, जिनका मन वचन काम विशुद्ध परमाणुओं से परिपूर्ण हो जो चमत्कारों की पर्याय हैं।

जिनकी चरण रज से अनेकों क्षेत्र तीर्थ बन गये, जिनके आर्शीवाद की शीतल छाया ने हमें शोधकार्य में किचिंत भी संताप्ति नहीं होने दिया ऐसे महामहिम, संत मुनि पुंगव की सुधासागर जी महाराज के चरणों में बार-बार अभिबंधन। नमोस्तु।

मोनिका वार्ष्णेय

प्रकाशकीय

भारत के सांस्कृतिक विकास की कथा अति प्राचीन है। भारत वसुन्धरा के उद्यान में अनेक धर्म दर्शन और विचारधाराओं के विविधवर्ण-सुमन खिले हैं, जिनकी सुरभि से बेचैन विश्व को त्राण मिला है। तपः पूत आचार्यों/ऋषियों/मनीषियों का समग्र चिन्तन ही भारतीय संस्कृति का आधार है। जैन धर्म प्रवर्तक तीर्थंकरों तथा जैनाचार्यों ने भारतीय संस्कृति के उन्नयन में जो योगदान किया है, वह सदा अविस्मरणीय रहेगा। पुरातत्व, वास्तुकला, चित्रकला तथा राजनीति के क्षेत्र में इस धारा के अवदान को भूलकर हम भारतीय संस्कृति की पूर्णता को आत्मसात् कर ही नहीं सकते। साहित्यिक क्षेत्र की प्रत्येक विद्या में उनके द्वारा सृजित महनीय ग्रन्थों से सरस्वती भण्डार की श्रीवृद्धि हुयी है।

अद्यावधि उपलब्ध जैनों के प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है कि जैन साहित्य लेखन की परम्परा कम से कम ढाई सहस्त्र वर्षों से अजस्त्र व अविच्छिन्न गति से प्रवाहशील है इस अन्तराल में जैनाचार्यों ने सिद्धान्त, धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र, पुराण, आचारशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकारण, आयुर्वेद, वास्तु-कला, ज्योतिष और राजनीति आदि विषयों पर विविध विधाओं में गम्भीर साहित्य का सृजन किया है। जैनाचार्यों ने प्राकृत. अपभ्रंश व संस्कृत भाषा के साथ युग की आवश्यकता के अनुसार किसी भाषा विशेष के बन्धन में न बंधकर सभी भाषाओं में प्रचुर मात्रा में साहित्य लिखा है।

कालदोष के कारण, समाज में अर्थ की प्रधानता के बढ़ने से साम्प्रदायिक व दुराग्राही संकीर्णमना राजाओं द्वारा दिगम्बर साधुओं के विचरण पर प्रतिबन्ध लगने से तथा अन्यान्य कारणों से जैन साहित्य-मंदाकिनी की धारा अवरुद्ध सी होने लगी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में महाकवि पं. भूरामल शास्त्री (महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी) का उधय हुआ, जिन्होंने सिद्धान्त, धर्म दर्शन अध्यात्म के अतिरिक्त संस्कृत व महाकाव्यों का प्रणयन कर साहित्य-भागीरथी का पुनः प्रवचन कर दिया और तबसे जैन साहित्य रचना को पुनर्जीवन मिला और बीसवीं शताब्दी में अनेक सारस्वत आचार्यों/मुनियों/गृहस्थ विद्वानों ने गहन अध्ययन करते हुए महनीय साहित्य की रचना की और अब भी

अनेक आचार्यों, मुनियों व विद्वान् गृहस्थों द्वारा यह परम्परा चल रही है।

ग्रन्थों की सर्जना मात्र से कोई संस्कृति विश्व साहित्य में अपना स्थान नहीं बना पाती। विश्व साहित्य में स्थापित होने के लिये इन ग्रन्थों में छिपे तत्वों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता है क्योंकि ये विश्व की युगीन समस्याओं के समाधान करने में सक्षम हैं। इस दृष्टि से ग्रन्थ प्रकाशन, ग्रन्थालयों की स्थापना के साथ इन पर व्यापक और तुलनात्मक अध्ययन भी अपेक्षित है। हर्ष का विषय है कि सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज तथा उनके शिष्यों तपोधन मुनिवृन्द की अनुकरणीय ज्ञानाराधना (चरित्राराधना में तो उनका संघ प्रमाणभूत है ही) से समाज में ऐसी प्रेरणा जगी कि जैनाजैन विद्यार्थियों का बड़ा समूह अब विश्वविद्यालयीय शोधापाधि हेतु जैन विद्या के अंगों को ही विषय बना रहा है, जो कि जैन साहित्य के विकास का सूचक है।

जैन संस्कृति के धर्मायतनों के सौभाग्य तब और भी ज्यादा बढ़े जब इतिहास निर्माता, महान् ज्योतिपुञ्ज, मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के चरण राजस्थान की ओर बढ़े। उनके पदार्पण से सांगानेर और अजमेर की संगोष्ठियों की सफलता के पश्चात् ब्यावर में जनवरी, 95 में राष्ट्रीय ज्ञानसागर संगोष्ठी आयोजित की गयी, जहाँ विद्वानों ने आ, ज्ञानसागर वांङमय पर महानिबन्ध लेखन कराने, शोधार्थियों के शोध कार्यों में आगत बाधाओं का निराकरण, उन्हें यथावश्यक सहायता प्रदान करने तथा जैन विद्या के शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन करने के सुझाव दिये। अतः विद्वानों के भावनानुसार परमपूज्य मुनिश्री के मंगलमय आशीष से ब्यावर में आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र की स्थापना की गयी।

परमपूज्य मुनिवर श्री सुधासागरजी महराजार की कृपा व सत्प्रेरणा से केन्द्र के माध्यम से बरकतउल्लाह खां विश्वविद्यालय मेरठ, रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय नैनीताल, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय वाराणसी, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर व रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर आदि से अनेक शोध छात्रों ने आ. ज्ञानसागर वांङ्मय को आधार बनाकर पीएच. डी. उपाधिनिमित्त पंजीकरण कराया/पंजीकरण हेतु आवेदन किया है। केन्द्र माध्यम से इन शोधार्थियों को मुनि श्री के आशीष पूर्वक साहित्य व छात्रवृत्ति उपलब्ध करायी जा रही है तथा अन्य शोधार्थियों

को भी पंजीकरणोपरान्त छात्रवृत्ति उपलब्ध कराने की योजना है।

मुनि पुंगव श्री सुधासागरजी के ही 1996 जयपुर के ऐतिहासिक वर्षायोग के उपरान्त मुनिश्री के ही आशीर्वाद से श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संधीजी सांगानेर में भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला की स्थापना हुई तथा भारतवर्ष का सम्पूर्ण दिगम्बर जन साहित्य का विक्रय केन्द्र भी स्थापित किया गया।

तभी से आचार्य ज्ञानसागरवागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर तथा भगवान ऋषभदेव ग्रन्थ माला सांगानेर की सहभागिता में सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशन कर रहे हैं, अभी तक ग्रन्थमाला से 130 ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

बरेली कॉलेज के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. श्रीमती प्रमोदबाला मिश्रा के निर्देशन में श्रीमती मोनिका वार्ष्णेय ने शब्द एवं अर्थ की गम्भीर्य तपस्या के बल पर लिखा गया यह शोध प्रबंध साहित्य जगत की आदर्शताओं में शिरोमणी स्थान रखेगा। इस शोध प्रबन्ध में दो महान शब्द साधकों की तुलनात्मक गवेषणा चमत्कृत हुई है इस प्रबंध में शोधार्थी ने आ. क्षेमेन्द्र के चमत्कृत तत्वों को महाकवि आचार्य ज्ञानसागर द्वारा श्रृंगारित कराया है। हमारा केन्द्र डॉ. मोनिका वार्ष्णेय का आभार व्यक्त करता है। आपकी शोध प्रबन्धकीय साहित्य सेवा सदैव स्मरणीय रहेगी।

चूँकि पूज्य महाराजश्री का मंगल-आशीष एवं ध्यान जैनाचार्यों द्वारा विरचित अप्रकाशित, अनुपलब्ध साहित्य के साथ जैन विद्या के अंगों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों में किये शोध कार्यों के प्रकाशन की ओर भी गया है, तथा साहित्य पर्यालोचन सृजन प्रकाशन के सत्कर्म में संलग्न संस्थाओं और विद्वानों के प्रोत्साहनार्थ उनका मंगल आशीष रहा करता है। अतः हमें विश्वास है कि साहित्य उन्नयन एवं प्रसार के कार्यो में ऐसी गति मिलेगी, मानो समराट खारवेल का समय पुनः प्रत्यावर्तित हो गया हो। एक बार पुनः प्रज्ञा एवं चरित्र के पुन्जीभूत देह के पावन कमलों में सादर सश्रद्धा नमोऽस्तु।

सुधासागर - चरण भ्रमर
अरुणकुमार शास्त्री 'व्याकरणाचार्य'
निदेशक, आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र
ब्यावर (राज.)

विषय सूची

विवरण		पृष्ठ संख्या
आद्य वक्तव्य		11–16
प्रस्तावना		17–21
प्रथम अध्याय	: आचार्य क्षेमेन्द्र, उनका '**कविकण्ठाभरण**' और '**चमत्कार**' का स्वरुप	22–41
द्वितीय अध्याय	: मुनि ज्ञानसागर और '**जयोदय**'	**42–108**
तृतीय अध्याय	: '**अविचारितरमणीय**' और '**विचार्यमाणरमणीय**' चमत्कार तथा '**जयोदय**'	**109–136**
चतुर्थ अध्याय	: '**समस्तसूक्तव्यापी**' तथा '**सूक्तेकदेशदृश्य चमत्कार**' तथा '**जयोदय**'	**137–160**
पंचम अध्याय	: '**शब्दगत**' '**अर्थगत**' और '**शब्दार्थगत**' चमत्कार तथा '**जयोदय**'	161–190
षष्ठ अध्याय	: '**अलंकारगत चमत्कार**' तथा '**जयोदय**'	**191–242**
सप्तम अध्याय	: '**रसगत चमत्कार**' तथा '**जयोदय**'	243–263
अष्टम अध्याय	: '**प्रख्यातवृत्तगत चमत्कार**' तथा '**जयोदय**'	264–277
नवम अध्याय	: **उपसंहार**	278–285
प्रथम परिशिष्ट	: '**जयोदय**' के सुभाषित।	286–293
द्वितीय परिशिष्ट	: अनुशीलित एवं सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची	294–300

आद्य वक्तव्य

राजस्थान की राजधानी जयपुर नगर से 16 किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में सांगानेर प्राचीन तथा वैभवपूर्ण नगर है। यहाँ अनेक विशाल जिनमंदिर तथा धवल और उत्तुंग कलापूर्ण प्रासाद हैं। किसी समय यहाँ चांदी एवं जवाहरात का प्रचुर मात्रा में व्यवसाय होता था। यहाँ 700 जैन श्रावकों के घर थे। राजनैतिक कारणों से यहाँ उथल-पुथल मचती रही और इसकी समृद्धि में ह्रास होता गया, किन्तु अनेक प्राचीन लेखकों के उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि यहाँ के श्रावक धर्मकार्य में सदैव अग्रणी रहे और विविध महोत्सवो के साथ यहाँ साहित्यिक गतिविधियाँ चलती रही।

सांगानेर में एक जैन मंदिर अपनी स्थापत्यकला और पुरातत्त्व के लिए विश्वविख्यात है तथा प्रतिदिन अच्छी संख्या में देशी और विदेशी पर्यटक यहाँ आते रहते हैं। यह मन्दिर संघी जी के मन्दिर के नाम से प्रख्यात है। यहाँ मूलनायक भगवान आदिनाथ की सुन्दर एवं अतिशयकारी प्रतिमा है। मन्दिर में सैकड़ों की संख्या में जिनबिम्ब विराजमान है। यह मन्दिर सात मंजिल का है, जिसकी दो मंजिल ऊपर व पाँच नीचे हैं। मध्य में यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित प्राचीन जिन चैत्यालय है। यहाँ अतिशयकारी, मनोज्ञ अनेक जिन बिम्ब विराजमान है। यहाँ मात्र बालयति दिगम्बर साधु ही जा सकते हैं तथा एक निश्चित अवधि के लिए संकल्प पूर्वक ही प्रतिमायें दर्शनार्थ बाहर विराजमान कर सकते हैं। 20 वीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का पदार्पण यहाँ सन् 1933 की मगसिर वदी तेरस को हुआ। उन्होंने मगसिर सुदी दशमी को गुफा में प्रवेशकर चैत्यालय के दर्शन किए और उसे बाहर लाए। जून 1971 में आचार्य देशभूषण जी महाराज तथा 1987 में आचार्य विमलसागर जी महाराज एवं 10 मई 1992 को आचार्य कुन्थुसागर महाराज ने इस मनोहारी चैत्यालय के दर्शन जनता को कराए। वर्ष 1994 ई. में यहाँ पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज व क्षुल्लक गम्भीरसागर जी महाराज एवं धैर्यसागर जी महाराज के साथ सांगानेर पधारे। उनके सान्निध्य में 9 जून से 11 जून तक अखिल भारतवर्षीय विद्वत् संगोष्ठी हुई, जिसमें लगभग 40 विद्वान् पधारे और मुझे भी इसमें आलेख वाचन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दिनांक 12 जून को पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी ने संघी जी के मन्दिर में स्थित

उपर्युक्त चैत्यालय के दर्शन हजारों लोगों को कराए। इन्द्र भी इन अतिशयकारी जिनबिम्बों को देखकर प्रसन्न हो उठा और उसने जून की तपती हुई दुपहरी की मध्यान्ह बेला में मन्दिर परिसर में जल बरसाया, जिससे सभी नरनारी प्रसन्न हो उठे। इन्द्र द्वारा यह जलाभिषेक उनके हर्षातिरेक का कारण बना। अभिषेक के बाद पूज्य सुधासागर जी महाराज का मांगलिक प्रवचन हुआ, जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ थी।

गर हो जनम दुबारा मानव जनम मिले।
फिर से यही जिनालय जिनवर शरण मिले॥

तीन दिन तक लाखों लोगों ने इस महातिशयकारी चैत्यालय के दर्शन किए व पूर्व संकल्पानुसार 15 जून 1994 को प्रातःकाल चैत्यालय को पुनः गुफा में विराजमान कर दिया।

पाँच वर्ष बाद क्षेत्र कमेटी ने भूगर्भ चैत्यालय को निकालने की पुनः प्रार्थना की। कमेटी की प्रार्थना सफल हुई। जब मुनि श्री ने चैत्यालय को निकालने की स्वीकृति दी। चारो ओर हर्ष की लहर उमड़ पड़ी। 20 जून 1999 में दूसरी बार पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने प्रातः 7 बजे प्रवेश किया। लगभग 45/50 मिनट के बाद मुनि श्री तीसरी मंजिल के प्रथम जिनालय के साथ–साथ अपनी साधना/तपस्याके बल पर चौथी मंजिल में प्रवेश कर दूसरा चैत्यालय भी निकाल कर लाये। चौथी मंजिल तक आज तक कोई भी प्रवेश नहीं कर पाया था। प्रथम बार मुनि श्री ही पहुँचे थे। दूसरे चैत्यालय में 32 रत्नमयी जिन प्रतिमाएं है। 9 फुट 11 इंची 20 खड़गासन 1/1.5 फुट विशाल पन्ना रत्न की आदिनाथ की प्रतिमा जी मनोहारी महाअतिशयकारी थी। 9 प्रतिमायें पदमासन छोटी–छोटी प्रतिमायें थी। सभी प्रतिमायें नाना रत्नों की थी। विश्व के सबसे अधिक प्राचीन महाअतिशयकारी जिन बिम्बों के दर्शन कराने वाले महामुनि श्री सुधा सागर महाराज को हम सब पाकर धन्य हैं। लाखों लोगों को उपर्युक्त चैत्यालय की मनोहारी प्रतिमाओं के दर्शन कर सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अ. भा. विद्वत परिषद के लगभग 150 विद्वानों ने इन ऐतिहासिक महा अतिशयकारी प्रतिमाओं के दर्शन अभिषेक कर अपने जीवन को धन्य किया। सभी विद्वानों ने इन प्रतिमाओं को अतिप्राचीन एवं महा अतिशयकारी बताया। रात दिन दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहा। पूरे 24 घण्टे आसानी से दर्शन हो सकते थे। दर्शनार्थी यात्रियों की निरन्तर हजारों की संख्या में दीर्घावधि तक कतार मैंने इसी जैन मन्दिर में देखी।

5 दिनों में लगभग दस लाख लोगों ने इस अमृत सिद्धि दर्शन महोत्सव में पधारकर इन अलौकिक/अनुपम रत्नमयी प्रतिमाओं का दर्शनकर जीवन सफल किया।

इस महोत्सव की सबसे बड़ी राष्ट्रीय उपलब्धि यह रही कि इसी समय देश में पाकिस्तान से कारगिल युद्ध चल रहा था। सैनिक मर रहे थे। मुनि श्री की प्रेरणा से इस युद्ध की शान्ति के लिए इन जिनबिम्बों का अभिषेक कर गन्धोदक भेजा गया, तीन दिन के अन्दर ही युद्धविराम हो गया। सारे देश में शान्ति साम्राज्य छा गया। राष्ट्र ने भी इन जिन बिम्बों के अतिशय को स्वीकार किया, नमन किया। इसी अवसर पर मुनि श्री के उद्‌बोधन से प्रभावित होकर महोत्सव कमेटी ने शहीद परिवारों की सहायता हेतु 11 लाख रुपये राजस्थान मुख्यमंत्री अशोक गहलोत को भेंट किये। मुख्यमंत्री ने कहा कि विश्व में पहली बार धार्मिक महोत्सव समिति की तरफ से इतनी बढ़ी राशि राष्ट्र के नाम से प्राप्त हुई हैं। यह धर्म एवं राष्ट्र एकता का शुभ लक्षण है। पांच दिन तक निरन्तर धारावाहिक मुनि श्री क्षेत्र एवं इन जिनबिम्बों की ऐतिहासिक अतिशय के ऊपर महत्त्वपूर्ण प्रवचन हुए।

सरकार ने इस महोत्सव में पूरा सहयोग दिया 500 पुलिसकर्मियों को तैनात किये, अलग से महोत्सव के लिए मजिस्ट्रेट नियुक्त किये। समिति द्वारा सारे जयपुर परिसर, मंडी, धर्मशालाओं, स्कूलों में लगभग 5000 कमरों की व्यवस्था की गई। लगभग 5 लाख लोगों की भोजन व्यवस्था की गई। इतना बड़ा जन सैलाब मैंने अपने जीवन में जैन समाज के किसी महोत्सव में कभी नहीं देखा। सम्पूर्ण कार्य पूर्णतः सफल हुए।

इसी अवसर पर 23 एवं 24 जून 1999 को प्रख्यात अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत परिषद का ऐतिहासिक स्वर्ण जयंती अधिवेशन सम्पन्न हुआ। विद्वानों को मुनि श्री ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये।

पूज्य महाराज जी के पदार्पण से सांगानेर मन्दिर की चतुर्दिल प्रगति हुई। अनेक प्रकार का निर्माण कार्य अब भी चर रहा है। विद्या के क्षेत्र में मुनि श्री ने क्रान्तिकारी कदम उठाया। जिन्होंने दिगम्बर जैन नसियां संघी जी के आधीन खाली पड़े 5 बीघा भूखण्ड पर सांगानेर में श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान की स्थापना कराई। इसमें महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास का नव निर्माण कार्य पूर्ण हो गया और इसमें लगभग 150 से अधिक छात्र रहकर लौकिक अध्ययन के साथ-साथ धार्मिक अध्ययन करके जैन संस्कृति की रक्षा में अग्रणी रहेंगे। इसी के समीप

आचार्य संस्कृत महाविद्यालय के भवन का भी निर्माण कार्य चल रहा है। छात्रों को भोजन, आवास आदि समस्त सुविधाऐं निःशुल्क प्रदान की जाती है।

यहीं पर नसियाँ के एक भूखण्ड में श्री दिगम्बर जैन वीरोदय मंदिर का विशाल रूप से निर्माण किया जा रहा है, जिसमें 11 फुट उत्तंग पद्मासन वीर भगवन की प्रतिमा विराजमान की जा रही है। जिसका नाम मुनि श्री ने दिगम्बर जैन वीरोदय मंदिर रखा है तथा पूरी कॉलोनी का नाम वीरोदय नगर रखा है।

पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज की प्रेरणा से सांगानेर में साहित्य के क्षेत्र में एक युगान्तरकारी कार्य हुआ हैं यहाँ संघी जी मन्दिर में दिगम्बर जैन साहित्य के प्रकाशन एवं विक्रय का बहुत बड़ा केन्द्र भगवान ऋषभ देव ग्रन्थमाला के नाम से स्थापित हो चुका है। जहाँ सभी प्रकार का जैन साहित्य सुलभ है। यहाँ स्थापित **भगवान ऋषभ देव ग्रन्थमाला** से शताधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। पू. आचार्य ज्ञान सागर महाराज का सम्पूर्ण साहित्य यहाँसुलभ है। आधुनिक विद्वानों के लगभग 30 शोधप्रबन्ध यहाँ से प्रकाशित हो चुके है। यह संस्था आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र ब्यावर की सहभागिनी है। ब्यावर से भी पूज्य मुनि श्री की प्रेरणा से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

मुनि श्री की प्रेरणा से ललितपुर साँगानेर, जयपुर, अजमेर, ब्यावर, मदनगंज, किशनगढ़, सीकर तथा अलवर आदि अनेक स्थानों पर विद्वत संगोष्ठियों का आयोजन हुआ है। इन संगोष्ठियों में सर्वाधिक जैन एवं अजैन विद्वानों ने निरन्तर कई दिन उपस्थित रहकर तथा अपने आलेखों का वाचन कर अपनी ज्ञान गरिमा का विस्तार किया है। पूज्य मुनि श्री का उद्बोधन उन्हें निरन्तर प्राप्त होता रहा है। महाराज श्री का जहाँ – जहाँ चातुर्मास होता है, वहाँ कम से कम दिन में एक बार तो उनके अमृतमयी प्रवचन का लाभ जनसमुदाय को मिल ही जाता है। दशलक्षण पर्व के सुअवसर पर बड़े – बड़े श्रावक संस्कार शिविरों का आयोजन तथा उसमें प्रतिदिन महाराज श्री द्वारा 7 – 7 घण्टे का उद्बोधन श्रावकों में धर्म के संस्कार जागृत कराने में सहायक होता है।

पूज्य सुधासागर जी की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है – अजमेर के पास दिगम्बर जैन ज्ञानोदय तीर्थ क्षेत्र, नारेली का विकास। यहाँ धर्मशाला का निर्माण हो चुका है। सरकार द्वारा प्रदत्त 300 बीघा भूखण्ड पर प्राचीन

शैली में पाषाण के त्रिकाल चौबीसी मंदिर, सहस्त्रकूट आदि अनेक मंदिर का निर्माण किया जा रहा है। जिसमें जैन संस्कृति युगों – युगों तक वृद्धिंगत हो गई है।

पहाड़ी पर और नीचे मन्दिर निर्माण का कार्य जारी है तथा यहाँ एक विशाल गौशाला भी स्थापित हो चुकी है। पूर्ण विकास होने पर यह आशा की जाती है कि जैन विद्या का यह एक बहुत बड़ा केन्द्र बनेगा।

पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी मेरे साहित्य प्रकाशन के बहुत बड़े प्रेरणा स्त्रोत रहे हैं, उनके आशीर्वाद से मुझसे संबंधित अनेक ग्रन्थ ब्यावर व सांगानेर की उपर्युक्त ग्रन्थ मालाओं से प्रकाशित हुए हैं, जिनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं –

1. आचार्य ज्ञानसागर द्वारा स्मृत साहित्य
2. बौद्ध दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा।
3. आदिब्रह्मा ऋषभदेव।
4. अञ्जना पवनञ्जय नाटक।
5. अनेकान्त स्याद्वाद विमर्श।
6. सल्लेखना दर्शन
7. जैन दर्शन में रत्नत्रय का स्वरूप (सम्पादन)
   ले. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन
8. जैन राजनैतिक चिन्तनधारा (सम्पादन)
   ले. डॉ. विजयलक्ष्मी जैन
9. हे ज्ञानदीप आगम प्रणाम
10. आचार्य विद्यासागर व्यक्तित्व एवं काव्यकला (सम्पादन)
    ले. डॉ. माया जैन
11. चरण पणमामि विसुद्धतंर (सम्पादन)
12. सुधासागर हिन्दी अंग्रेजी जैन शब्दकोश
13. सांख्यदर्शन की शास्त्रीय समीक्षा (सम्पादन)
    ले. डॉ. शक्तिबाला कौशल
14. नगनत्व क्यों और कैसे ? (सम्पादन)
    प्रवचन : मुनि श्री सुधा सागर जी

15. जयोदय महाकाव्य परिशीलन (सम्पादन)

16. सुदर्शनोदय – अंग्रेजी अनुवाद (सम्पादन)
अनु. डॉ. बलजीत सिंह

17. समुद्रदत्त चरित्र – अंग्रेजी अनुवाद (सम्पादन)
अनु. डॉ. राजहंस गुप्ता

18. आचार्य ज्ञानसागर और उनकी साहित्य साधना (सम्पादन)

जयोदय महाकाव्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन नामक अभिनव पुष्प भी उन्हीं की प्रेरणा से प्रकाशित होकर पाठकों के कर कमलों में सुशोभित होने वाला है। मैं उनके इस साहित्य प्रेम के प्रति नतमस्तक हूँ। प्रत्येक साधु इस प्रकार साहित्य प्रकाशन का प्रेरणा स्त्रोत बन जाय तो दिगम्बर जैन साहित्य की सैकड़ो कृतियाँ ग्रन्थ भण्डारों से निकलकर जन जन के स्वाध्याय का केन्द्र बन सकती है और साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में दिगम्बर जैन समाज पिछड़ा न रहे। मैं मुनि श्री के ज्ञान गाम्भीर्य, प्रतिभा, विद्या और विद्वानों के प्रति अनुराग, तीर्थसंरक्षण और श्रावक संस्कारों के उन्नयन में योगदान रूप अनेक गुणों के कारण उनके प्रति नतमस्तक हूँ तथा उनके प्रसाद से निरन्तर जिनवाणी की आराधना करता रहूँ, यही सुझाव व्यक्त करता हूँ। जैनं जयतु शासनम्।

– ***रमेशचन्द्र जैन***

प्रस्तावना

जैन महर्षियों ने हर काल में ज्ञान - विज्ञान की सभी शाखाओं और विद्याओं में महनीय साहित्य की सर्जना कर भारतीय संस्कृत को समृद्ध किया है। यद्यपि जैन वाड्मय में सिद्धान्त, दर्शन, धर्म, तर्कशास्त्र, योग तथा अध्यात्म, आयुर्वेद, वास्तुशास्त्र और पुराण इतिहास पर जैन मुनियों के ग्रन्थ दृष्टिगत होते हैं। लेकिन इसके साथ कोमलकान्त पदावली से सम्बलित सरल काव्यों की रचना भी जैन साहित्यकारों द्वारा की गयी है। जैनाचार्यों का प्राचीनतम साहित्य विविध प्रकारों के प्राकृतों और अपभ्रंश भाषा में लिखा गया है। लेकिन विगत शताब्दियों से जैन ग्रन्थकारों ने संस्कृत भाषा को अपनाकर युगानुरुप ग्रन्थों का प्रणयन किया। (एक समय ऐसा आया जब जैन मुनियों ने यह मान लिया था कि अब साहित्य में अकलंक जैसा तार्किक जिनसेन जैसा पुराणकार और हरिशचन्द्र जैसे महाकवि का उदय अनिश्चित है) परन्तु जैन संस्कृत काव्य प्रकाश में **महाकवि पं. भूरामल जी** शास्त्री के रूप में एक देदीप्यमान नक्षत्र का उदय हुआ। सूक्ष्म से सूक्ष्मतम रहस्यों को अत्यन्त सुगमता से हृदयग्राह्य बना देने वाले पूज्य मुनि श्री ज्ञान सागर जी महान सन्त हैं।

काव्यशास्त्र की कसौटी पर खरी उतरने वाली रचनाओं की जो धारा सूख गयी थी उसे इस रससिद्ध कविराज ने विशाल रससिक्त रचनाओं के माध्यम से पुनः प्लावित कर दिया। समाज में साहित्य के प्रति उदासीन वृत्ति तथा महाकवि की यश आदि से दूर निजात रमण की वृत्ति के कारण न तो इस महाकवि के महनीय व्यक्तित्व से साहित्य के अध्येता परिचित हो सके और न ही इस महाकवि के दार्शनिक ग्रन्थ प्रकाश में आ सके। परन्तु रत्नों की आभा लम्बे समय तक छिपी नहीं रह सकती है। आपके वाड्मय में श्रद्धा और विश्वास के रास्ते भगवान महावीर की भक्ति उनका साक्षात्कार और बोध को प्राप्त करा देना उनका लक्ष्य होता था। उनकी रचनाओं में मैंने देखा कि अन्तःकरण को एक अद्भुत शान्ति अथवा जीवन का समाधान मिलता है। आपके काव्यों में चिन्तन और लेखन की खूबी है। उनमें धर्म की मर्यादा और लोक की भावना का अद्भुत सामंजस्य होता है। उनकी कविताओं में भाषा की सुगमता सिद्धान्तों के प्रतिपादन में श्रद्धा व भक्ति को अन्तर्हृदय में स्थापित कर देना उनका वैशिष्ट्य है। श्री ज्ञान सागर ज़ी का चरित्र ही चमत्कार है। उसमें जो लालित्य साहित्यिक विच्छिति, चारुत्व और रमणीयता निहित है उसकी आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा **कविकण्ठाभरण** मैं प्रतिपादित चमत्कार तत्त्व के

आलोक में समीक्षा करने के उद्देश्य से मैं इस शोध कार्य में प्रवृत्त हुयी हूँ। मुझ जैसी तुच्छ और अल्पज्ञ व्यक्ति द्वारा यह शोध कार्य किया गया है, जो सन्तों, विद्वानों, समाज के प्रबुद्ध वर्ग की प्रेरणा, कृपा, सहयोग व आशीष से ही सम्भव हो सका है।

प्रस्तुत शोध कार्य की प्रेरणा

संस्कृत विषय में प्रथम श्रेणी में एम.ए. करने के पश्चात् मेरी पूजनीया पितामही एवं परम आदरणीय माता – पिता ने मुझे शोध कार्य के लिए प्रेरित किया। उनसे प्रेरित होकर ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हो सकी, तथा डॉ. कृष्णकान्त शुक्लजी के निर्देशन में संक्षिप्त रूपरेखा स्वीकृति हेतु प्रस्तुत कर दी। स्वीकृति मिलने पर मैं शोध कार्य में लग गयी। संयोगवश मध्य में ही अचानक दुर्घटनावश से शुक्ल जी का देहान्त हो गया और मेरा शोध कार्य मझधार में ही रह गया तब उसको पूरा करने के लिए मैंने डॉ. श्रीमती प्रमोद बाला मिश्रा के निर्देशन में अपना शोध – कार्य पूर्ण किया।

शोध प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय

मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज (पूर्वावस्था में पं. भूरामल शास्त्री के नाम से प्रसिद्ध) ने 1937 ई. में जयोदय महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य 28 सर्गों में निबद्ध है और इनमें 2974 श्लोक हैं।

इनमें जिनसेन प्रथम द्वारा प्रणीत महापुराण में पल्लवित ऋषभदेव भरतकालीन जयकुमार एवं सुलोचना के पौराणिक कथनाक को पुष्पित किया गया है। इस महाकाव्य का दूसरा नाम **सुलोचना स्वयंवर महाकाव्य** भी है। इसके अन्य उपजीव्य साहित्य में उल्लेख्य हैं – महासेनकृत सुलोचना कथा (वि. सं. 800), गुणभद्रकृत महापुराण के अन्तिम पांच पर्व (वि. सं. 900), हस्तिमल्लकृत विक्रान्त कौरव अथवा सुलोचना नाटक (वि. स. 1250) वादिचन्द भट्टारकृत सुलोचना चरित (वि. सं. 1671), ब्र. कामराजप्रणीत जयकुमार चरित (वि. सं. 1710) तथा ब्र. प्रभुराज विरचित जयकुमार चरित।

जयोदय महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक है। इसके नायक हस्तिनापुर नरेश, अप्रतिम योद्धा, सौन्दर्य तथा शील के भण्डार जयकुमार हैं और नायिका काशी नरेश अकम्पन की पुत्री राजकुमारी सुलोचना है। इन दोनों की हृदयहारी कथा भोग से योग, परिग्रह से त्याग तथा वीरता से शान्तिमयता की ओर ले जाने वाली है।

जयोदय महाकाव्य में काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। साथ ही इसमें

दार्शनिकता भी कूट – कूट कर भरी हुयी है। जैन संस्कृत काव्यप्रकाश में मुनि ज्ञानसागर जी का उदय लगभग छः सौ वर्षों बाद लगभग ऐसे महाकवि के रूप में हुआ जिसने महाकाव्य लिखने की विच्छिन्न परम्परा को पुनर्जीवित किया।

अलंकार और रसों से परिपूर्ण यह महाकाव्य बृहत्त्रयी में स्थान पाने योग्य है। इसमें वन – क्रीड़ा, जल – क्रीड़ा, सूर्योदय, चन्द्रोदय, प्रभातवर्णन, रात्रिवर्णन, पान गोष्ठी, वैवाहिक गोष्ठी, पर्वत, नदी आदि प्रसंगों का मर्म स्पर्शी वर्णन है। इस महाकाव्य में प्राचीन ऋषि मुनियों के आदर्श की परम्परा का निर्वाह करते हुए वर्तमान परिस्थिति की उलझनों को सुलझाने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में आचार्य क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व का निरूपण करते हुए उनके **कविकण्ठाभरण** पर विस्तृत परिचय दिया गया है। इसी अध्याय में चमत्कार के स्वरूप पर गम्भीर दृष्टि से विचार किया गया है।

द्वितीय अध्याय में मुनिज्ञानसागरजी का परिचय देकर उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में कवि के वैदुष्य, जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इसमें जयोदय महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के कथानक का प्रस्तुतीकरण के साथ कथानक के वैशिष्ट्य पर दृष्टि निक्षेप किया गया है। कवि द्वारा उत्पादित काव्य सौन्दर्य का प्रतिपादन भी इसी अध्याय में किया गया है। तृतीय से अष्टम अध्याय तक कविकण्ठाभरण में वर्णित विविध प्रकार के चमत्कारों की दृष्टि से जयोदय महाकाव्य की समीक्षा की गयी है।

तृतीय अध्याय में अविचारित रमणीय और विचार्यमाण रमणीय इन उभय चमत्कारों के अनेकानेक उदाहरण जयोदय महाकाव्य से लेकर उनकी विवेचना की गयी है।

इस प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में समस्त सूक्तव्यापी तथा सूक्तैकदेशदृश्य इन दोनों चमत्कारों की दृष्टि से जयोदय महाकाव्य की समीक्षा की गयी है।

पंचम अध्याय में शब्दगत, अर्थगत, शब्दार्थगत चमत्कारों की दृष्टि से जयोदय महाकाव्य का मूल्यांकन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में अलंकारगत चमत्कार की दृष्टि से सविस्तार इस महाकाव्य की मीमांसा की गयी है।

सप्तम अध्याय में रसगत चमत्कार की दृष्टि से जयोदय महाकाव्य का अनुशीलन किया गया है।

अष्टम अध्याय में प्रख्यात वृत्तगत चमत्कार की दृष्टि से इस महाकाव्य की समालोचना की गयी है।

नवम अध्याय उपसंहार में गवेषणाप्रसूतनिष्कर्षों को देकर संस्कृत काव्य जगत् में श्री मुनि ज्ञानसागर जी और उनके जयोदय काव्य का मूल्यांकन किया गया है।

इस प्रबन्ध में तीन महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों का समावेश है। प्रथम परिशिष्ट में जयोदयकार के विषय में अभिव्यक्त किये गये विद्वानों के विचारों का संकलन है।

द्वितीय परिशिष्ट में जयोदय महाकाव्य में समुपलब्ध मनोरम सदुक्तियों का संग्रह है। तृतीय परिशिष्ट में अपने शोध-प्रबन्ध के लेखन में सहायक प्रमुख - प्रमुख ग्रन्थों की सूची दी गई है।

आभार प्रदर्शन

भूगर्भ स्थित यक्षरक्षित अनेक रत्नमयी जिन चैत्याल्यो को प्रगट करने वाले ज्ञानतप में लीन आध्यात्मिक सन्त मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा आशीर्वाद से यह शोध प्रबन्ध पूर्ण होकर साहित्य जगत की पंक्ति में स्थापित हो सका। आपका किन शब्दों में आभार व्यक्त करु, आप तो सूर्य है, मैं तो दीपक लेकर आरती उतार सकता हूँ।

इस शोध - यात्रा को गन्तव्य तक पहुँचाने में अनेक महानुभावों का योगदान रहा है। सर्वप्रथम में अपनी शोध पर्यवेक्षिका श्रीमती डॉ. प्रमोद बाला मिश्रा, रीडर, संस्कृत-विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर मुझे पाण्डित्यपूर्ण मार्गदर्शन करके मेरी शोध सम्बन्धी शास्त्रीय शंकाओं, उलझनों को दूर करती रही।

डॉ. रामजीत मिश्र, रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने समय - समय पर जैन दर्शन सम्बन्धी जानकारी दी।

डॉ. अरूण कुमार जैन, शास्त्री निदेशक - आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर (राज.) के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने पत्राचार के माध्यम से आचार्य ज्ञान सागर जी के सभी ग्रन्थ एवं कृतियों को उपलब्ध कराकर

अनुग्रहीत किया जो ग्रन्थ मुझे बहुत सहायक सिद्ध हुये।

डॉ. रमेश चन्द्र जैन, रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ. प्र.) के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने जैन धर्म सम्बन्धी जानकारी देकर मुझे कृतार्थ किया।

मैं श्री पी. डी. मित्तल, व्यवस्थापक, संचालक जैन समाज जैन मन्दिर बरेली की अति आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अपने पुस्तकालय से बहुमूल्य एवं दुर्लभ पुस्तकें उपलब्ध करायी जो मेरे शोध कार्य में सहयोगी सिद्ध हुई।

डॉ. राम स्वरुप आर्य, भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष वर्धमान कॉलेज, बिजनौर की आभारी हूँ जिन्होंने सत् परामर्श और सामग्री संकलन कराने में पर्याप्त सहायता प्रदान की। मैं अपनी स्वर्गीया पूजनीया पितामही श्रीमती द्रोपदी देवी वार्ष्णेय, अपने माता - पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता पंकज एवं संजय और सभी पारिवारिक जनों के प्रति कृतज्ञ एवं श्रद्धानत हूँ जिनके सहयोग व आशीर्वाद से यह कार्य पूर्ण हुआ।

मेरे पति श्री मनीष वार्ष्णेय तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों ने इस कार्य को पूर्ण करने में मेरी भरपूर सहायता की। अतः मैं उन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

जिन - जिन साहित्यकारों एवं लेखकों की कृतियों को पढ़कर मैं लाभान्वित हुई और जिन गुरुजनों से इस शोध - यात्रा में सत्परामर्श और निर्देश प्राप्त होते रहे, उन सभी के प्रति मैं सश्रद्धा अपनी प्रणति निवेदित करती हूँ।

अनुसन्धात्री

मोनिका वार्ष्णेय

प्रथम अध्याय

आचार्य क्षेमेन्द्र, उनका कविकण्ठाभरण और चमत्कार का स्वरूप

- आचार्य क्षेमेन्द्र

आचार्य क्षेमेन्द्र संस्कृत भाषा के महाकवियों में अलौकिक प्रतिभा से मण्डित ग्यारहवीं शताब्दी के असाधारण ग्रन्थकार थे। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को विभूषित किया। क्षेमेन्द्र कश्मीर के निवासी थे। कश्मीर में सरस्वती का निवास माना जाता था। भक्तों का विश्वास है कि वृन्दावन की सीमा के बाहर श्रीकृष्ण कहीं नहीं जाते अर्थात् वहीं पर निवास करते हैं। महाकवि विल्हण कहते हैं कि सरस्वती भी कश्मीर को छोड़कर कहीं नहीं जाती।

सरस्वती के इस वरद पुत्र ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपना जोहर दिखलाया। जब इनका जन्म हुआ तब कश्मीर देश का वातावरण अराजकता, असन्तोष, षड्यन्त्र, रक्तपात से घिरा हुआ था वहाँ का राजा अनन्त स्वयं मानसिक रूप से दुर्बल था। तभी तो उसने 1063 ई. में अपने ज्येष्ठ पुत्र कलश को राज्य देकर कुछ वर्षों के बाद पुनः ग्रहण कर लिया। इसके अनन्तर 1077 ई. में राजकार्य से विरत होकर कुछ समय के बाद 1081 ई. में उसने आत्महत्या कर ली।

इन्हीं पिता - पुत्र अनन्त (1028 ई. से 1063 ई.) तथा कलश (1063 ई. - 1089 ई.) के राज्यकाल में क्षेमेन्द्र की जीवनयात्रा सम्पन्न हुयी। यह कश्मीर के महाराज के राजकवि थे।

इतनी अराजकता के वातावरण में भी अपनी बहुमुखी प्रतिभा के बल से अनेक उपदेशप्रद काव्यग्रन्थों का प्रणयन किया।

आचार्य क्षेमेन्द्र का स्थिति काल 1050 ई. तथा उनके अन्तिम ग्रन्थ **दशावतारचरित** का रचना काल 1066 ई. है जिनका संकेत स्वयं ग्रन्थकार ने किया है। इनकी प्रथम रचना 1037 ई. की है। अतः इनका जन्म 990 ई. के आस-पास हुआ था। इन्होंने अपने ग्रन्थ **बृहत्कथा मञ्जरी** में स्वयं लिखा है कि यह सिन्धु के प्रपौत्र, निम्नाशय के पौत्र तथा प्रकाशेन्द्र के पुत्र थे।[1] इनका परिवार बहुत सम्पन्न था, इनके पिता दानी[2] और उदार थे।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने को सर्वमनीषी शिष्य कहा है। जिससे पता चलता है कि ये गुणग्रहण के लिए दूसरों के शिष्य बनने में अपनी हेठी नहीं

समझते थे। अतः सम्भव है कि अनेक विशेषज्ञों को उन्होंने अपना गुरु माना हो।

क्षेमेन्द ने अपने मङ्खक अभिनवगुप्त तथा सोमवाद नामक तीन गुरुओं का उल्लेख किया है। उन्होंने अभिनवगुप्त से साहित्य शास्त्र की शिक्षा ली।[3] ये पहले शैव धर्म को मानने वाले थे परन्तु अपने जीवन की सन्ध्या में सोमपाद[4] के द्वारा वैष्णव धर्म में दीक्षित किये गये अपने समस्त ग्रन्थों में इन्होंने अपना दूसरा नाम व्यासदास[5] लिखा है।

शैव दर्शन के होते हुए भी इन्होंने अपने ग्रन्थों में विष्णु स्तुति की है। इससे स्पष्ट होता है कि भागवताचार्य सोमपाद का क्षेमेन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

इनका देहावसान 1066 ई. के बाद मानते हैं क्योंकि इनके अन्तिम ग्रन्थ **दशावतारचरित** की समाप्ति 1066 ई. में हुयी है।[1]

डॉ. काणे[2] एवं डॉ. सूर्यकान्त[3] भी इनकी मृत्यु का समय यही मानते हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र विभिन्न विषयों के ऊपर विपुल राशि प्रस्तुत करने वाले माननीय कल्पना के कारण सदा प्रख्यात रहेंगे। इनकी लेखनी ने सम्पूर्ण विश्व में अपनी चमक विखेर दी।

---

1. क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सु विश्रुतः। वृहत्कथा मञ्जरी, श्लोक 36
2. काश्मीरेषु बभूव सिन्धुरधिकः सिन्धोश्च निम्नाशयः प्राप्तस्तस्यः गुणप्रकर्षयशसः पुत्रः प्रकाशेन्द्रताम्। विप्रेन्द्रप्रतिपादितात्रदान धनभूगो संघ कृष्णाजिनैः प्रख्यातातिशयस्य तस्य तनयः क्षेमेन्द्रनामा भवत्।
   भरत कथा मञ्जरी के अन्त में (3.5) क्षेमेन्द्र ने अपने पिता के उपकार कार्यों का वर्णन किया है।
3. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्याविसाहित्यं बोधवारिधेः। आचार्य शेखरमणे र्विद्यातिवव्रतिकारिणः। वृहत्कथामञ्जरी उपसंहार श्लोक – 37
4. श्री मदभगवताचार्य सोमपादान्जरेणुभिः।
   वृहत्कथामञ्जरी श्लोक 38
5. इति श्री व्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रकृते कविकण्ठा भरणे कवित्वप्राप्तिः प्रथम सन्धिः। औचित्य विचारचर्चा में भी ऐसे निर्देश मिलते हैं।
6. एकाधिकेऽव्दे विहितश्चत्वारिशे सकातिंके।
   दशावतारचरितोपसंहारक, श्लोक – 5
7. History of Sanskrot Poetics, 1961, Part I P. 266
8. Kahemendra Studies, 1954, Chap. I P. 8

कृतित्व :

आचार्य क्षेमेन्द्र एक बहुप्रसु ग्रन्थकार थे। महाकवि क्षेमेन्द्र विदग्धों के ही कवि न होकर जनता के भी कवि हैं। उनकी वाणी ने भिन्न-भिन्न रूपों में विहार किया, वह कभी कवि के, तो कभी नाटककार के, कभी तन्त्वज्ञाता, कभी विलासी पुरुष, कभी साहित्य विमर्शक के परिवेष में सहृदयों के सामने आते हैं।

उनकी रचना का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जनता का चरित्र निर्माण भी है और वे अवश्य ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः सफल है।

इन्होनें कितने ग्रन्थों की रचना की यह कहना बहुत ही कठिन है। अनेक विद्वानों ने निश्चित संख्या को लेकर मतभेद पाया जाता है।

डॉ. सूर्यकान्त क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की संख्या चौंतीस बताते हैं। डॉ. काणे का कहना है कि क्षेएमेन्द्र ने भारतमञ्जरी एवं वृहत्कथामञ्जरी के अतिरिक्त चालीस ग्रन्थों की रचना की है।[1]

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की संख्या बत्तीस से चलीस के आस-पास माननी चाहिए।

क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों को हम चार श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं -

1. **महाकाव्य :** रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, वृहत्कथामञ्जरी, दशावतारचरित तथा अवदानकल्पलता।
2. **उपदेशविशेषोक्ति काव्यः** कला विलास, समयमातृका, चारूचर्चा शतक, सेव्यसेवकोपदेश, दर्पदलन, देशोपदेश, नर्ममाला चर्तुवर्गसंग्रह।
3. **अलंकार ग्रन्थ :** कविकण्ठाभरण, औचित्यविचार-चर्चा, सुवृत्ततिलक।
4. **प्रकीर्ण काव्य :** लोक प्रकाश कोश, नीतिकल्पतरु तथा व्यासाष्टक।

क्षेमेन्द्र की रचनायें :

1. **अमृततरङग** - यह लघुकाव्य है। इसमें देव पूर्वदेवकृत क्षीरसागर के मंथन पर आधारित है। इसका एक पद्य कविकण्ठाभरण की पंचम सन्धि में (श्लोक 49) में है।

2. **औचित्यविचारचर्चा** - यह इनका सबसे मौलिक ग्रन्थ है। इसमें औचित्य के विचार की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की गयी है। काव्य में औचित्य की कल्पना का प्रथम निर्देश हमें भारत में उपलब्ध होता है। इसका विशदीकरण आनन्दवर्धन के **ध्वन्यालोक** में मिलता है। वहीं से स्फूर्ति ग्रहण कर ध्वनिवादी आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य के नाना प्रकारों का महत्त्वपूर्ण व सारगर्भित विवेचन

---

1. History of Sanskrit Poetics, 1961 Part I, P. 264

इस छोटे से ग्रन्थ में किया है। ग्रन्थ में कुल 39 कारिकाएं हैं, और उनमें आत्मरूप औचित्य तत्त्व के विलासस्थानों का उपवर्णन किया गया है। क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह औचित्य ही रस का जीवित भूत प्राण है तथा काव्य में चमत्कारकारी है। क्षेमेन्द्र ने इस औचित्य के अनेक भेद किये हैं पद, वाक्य, अर्थ, रस, कारक, लिंग, वचन आदि अनेक स्थलों पर औचित्य का विधान दिखाकर इसके अभाव को अन्यत्र बतलाकर क्षेमेन्द्र ने साहित्य रसिकों का महान् उपकार किया है।

औचित्य के बिना न तो अलंकार ही कोई शोभा धारण करता है और न गुण ही रूचिकर प्रतीत होता है। अलंकार और गुण के शोभन होने का रहस्य औचित्य के भीतर ही निहित है।

3. **अवसरसार** - यह अनन्तराजस्तुति परक लघुकाव्य है। इसके नाम के बारे में थोड़ा मतभेद है। क्षेमेन्द्र लघुकाव्य संग्रह में इस ग्रन्थ का नाम **अवतारसार**[1] दिया गया है।

4. **कनकजानकी** - भगवान् राम जी के वनवासोत्तर जीवन पर आधारित नाटक है।

5. **कलाविलास** - यह बड़ा रोचक काव्य है। इस काव्य में 551 श्लोक है। इन श्लोकों में दंभाख्यान, लोभवर्णन, कामवर्णन, वैश्यावृत्ति, कायस्थचरित, गायनवर्णन, मदवर्णन, सुवर्णकार की उत्पत्ति, नानाधूर्त वर्णन एवं सभी कलाओं का वर्णन नामक दस सर्गों में है।

6. **कविकर्णिका** - यह ग्रन्थ अलंकार के ऊपर लिखा था। इसका उल्लेख **औचित्यविचार-चर्चा** में मिलता है। उससे यह अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ में काव्य के गुण दोषों का विचार होगा[2] परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक नहीं मिला है।

7. **क्षेमेन्द्रप्रकाश** - इस ग्रन्थ के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

8. **चतुर्वर्गसंग्रह** - इसमें धर्मप्रशंसा, अर्थप्रशंसा, काम प्रशंसा तथा मोक्षप्रशंसा नामक चार परिच्छेद हैं। यह ग्रन्थ 106 श्लोकों में निबद्ध है। क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश के लिए और बुद्धिमानों के सन्तोष के लिए[3] इस

1. Minor works of Kshemendra, 1961, Introduction P. 11
2. कृत्वापि काव्यालंकारां क्षेमेन्द्रः कविकर्णिकाम।
   तत्कलंक विवेकं च विधाय विबुधप्रियम्॥ ओचित्यविचारचर्चा, कारिका 2
3. उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम्। क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकैः क्रियते वर्गसंग्रहः॥
   चतुर्वर्गसंग्रह,

ग्रन्थ को लिखा है।

9. **चारूचर्या** - इसमें सदाचरण की शिक्षा देने वाले सरल एवं सुन्दर एक सौ श्लोक है। प्रत्येक श्लोक की प्रथम पंक्ति में आचारतत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, और द्वितीय पंक्ति में उस आचारतत्त्व के अनुरुप ऐतिहासिक अथवा पौराणिक कथा का दृष्टान्त दिया गया है।

जैसे -

न तीव्रदीर्घ वैराणां, मन्युं मनसि रोपयेत्।
कोपनायातयन् नन्दं चाणक्यः सप्तभिर्दिनैः

10. **चित्रभारत नाटक** - यह महाभारत पर आधारित नाटक होगा।[2] इस नाटक के दो श्लोक हमें **कविकण्ठाभरण** में और एक श्लोक **औचित्यविचारचर्चा** में मिलता है।

11. **दर्पदलनः** - यह उपदेशपरक काव्य है। इसमें सात अध्याय हैं उनके अलग - अलग नाम दिये हैं। जैसे प्रथम का कुलविचार, दूसरे का धनविचार, तीसरे का विद्याविचार, चौथे का रुपविचार, पाँचवे का शौर्यविचार, छठे का दानविचार तथा सातवें अध्याय का तपोविचार। इस काव्य में 596 श्लोक हैं। क्षेमेन्द्र ने मङ्गलाचरण में विवेक[1] को नमस्कार किया है।

12. **दशावतारचरित काव्य** - इस महाकाव्य में विष्णु के दशावतारों का बड़ा ही रोचक ओर विस्तृत वर्णन किया गया है। इनमें से नवें अवतार गौतमबुद्ध हैं। अन्य अवतार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण तथा कलिक है। इसमें 1759 श्लोक हैं। इस काव्य से क्षेमेन्द्र की विष्णु - भक्ति का पता चलता है। क्षेमेन्द्र ने अपने सभी अन्य ग्रन्थों की भाँति दशावतारचरित को सवृत्ति निदर्शन का आदर्श बनाया है।

13. **देशोपदेश** - यह एक सामाजिक काव्य है। लोक सुधार[3] की दृष्टि से कवि ने इस काव्य की रचना की है। कश्मीर के भ्रष्ट राज्यशासन का वर्णन है। इसमें दुर्जन वर्णन, कंदर्पवर्णन, वेश्यावर्णन, कुट्टनीवर्णन, विटवर्णन, छात्रवर्णन, वृद्धभार्यावर्णन एवं प्रकीर्णवर्णन नामक आठ उपदेश हैं। यह काव्य 298 श्लोकों में निबद्ध है।

---

1. चारूचर्या, श्लोक 65
2. Minor works of Kshemendra, 1961, Incroduction, P.11
3. प्रशान्ताशेषविध्नाय दर्पसर्पायसर्पणात्। सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाश विकासिने॥
संसारव्यतिरेकाय हतोत्सेकाय चेतसः। प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नमः॥
4. छासने लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते। जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः॥
देशोपदेश, दुर्जनवर्णनम्। 4

14. **दानपारिजात** - इस ग्रन्थ के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

15. **नर्ममाला** - यह काव्य तीन परिहासों में विभक्त है। इसमें कवि ने कायस्थों के श्रमिणका, मठदैशिक, सभतृका, वैद्य, गणक आदि गुरुओं की बड़ी आलोचना की है। इस काव्य मेंकुल 407 श्लोक हैं।

16. **नीतिकल्पतरू** - डॉ. सूर्यकान्त का कहना है कि यह व्यास रचित राजनीतिपरक ग्रन्थ की व्याख्या है।

17. **पद्मकादम्बरी** - यह बाणभट्ट की कादम्बरी का पद्यात्मक सारांश है। इस काव्य के आठ श्लोक कविकण्ठा भरण सन्धि में पाये जाते हैं। यह निम्न श्लोक हैं - 15, 17, 20, 24, 26, 34, 37, 45।

18. **पवनपंचाशिका** - यह लघुकाव्य है।[1] इसमें वायु का वर्णन किया गया है। इसमें कुल पचास श्लोक है।

19. **बृहत्कथा मंजरी** - इस ग्रन्थ की रचना 1037 ई. में हुयी है। इस कृति में 19 अध्याय है और 7500 श्लोक हैं। कश्मीर की अनेक कथाएँ इनमें जोड़ी गई है। बृहत्कथा का ही संक्षिप्त रुप **बृहत्कथामंजरी** है।

20. **बोद्धावदानकल्पलता** - इसमें भगवान बुद्ध के प्राचीन जन्मों से सम्बद्ध पारमितासूचक आख्यानों का पद्य वद्ध वर्णन है। इस कल्पलता में 108 पल्लव हैं। जिनमें अन्तिम पल्लव का निर्माण पिता की मृत्यु हो जाने पर क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने ग्रथित किया। एक वैष्णव कवि की कृति होने पर भी बौद्ध समाज में इतना आदर पाना क्षेमेन्द्र की धार्मिक उदारता, विशाल हृदयता, तथा सुन्दर काव्य शैली का पर्याप्त द्योतक है। 1272 में इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ था। यह तिब्बती भाषा का एक नितान्त श्लाघनीय अनुकरमीय और उदात्त काव्य माना जाता है। डॉ. कीथ की दृष्टि में यह ग्रंथ विषयदृष्टि से महत्त्वपूर्ण है रचना दृष्टि से नहीं।[2]

21. **भारतमंजरी** - इस काव्य में महाभारत का सार प्रस्तुत किया गया है। इसमें 10665 श्लोक हैं। इसमें मूलभारत तथा हरिवंश का समावेश है। इनका संक्षेप इतने प्रभावपूर्ण ढंग से किया है कि हमें मनोरंजन के साथ मूल पाठ के निर्णय करने में भी सहायता मिलती है। इनके अनुशीलन से शिक्षण तथा आनन्द दोनों प्राप्त होते हैं। इस ग्रन्थ का प्रणयन 1037 ई. में हुआ है।

---

1. Minor works of Kshemendra, 1961, Introduction, P.12
2. Dr. A. B. Keith - A history of Sanskrit Literature, P. 493

22. **मुक्तावली काव्य** - यह तपस्वी वर्णन परक काव्य है।[1] इसका एक पद्य कविकण्ठाभरण का 41 वाँ श्लोक है जिसमें मोक्ष प्राप्ति के उपायों का वर्णन मिलता है।

23. **मुनिमतमीमांसा** - महर्षि व्यास के उपदेश का तात्पर्य वर्णन करने वाला काव्य। इसके कुछ श्लोक **औचित्यविचारचर्चा** में उद्धृत किये गये हैं।

24. **राजाबलि : - इसमें कश्मीरी राजाओं की वंशावली को पद्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है।**

25. रामायणमंजरी - इस काव्य में वाल्मीकि कृत रामायण का सारांक्ष प्रस्तुत किया गया है। इसको 6391 श्लोकों में संजोया गया है। इस काव्य की शैली प्रसादमयी, पदविन्यास, कोमल तथा रसपेशल, अर्थयोजना रूचिर और कल्पनापूर्ण है।

क्षेमेन्द्र ने मंगलाचरण में विष्णु भगवान् की स्तुति की है। मंगलाचरण के पश्चात् श्लोकों में वाल्मीकि तथा उनकी रामायण की प्रसंशा की है। क्षेमेन्द्र वाल्मीकि को चक्रवर्ती कवि मानते हैं।

26. **ललितरत्नमाला** - वत्सराज - रत्नावली की प्रेम प्रसंग पर आधारित नाटक है।[2]

27. **लोकप्रकाश** - इसमें कश्मीर के परगनों की सूची मिलती है। बहुत से लोग इस ग्रन्थ को व्यासदास क्षेमेन्द्र की ही रचना मानते हैं, लेकिन वेबर[3] व पं. कौल[4] इससे सहमत नहीं है। उनका मानना है कि फारसी शब्दों की प्रचुरता के कारण किसी मुगलकालीन तृतीय श्रेणी के ग्रन्थकार की रचना है।

28. **लावण्यवती** - इसमें वासन्तिका नामक कोई गणिका अत्रिवसु नामक क्षत्रिय को अंकित करती हुई बताई गयी है। इसके छः श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत है।

29. **वात्स्यायनसूत्रसार** - वात्स्यायन के कामसूत्रों का संक्षेप में वर्णन।

30. **विनयवल्ली** - कुछ लोगों का मत है कि इसका नाम विनयवती है लेकिन यह गलत है क्योंकि इसका एक श्लोक **यथा मम विनयबल्याम्** इस नाम से औचित्यविचारचर्चा में उदधृत है।

1. Minor works of Kshermendra, 1961, Introduction, P. 11
2. Minor works of Kshermendra, 1961, Introduction, P. 11
3. Dr Suryakanta - Kshemendra Studies, 1954, P. 25
4. देशोपदेश और नर्ममाला 1923, भूमिका, पृष्ठ 25

31. **वेतालपंचविशंति** - इस ग्रन्थ के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

32. **व्यासाष्टक - भवनोजीत्य** व्यास महर्षि की स्तुतिपरक आठ श्लोक। क्षेमेन्द्र की व्यास के प्रति अटूट आदर भाव था। इसका पता हमें इस अष्टक से होता है।

33. **शशिवंश काव्य** - इस महाकाव्य में शशिवंश राजाओं की कथाओं का वर्णन मिलता है। कविकण्ठाभरण की चमत्कार नामक तृतीय सन्धि में इसके पाँच श्लोक (14, 16, 23, 25, 55) उदाहरण के रूप में मिलते हैं।

34. **समयमातृका** - यह उपदेशपरक काव्य है। इसमें वेश्याओं के पतनोन्मुख विलास और प्रलोभन की कथाएँ है। इसका रचनाकाल 1050 ई. है[1] और यह 635 श्लोकों में निबद्ध है। इस काव्य के प्रथम पांच समयों के नाम हैं। चिन्तापरिप्रश्न, चरितोपन्यास, प्रदोषवेश्यालावर्णन, पूजाधरोपन्यास तथा रागविभागोपन्यास। षष्ठ समय का कोई नाम नहीं है। सातवें समय का नाम कामुकसमागम तथा आठवें समय का कामुकप्राप्ति नाम है। इस ग्रन्थ के उपसंहार में क्षेमेन्द्र ने वेश्या की सत्कविभारती के साथ जो तुलना की है उसको पढ़कर सहृदय उद्विग्न हो जाता है।[1]

35. **सुवृत्ततिलक** - क्षेमेन्द्र ने छन्दों के सौन्दर्य को ध्यान में रखकर शिष्यों के उपदेशार्थ यह ग्रन्थ लिखा है। छन्द के विषय में यह बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें तीन विन्यासों के अन्तर्गत 124 कारिकाओं में लिखा है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ में सत्ताईस वृत्तों के लक्षणों के उदाहरण दिये हैं। द्वितीय विन्यास में उपयुक्त सत्ताईस वृत्तों का गुणदोष प्रदर्शन किया गया है। तृतीय विन्यास के प्रारम्भ में शास्त्र, काव्य, शास्त्रकाव्य तथा काव्यशास्त्र ये वाग्विस्तार के चार भेद किये गये हैं। उसके पश्चात् यह बताया गया है कि भिन्न - भिन्न रचनाओं के लिए कौन से वृत्त अनुकूल बैठते है और अन्त में प्राचीन कवियों में से कौनसा कवि किस वृत्त की रचना करने में विशेष पारंगत था ? यह बताया गया है।

---

1. संवत्सरे पंचविशे षौषशुक्ला दिवासरे। समयमातृकोपसंहार, श्लोक 2
2. सालंकारताय विभक्तिरूचिरच्छाया विशेषाश्रया
   वक्रा सादर चर्वणा रसवती मुग्धार्थलब्धा परा।
   आश्रयों चितवर्णना नवनवास्वाद प्रमोदचिंता
   वेश्या सत्कविभारती व हरति प्रौढा कलाशालिनी॥
   समयमातृकोपसंहार, श्लोक 1

36. **सेव्यसेवकोपदेश** – यह लघुकाय ग्रन्थ है। इसके कुल 61 श्लोक है। इसमें सेव्य व सेवकों के बीच के सम्बन्ध मधुर हो जाये, इसको ध्यान में रखकर लिखा गया है। मालिक व नौकरों की क्या जिम्मेदारियां है उनका विवेचन किया गया है। क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ के मंगलाचरण[1] में सन्तोष रुप रत्न को नमन करके बड़ा औचित्य दिखलाया है।

कविकण्ठाभरण – यह ग्रन्थ शिक्षा के विषय में लिखा गया है। क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश के लिए व कवियों की विशेष जानकारी के लिए इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। कवि शिक्षा जैसे व्यापक विषय पर इस प्रकार का सरल, सुघटित, सुबोध, व्यावहारिक ग्रन्थ लिखना क्षेमेन्द्र की परिष्कृत एवं निर्भ्रान्त बुद्धि का द्योतक है।

इस ग्रन्थ में 55 कारिकाएँ और 62 उदाहरण श्लोक हैं। यह पाँच संधियों में विभक्त है। इन पाँच सन्धियों के विषय इस प्रकार है –

तत्राकवे: कवित्वप्राप्ति: शिक्षा प्राप्तगिर: कवे:।
चमत्कृतिश्च शिक्षाप्तो गुणदोषोद्गतिस्तत:॥
पश्चात्परिचयप्राप्ति: इत्येते पंच संधय:।[2]

प्रथम सन्धि – में कवित्वप्राप्ति के उपायों का विवेचन किया गया है। कवित्व प्राप्ति के लिए दिव्य तथा पौरुष उपाय कर्तव्य किये गये हैं कि जो क्रियामातृका का जय करेगा, वह कल्याण का भागी होगा क्योंकि जय से ही सरस्वती प्रसन्न होती है और प्रसन्न होकर आशीर्वाद प्रदान करती है।

कवि ने शिष्यों का अल्प प्रयत्न साध्य, कृच्छसाध्य एवं असाध्य नामक तीन वर्ग किये हैं। प्रत्येक वर्ग के कवि को काव्य के निर्माण के लिए क्या – क्या प्रयास करने इष्ट है उनका अवलोकन किया गया है।

कृच्छसाध्य कवि को चाहिए कि प्रारम्भ में अभ्यास के तौर पर रचना भी करें, इस प्रकार की सूचना करके आचार्य क्षेमेन्द्र एक वाक्यार्थ शून्य पदरचना उद्धृत करते है। क्षेमेन्द्र ने कवित्व प्राप्ति के दिव्य उपायों का केवल आठ – नौ श्लोक में वर्णन किया है। और उसके बाद ही विषयों के वर्गीकरण के विषय का प्रतिपादन प्रारम्भ कर देते हैं।

क्षेमेन्द्र प्रथम सन्धि में ही शिष्यों को तीन प्रकारों में विभक्त करके उसके बाद उनका विवेचन करते हैं संक्षेप में किन्तु अपने आप में पूर्ण। यही

---

1. विभूषणाय महते तृष्णातिमिरहारिणे। नम: सन्तोषरत्नाय सेवाविषविनाशिनें॥ सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक।

2. कविकण्ठाभरण 1/3, 4

उनकी चमत्कारी लेखनी का चमत्कार है कि संक्षेप में ही हमें विषय का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

द्वितीय सन्धि - इस सन्धि के प्रारम्भ में छायोपजीवी, पदकोपजीवी, पादोपजीवी, सकलोपजीव्य और भुवनोपजीवी नामक कवियों के पाँच प्रकारों का उदाहरण सहित निरुपण किया है। उसके पश्चात् भाषा प्रभु की शिक्षा का विवेचन समाप्त करते समय **शिक्षाणां शतं इति उक्त** यह कहने का विस्मरण उन्हें नहीं होता है।[1]

इसमें कवि के खान - पान, रहन - सहन, अध्ययन, घूमना-फिरना, अवलोकन - प्रेक्षण आदि सभी क्रियाकलापों के बारे में व्यावहारिक सूचनाएं दी गयी हैं।

तृतीय सन्धि - इस सन्धि का विषय है - चमत्कार निरुपण। वह निरुपण भी अन्वयव्यतिरेक पद्धति से ही किया गया है। क्षेमेन्द्र ने प्रारम्भ में लिखा है कि जो ग्रन्थकार काव्य में चमत्कार नहीं उत्पन्न कर सकता है वह कवि नहीं है और जिस काव्य में चमत्कार नहीं वह काव्य नहीं है।[2]

क्षेमेन्द्र चमत्कार के दस प्रकारों का वर्णन करते हैं।

1.	अविचारितरमणीय चमत्कार	- अर्थात् झट प्रतीत होने वाला चमत्कार।
2.	विचार्यमाणरमणीय चमत्कार	- विलम्ब से प्रतीत होने वाला चमत्कार।
3.	समस्त सूक्तव्यापी चमत्कार	- पूरे काव्य में रहने वाला चमत्कार
4.	सूक्तेकदेशदृश्य चमत्कार	- काव्य के एक अंश में रहने वाला चमत्कार
5.	शब्दगत चमत्कार	- काव्य के शब्द रूप माध्यम में रहने वाला चमत्कार।
6.	अर्थगत चमत्कार	- अर्थ में रहने वाला चमत्कार।
7.	शब्दार्थगत चमत्कार	- शब्द अर्थ दोनों में रहने वाला चमत्कार।
8.	अलंकारगत चमत्कार	- काव्य के अलंकार में रहने वाला चमत्कार।

1. कविकण्ठाभरण, 2/22
2. नहि चमत्कार विरहितस्य कवेः कवित्वं, काव्यस्य वा काव्यत्वम् कविकण्ठाभरण, तृतीय सन्धि।

9. रसगत चमत्कार - काव्य रस में रहने वाला चमत्कार।
10. प्रख्यातवृत्तिगत चमत्कार - काव्य के प्रख्यात विषय में रहने वाला चमत्कार।

क्षेमेन्द्र ने काव्य का भी विचारणीय अंग अविचारित नहीं रखा है।

चतुर्थ सन्धि - इस सन्धि में काव्य के गुण, दोष एवं काव्यभेद इन तीन विषयों का वर्णन करते है। उनकी दृष्टि में शब्दनिर्दोषता, अर्थ निर्दोषता तथा रस निर्दोषता ये तीन काव्य के गुण बतलाये हैं तथा शब्दसंदोषता, अर्थसंदोषता और रससंदोषता - ये तन काव्य के दोष है। जहाँ गुण का निवास होता है वहीं गुण के न रहने पर गुण की हानि के कारण दोष हो जाता है। क्षेमेन्द्र का मानना है कि गुण दोषों की संख्या बराबर है।

क्षेमेन्द्र ने जो पंचविध काव्य के भेद किये हैं, उससे हमें बीजगणित की याद आ जाती है। जिस प्रकार उसमें सभी संभावनाओं का ख्याल किया जाता है उसी प्रकार क्षेमेन्द्र ने भी अपने काव्य में सभी संभवों का विचार किया है।

काव्य के संभाव्य भेद पाँच है -

1. सगुण काव्य 2. निर्गुण काव्य 3. संदोषकाव्य 4. निर्दोषकाव्य 5. सगुणदोष काव्य।

पंचम सन्धि - इसके प्रारम्भ में शास्त्रीय गान की महिमा गायी गयी है। शास्त्र परिचय कवि को कवि सम्राट बनाने में समर्थ रहता है। इसके पश्चात् भिन्न - भिन्न शास्त्रों में किये गये तर्क, व्याकरण, राजनीति, धर्मशास्त्र इत्यादि अट्ठाईस शास्त्रों के ज्ञान का सोदाहरण विवेचन किया गया है।

क्षेमेन्द्र तर्कादि शास्त्रों का उदाहरण सहित विवेचन करते हैं और प्रकीर्ण पर जा पहुँचते ही **प्रकीर्णे चित्रपरिचयो...** ऐसा खुलासा कर देते हैं। अट्ठाईस शास्त्रों का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात् वे **इत्युक्ता रुचिरोचिता परिचय प्राप्ति र्विभागेगिरा**[1] ऐसा कहते हैं।

ग्रन्थ के अन्त में **परिश्रमशील कवि विद्वत्समाज में आत्मविश्वास के साथ भ्रमण करें और उन्हें पुण्य की प्राप्ति हो।** इस प्रकार की शुभाशंसा ओर उद्गार कवि ने प्रकट किये हैं।

क्षेमेन्द्र का यह लघुकाय ग्रन्थ कवि शिक्षापरक संस्कृत ग्रन्थों में वैशिष्टयपूर्ण बन पड़ा है। अनेकों विद्वानों और कवियों ने चमत्कार सौन्दर्य, चारुता, वैशिष्टय आदि का प्रयोग किया है, उन सब में क्षेमेन्द्र अग्रणी हैं।

---

1. कविकण्ठा भरण, 5/2

क्षेमेन्द्र से पूर्व किसी भी साहित्यकार ने चमत्कृति का वर्गीकरण नहीं किया है ओर न ही उसका सोदाहरण विवेचन ही किया है।

चमत्कार के दशविध वर्गीकरण करने वाले साहित्य ज्ञाता क्षेमेन्द्र ही है। चमत्कार का यह सूक्ष्म विचार मुख्य रुप से क्षेमेन्द्र की ही वैचारिक देन है। ये चमत्कार पूर्ण जगत के सृजनकार है। जीवन के यथार्थद्रष्टा कवि है।

क्षेमेन्द्र अपने विचारों को प्रकट करने के लिए उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसने पाठकों को असुविधा न हो और उनके काव्य बोझिल न हों।

यह ग्रन्थ संक्षेप में किन्तु सुबोध रीति से लिखा गया है। क्षेमेन्द्र उच्चकोटि के ग्रन्थकार है। वे अनावश्यक विस्तार से बचते हैं और संक्षेप में ही विषय - प्रतिपादन करने में पूर्णतया समर्थ हैं। **कविकण्ठाभरण** में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव दृष्टिगोचर होता है। अपनी विशिष्टता के कारण ही यह ग्रन्थ काफी लोकप्रिय हो गया है।

यह ग्रन्थ यद्यपि विस्तृत नहीं है फिर भी ग्रन्थकार ने जिस व्यावहारिक दृष्टि से समस्या को समझा और सुलझाया है तथा जिस प्रकार से व्यापक और अस्पष्ट विषय का स्पष्टता और सूक्ष्मता से प्रतिपादन किया है वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में क्षेमेन्द्र महान् निपुण सिद्ध होते हैं।

आचार्य क्षेमेन्द्र जैसे उच्चकोटि के कवि है वैसे ही वे श्रेष्ठ आचार्य हैं। प्राय: देखने को मिलता है कि ये दोनों गुण साथ - साथ नहीं चल पाते।

कवित्व के उत्कर्ष से आचार्यता शिथिल हो जाती है। कवि निरकुंश होने लगता है। इसी प्रकार आचार्यपन भावुकता को सुखाकर नीरस विवेक की वृद्धि करता है। साहित्य जगत में ऐसे उदाहरण अनेकों हैं। लेकिन क्षेमेन्द्र में ये दोनों गुण पूर्णरुप से विद्यमान है। अनेकानेक विषयों पर अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया है और सफलता प्राप्त की है। विविध शास्त्रों के ज्ञान से संवलित इनके जैसा कोई दूसरा कवि संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। काव्यों की शैली पुराणों सी इतिवृत्तात्मक है। यत्र - तत्र अलंकारों के सफल प्रयोग मिलते हैं।

इनका आचार्यत्व और कवित्व परस्पर सम्बद्ध है। कवियों के लिए इन्होंने जो - जो आदर्श प्रस्तुत किये है उन्हीं के अनुसार स्वयं रचनायें भी की हैं।

क्षेमेन्द्र की विशाल उदारता, महाशयता ओर कला प्रियता का पता चलता है क्योंकि उन्होंने अपनी स्वयं की कविताओं में भी दोष दिखाने में जरा भी संकोच नहीं किया है।

क्षेमेन्द्र ने काव्य जगत् में आत्म पदवी प्रदान की है। क्षेमेन्द्र का यह गुणाधिक **कविकण्ठाभरण** नौसिखुए कवियों का सच्चा पथप्रदर्शक है ऐसा कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा।

चमत्कार का स्वरूप -

पद का अर्थ प्रतिभा में तत्काल उल्लिखित होने वाले किसी स्वभाव से स्फुरित होता है तदनन्तर प्रकृति सन्दर्भ के अनुकूल किसी उत्कर्ष के द्वारा उसका स्वरुप आच्छादित हो जाता है और तब वह कवि की अभिलाषा के वश में आकर अभिधेय की योग्यता प्रदान करता है। उस विशेष अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्दों के द्वारा प्रकट किये जाने पर ही वह चेतन सहृदयों के हृदय में **चमत्कार** उत्पन्न करता है।

अर्थ जिस प्रकार भावमय होता है शब्द उसी प्रकार भावमय होता है। रसमय शब्द तथा रसमय अर्थ का सामंजस्य समान हृदयवाले मित्रों के मिलन के समान आदरणीय और चमत्कारी होता है।

चमत्कार शब्द का विवेचन करते हुए साहित्यशास्त्र में दो अर्थ दिये हैं - 1. आश्चर्य 2. काव्यास्वाद। परन्तु भाषा की दृष्टि से **चमत्कार** ध्वनि निर्मित शब्द है और जो चटपटी चीज खाने के समय हम जो जीभ से होठों को चाटते हुए जो चट चट ध्वनि उत्पन्न करते हैं उसी के आधार पर यह **चमत्कार** शब्द बना है।

इस मूल अर्थ का विस्तार होने पर इसका सामान्य अर्थ हुआ मधुर वस्तु के आस्वाद से चित्त का विस्तार या आनन्द और इसी अर्थ में साहित्यशास्त्र में यह अर्थ व्यवहृत होने लगा।

चमत्कार का संकीर्ण अर्थ -

संकीर्ण अर्थ में **चमत्कार** का प्रयोग आश्चर्यरस उत्पन्न करने वाले काव्य साधन के लिए किया जाता है। नारायण पण्डित चमत्कारवादी है। उन्होंने आश्चर्य को समग्ररसों का मूल माना है।

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तस्मादुदभुवमेवाह कृती नारायणो रसम्॥

नारायण दास के अनुसार चमत्कार चित्त - विस्तार के रुप में अभिव्यक्त होता है। समस्त रसानुभूति चित्त - विस्तार की जननी होने के कारण चमत्कार रुपिणी होती है। इसका सबसे सुन्दर उदाहरण है - अद्‌भुत रस। यह तो चमत्कार का संकीर्ण अर्थ हुआ।

चमत्कार को अनेक रूपों में व्यवहृत किया गया है। जैसे - रस, चमत्कार, हृदयता, चारुता, सौन्दर्य, विच्छित्ति आदि।

आलंकारिक ग्रन्थों में भी आस्वाद के रूप में चमत्कार शब्द का प्रयोग मिलता है। आनन्दवर्धन ने काव्य के स्वाद के अर्थ में चमत्कृति (**चमत्कार**) शब्द का प्रयोग **ध्वन्यालोक** में किया है। इसी व्यापक तथा आह्लाद सामान्य के अर्थ मे अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक लोचन में इस शब्द का प्रयोग प्राय: किया है।

कुमारसम्भव में शिव-पार्वती के संभोग वर्णन की समीक्षा करते हुए लोचनकार कहते है -

आस्वादयितृणां हि यत्र चमत्काराविघातः, तदेव रससर्वस्वं स्वादायतात्वात्। उत्तमदेवतासम्भोगपरिमर्शे तु पितृसंभोग इव लज्जाऽऽतङ्कादिना कः चमत्कारावकाशः॥

आशय यह है जहाँ काव्य के आस्वाद लेने वाले व्यक्तियों के चमत्कार का विघात नहीं होता, वहीं रस की पूर्ण सम्पत्ति विलसित होती है, परन्तु उत्तमदेवता के सम्भोग के वर्णन में क्या कभी चमत्कार का अवकाश है ? वहाँ तो पिता के सम्भोग के समान लज्जा का भाव उत्पन्न होता है अथवा भव का प्रादुर्भाव होता है। चमत्कार के लिए स्थान कहाँ ?

इसमें अभिनवगुप्त चमत्कार को काव्याह्लाद का दूसरा अभिधान मानते हैं। लोचनकार अभिनवगुप्त रस को ही **चमत्कारात्मा** बतलाते हैं-

यद्यपि च रसेनैव सर्वं जीवति काव्यं तथापि तस्य रसस्य एकधनचमत्कारात्मनोऽपि कुतश्चिद् अंशात् प्रयोजकीभूतादधिकोऽसो चमत्कारोऽपि भवति।[1]

चमत्कार के ऊपर लिखी गयी **चमत्कार चन्द्रिका** प्रथम आलंकारिक ग्रन्थ है। इसको आचार्य विश्वेश्वर ने लिखा है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में चमत्कार की विशिष्ट परिभाषा है। **चमत्कार** कविता के पढ़ने पर सहृदय के हृदय में उत्पन्न आह्लाद का ही नाम है। काव्य में चमत्कार के सात आलम्बन होते हैं -

चमत्कारस्तु विदुषामानन्द - परिवाहकृत्।
गुणां रीतिं रसं वृत्तिं पाकं शय्यामलं कृतिम्॥
सप्तैतानि चमत्कारकारणां ब्रुवते बुधाः।

गुण, रीति, रस, वृत्ति, पाक, शय्या, अलंकृति। चमत्कार के आधार पर काव्य तीन प्रकार का होता है -

1. चमत्कारी (शब्दचित्र)

---

1. ध्वन्यालोक - लोचन, पृ. 65

2. चमत्कारितर(अर्थचित्र और गुणीभूत व्यङ्ग्य)

3. चमत्कारितम (व्यंग्यप्रधान)

1729 ई. में हरिप्रसाद ने **काव्यालोक** नामक अलंकारग्रन्थ सात परिच्छेदों में लिखा है। इन्होंने चमत्कार को काव्य की आत्मा मानकर अन्य प्राचीन मतों की अवहेलना की है। अतः इनकी कल्पना का एक ही मत है -

विशिष्टशब्दरुपस्य काव्यस्यात्मा चमत्कृतिः।
उत्पत्तिभूमिः प्रतिभा मनागत्रोपपादितम्॥

पण्डितराज जगन्नाथ ने **रसगंगाधर** ग्रन्थ में चमत्कार के ऊपर ही काव्य का चमत्कारी तथा रमणीय लक्षण प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य होता है। **रमणीय** अर्थ वह है जिसके ज्ञान से, जिसके बार - बार अनुसन्धान करने से अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है। अलौकिक आनन्द का ही दूसरा नाम चमत्कार है। अतः चमत्कार सम्पन्न अर्थ की शब्दतः प्रतिपादन करने वाली वस्तु का नाम कविता है।

रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रमणीयता च लोकोत्ताराह्लादजनकज्ञानगोचरता। लोकोत्तरत्वं च आह्लादगतः चमत्कारापरपर्यायः अनुभवसाक्षिको जातिविशेषः।

कुन्तक काव्य के चमत्कारवादी आचार्य हैं परन्तु उनका चमत्कारवाद साधारण कोटि के चमत्कारवाद से कहीं अधिक उपर उठा हुआ है। उनकी वक्रोक्ति इसी चमत्कृति का अपर पर्याय है। व्यापक अर्थ में रस, औचित्य, ध्वनि, वक्रोक्ति समस्त काव्य सार ही चमत्कार रुप है।

चमत्कार पाठकों के हृदय को अनुरजित करने में समर्थ होता है। इसमें जो लोग मनोरंजन को ही काव्य का लक्ष्य समझते हैं वे कविता में चमत्कार ही ढूंढा करते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या ? कुन्तक का कहना है कि यद्यपि अलंकृत शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होते हैं किन्तु जब हम आवापोद्‌ाप बुद्धि से अलंकार्य और अंलकार का विभाग कर लेते है तो उस दशा में शब्द और अर्थ अलङकार्य होते हैं तथा उनका (उन दोनों का) अलङकार केवल एक वक्रोक्ति ही होती है।

तयो द्वित्वसङख्याविशिष्टयोख्यलंकृति पुनरैकैव यथा द्वावप्यलङक्रियेते।

कुन्तक का वक्रोक्ति का स्वरूप -

वक्रोक्ति शास्त्र तथा लोक प्रसिद्ध उक्ति से अतिशायिनी विचित्र उक्ति को कहते है -

वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा

यह कैसी होती है ? वैदग्ध्यभङ्गीर्भणितिस्वरुप होती है अर्थात् काव्य कुशलता की विच्छित्ति द्वारा किये कथन को वक्रोक्ति कहते हैं और यह कथन शोभातिशंयकारी होने के कारण एकमात्र अलंकार है

शब्दार्थौ पृथगवस्थितो केनापि व्यतिरिक्तेनालङकरणेन योज्येते किन्तु वक्रता वैचित्रयोगितयाभिधानमेवा नयोरलङ्कारः तस्यैव शोभातिशयकारित्वात्।

आचार्य कुन्तक ने कवि व्यापार की वक्रता के छः भेद किये है और इन छः भेदों के भी अवान्तर भेद किये हैं -

1. वर्णविन्यास वक्रता
2. पदपूर्वार्द्धवक्रता
   - क. रूढिवैचित्र्य — ख. पर्यायवक्रता
   - ग. उपचारवक्रता — घ. विशेषणवक्रता
   - ङ. संवृतिवक्रता — च. पदमध्यान्तर्भूत प्रत्ययवक्रता
   - छ. वृत्तिवैचित्र्यवक्रता — झ. लिङ्गवैचित्रवक्रता
   - भाववैचित्र्यवकखता — क्रियावेचित्रयवक्रता
3. पदपरार्थ अथवा प्रत्ययवक्रता
   - क. कालवेचित्रयवक्रता — ख. कारकवक्रता
   - ग. सङख्यावक्रता — घ. पुरुषवक्रता
   - ङ. उपग्रहवक्रता — छ. प्रत्ययविहितप्रत्यय वक्रता
4. (उपसर्ग निपालजनित पदवक्रता) वाक्यवक्रता एवं अलंकार
5. प्रकरणवक्रता
6. प्रबन्धवक्रता

अलौकिक चमत्कार को उत्पन्न करने वाले वैचित्र्य की सिद्धि करने के लिए अर्थात् असामान्य आहलाद को उत्पन्न करने वाली विचित्रता की सिद्धि के लिए कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवितं काव्य की रचना की, यह उनका प्रयोजन था -

चमत्कारो वितन्यते चमत्कृतिर्विस्तार्यते, हलादः पुनः पुनः क्रियत इत्यर्थः। केन काव्यामृतरसेन। काव्यमेवामृतं तस्य रसस्तदास्वादस्तदनुभव स्तेन। क्वेत्यभिदधाति अन्तश्चेतसि। कस्य तद्विदाम् तं विदन्ति जानन्तीति तद्विदस्तज्ज्ञास्तेषाम्। कथम् चतुवर्गफलास्वादमप्यतिवक्रम्य। चर्तुवर्गस्य धर्मादेः फलं तदुपभोगस्तस्यास्वादस्तद नुभवस्तमपि प्रसिद्धा तिशयमतिक्रम्य विजित्य पस्पाशप्रायं संपाद्य।

1. वक्रोक्तिजीवितम् प्रथम उन्मेष. पृ. सं. 14

चमत्कारी वितन्यते अर्थात् चमत्कृति (रसास्वाद रूप अलौकिक आनन्द) विस्तार किया जाता है। बार - बार आनन्दानुभूति कराई जाती है, यह हुआ। जिसके द्वारा ? काव्यामृतरस के द्वारा। काव्य ही है अमृत जो उसका रस, उसका आस्वाद अर्थात् उसका अनुभव उसके द्वारा कहाँ (चमत्कार का विस्तार होता है) यह कह सकते हैं, हृदय में किसके (हृदय में) ? तद्विदों के। उस (काव्यरल) को जानते हैं जो वे हुए तद्विद् उसको जानने वाले, उनके (हृदय में चमत्कार का विस्तार करता है) कैसे चमत्कार को पैदा करता है ? चर्तुवर्ग के फलास्वाद का भी अतिक्रमण करके। चर्तुवर्ग अर्थात् धर्मादि (धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष रुप पुरुषार्थ का फल अर्थात् उसका उपभोग, उसका आस्वाद अर्थात् उसका अनुभव, प्रसिद्ध उत्कर्ष वाले (चर्तुवर्ग या फलास्वाद) अतिक्रमण करके उसको भी जीतकर अतः उसे निःसार सा बना करके चमत्कार को उत्पन्न करता है।

इस प्रकार से कुन्तक भी इस व्यापक चमत्कार काव्य के उपासक हैं।

क्षेमेन्द्र की प्रतिभा काव्य के नवीन तत्त्वों की ओर स्वतः प्रसूत होती थी उन्होंने **चमत्कार** का वर्णन अपने काव्य **कविकण्ठाभरण** की तृतीय सन्धि में किया है। इस **चमत्कारतत्त्व** का गम्भीतत्व चिन्तकर एवं समीक्षक आचार्य क्षेमेन्द्र ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। उनकी दृष्टि में **चमत्कार** ही काव्य का मुख्य तत्त्व है, जिसके बिना न तो कवि में कवित्व सम्भव है और न काव्य में काव्यत्व।

क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में औचित्य चमत्कार का निरूपण करते हुए कहा है -

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रस जीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना॥

औचित्य रस सिद्धकाव्य की आत्मा है तथा काव्य के औचित्य चमत्कार उत्पन्न करता है। औचित्य रस का जीवन है। रस और औचित्य का गहरा सम्बन्ध है -

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।

क्षेमेन्द्र की दृष्टि से काव्यगत पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकरण, रस, क्रियापद, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपाल, काल देश, कुलव्रत, तत्त्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था विचार, नाम, आशीर्वचन ैर काव्यांगों में औचित्य रहता है।

साधारण व्यक्ति चमत्कार शब्द से आश्चर्य चकित करने वाले शब्द

तथा अर्थ के अनुठेपन का बोध करता है। कोतूहलता से साधारण व्यक्ति चमत्कार खोजा करते हैं। काव्य में नवीनता, चारुता वही कवि उत्पन्न जो शब्दों व अर्थ के साथ सामंजस्य करके अपनी कुशलता का प्रदर्शन करते हैं।

सूक्ति और काव्य में अन्तर है। काव्य में हृदय की कोमल वृत्तियों को रमाने की योग्यता रहती है। सूक्ति से केवल कोतुकता ही उत्पन्न होती है। सूक्ति के माध्यम से कवि अपनी शाब्दिक वैशिष्ट्य को समझाता है। तथा अर्थ में चमत्कृति उत्पन्न करता है। सूक्ति के माध्यम से कवि पाठक के चित्त को आकर्षित करता है।

चमत्कार शब्द का प्रयोग केवल अर्थों के साथ कसरत करने वाले कवि ही किया करते है ऐसा नहीं है **चमत्कार** का प्रयोग भावुक कवि भी कहते हैं। वह चमत्कार के माध्यम से भावों की अनुभूति को तीव्र करते हैं। चमत्कार ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा कवि अपनी बात को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। उक्ति वैचित्य से सरल काव्य में भी चमत्कार के दर्शन हो जाते हैं।

कवि अपनी बात व्यंजना के द्वारा पाठकों के हृदय तक पहुँचाता है जिससे अनुठापन उत्पन्न होता है। यह अनुठापन भावानुभूति को भव्यतर और उग्रतर बना देता है। काव्य का सर्वस्व नहीं बनता है।

सूक्ति और काव्य में यही अन्तर है। सूक्ति में चमत्कार ही चमत्कार झलकता है परन्तु काव्य में उक्ति चमत्कार के द्वारा स्फुट अभिव्यंजित भावों की अभिव्यक्ति ही प्रथम रहती है। भावाभिनिवेश काव्य की पहिचान है और उक्ति वैचित्र्य सूक्ति की -

वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्च वाङमयम्

इन तीनों के योग्य से काव्य में अनुठापन आता है। इन सब का मंजुल समन्वय चमत्कार उत्पन्न करता है। यह चमत्कार ही पाठकों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित करता है।

कवि अपनी प्रतिभा के द्वारा सामान्य विषय का भी अलौकिक रुप प्रस्तुत करता है। वस्तुतः यह तो कवि की प्रतिभा ही है। जो किसी कवि के काव्य में चमत्कार उत्पन्न करता है अन्यथा एक ही सामान्य विषय का विभिन्न कवियों के द्वारा विविध वर्णन सम्भव न होता।

काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः ॥

ऐसे ही हमारे जयोदय महाकाव्य के प्रणेता आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज सिद्धवाक् महाकवि है। इन्होंने अपने जयोदय महाकाव्य में चमत्कार का निरुपण करके उसको विशिष्टता की श्रेणी में रख दिया है।

आचार्य ज्ञानसागरजी का क्षेमेन्द्र के द्वारा प्रतिपादित **चमत्कार तत्त्व** का अपने जयोदय महाकाव्य में वर्णन अद्वितीय है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार आचार्यों की मान्यताओं को नया नाम और वर्गीकरण देकर एक सुव्यवस्थित रुप प्रदान किया है।

यह **चमत्कारतत्त्व** रससिद्ध कवियों की वाणी में सहज रूप से ओतप्रोत रहता है।

क्षेमेन्द्र के विचार से जो भी कवि कहलाता है वह सौन्दर्य योजना में अवश्य समर्थ होता है। जो चमत्कार की सृष्टि नहीं कर सकता उसको अपनी काव्य रचना को केवल पद्य रचना समझना चाहिए। उसको काव्य की श्रेणी में नहीं रख सकते। प्रत्येक काव्य चाहे मुक्तक हो या प्रबन्ध हो बिना चमत्कार के नहीं हो सकता।

काव्य सुन्दर वर्णों से निबद्ध तथा पूर्णतया निर्दोष होते हुए भी चमत्कार हीन रहने पर अनाकर्षक ही रहता है। चमत्कार काव्य में सौन्दर्योत्पादक साधन के रूप में रहता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र के चमत्कार का निरूपण अवलोकनीय है उनके विवेचन में एक प्रकार की स्थिरता प्रतीत होती है। क्षेमेन्द्र ने **चमत्कार** के महत्व का वर्णन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार ऋतु में भी अभी - अभी विकसित विशिष्ट पुष्पों की सुगन्ध के आस्वाद के लिए पर्युत्सुक भ्रमर रमणीय वन की ओर दौड़ता है, उसी प्रकार काव्य में सौन्दर्यातिशय के निर्माण की इच्छा रखने वाला सत्कवि वाणी की चमत्कृति के लोभ से आकर्षक विषय, मनोहर शब्द तथा रमणीय अर्थ वाले काव्य का अनुसरण करता है।

सुकविरतिशयार्थी वाक्चमत्कारलोभा - दभिसरति मनोज्ञे वस्तुशब्दार्थसार्थे।
भ्रमर इव वसन्ते पुष्पकान्ते बनान्ते। नवकुसुमविशेषमोदमास्वादलोलः ॥[1]

चमत्कार निर्माण में अक्षम कवि में कवित्व का अभाव होता है। चमत्कार से रहित काव्य काव्यत्व से हीन होता है। अतः काव्य की कोटि में नहीं आ सकता है। सुन्दर पद-विन्यास जहाँ चमत्कृति पूर्ण हो वहाँ मणिकांचन योग के समान सर्वदा मनोहरता विद्यमान रहती है।

एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण काव्यं चमत्कृतिपदेन बिना सुवर्णम्।
निर्दोषलेशमपि रोहति कस्य चित्ते लावण्यहीनमिव योवनमङ्गनानाम् ॥[1]

युवतियों का तारुण्य लावण्यहीन होने से क्या किसी के चित्त को आकृष्ट करता है ? अर्थात् नहीं। वैसे ही रोष के लेश मात्र से भी रहित वर्णो

1. कविकण्ठाभरण, 3/1
2. कविकण्ठाभरण, 3/2

से निबद्ध काव्य क्या चमत्कार हीन होने पर किसी सहृदय रसिक के मन को आकृष्ट करता है ? कभी नहीं।

अतः **चमत्कार** ही काव्य का सर्वस्व है जिसके कारण सहृदय पाठक काव्योन्मुख होकर आनन्दानुभूति की चर्वणा करता है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने **कविकण्ठाभरण** में **चमत्कार तत्त्व** का दस रुपों में विभाजन किया है -

दशविधश्चमत्कारः - अविचारितरमणीयः, विचार्यमाणरमणीयः, समस्तसूक्तव्यापी, सूक्तेकदेशदृश्यः, शब्दगतः, अर्थगतः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः, प्रख्यातवृत्तिगतश्च।[1]

अर्थात् काव्यगत **चमत्कार** दस प्रकार का होता है।

1. बिना विचार किये प्रतीत होने वाला चमत्कार
2. विचार करने पर प्रतीत होने वाला चमत्कार
3. समस्त सूक्ति में रहने वाला चमत्कार
4. सूक्ति के एक अंश में रहने वाला चमत्कार
5. शब्द में रहने वाला चमत्कार
6. अर्थ में रहने वाला चमत्कार
7. शब्द तथा अर्थ दोनों में रहने वाला चमत्कार
8. अलंकार में रहने वाला चमत्कार
9. रस में रहने वाला चमत्कार
10. प्रख्यात व्यक्ति के वृत्त में रहने वाला चमत्कार।

इस प्रकार **चमत्कार तत्व** का क्षेत्र शब्द से लेकर काव्य की आत्मा रस तथा उसके स्वरूप पूरे प्रबन्ध तक व्याप्त है।

--- 0 ---

1. कविकण्ठाभरण, 3/2

द्वितीय अध्याय

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर और जयोदय

महाकवि आचार्य ज्ञान सागर का परिचय -

मुनि श्री ज्ञान सागर जी का जन्म अठारहवीं शताब्दी में राजस्थान के सीकर जिले में राणोली ग्राम के छावड़ा गोत्र के खण्डेलवाल जाति में वैश्य परिवार के श्री चतुर्भुज जी के पुत्र रुप में माँ घृतावरी देवी के कोख से हुआ था। श्री चतुर्भुज के छः सन्तान हुई जो सभी पुत्र थे जिनमें पाँच पुत्र जीवित रहे।

सबसे बड़े पुत्र का नाम छगनलाल रखा गया। उसके पश्चात् घृतावरी देवी ने दो जुड़वा पुत्रों को जन्म दिया, दोनों पुत्रों में चेतना न होने के कारण दोनों को ही मृत मान लिया गया। परमपिता परमेश्वर की अद्‌भुत लीला से एक बालक में चेतना लौट आई यही बालक परम सन्त आचार्य ज्ञान सागर जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।[1] इनका बचपन का नाम भूरामल था, इनके पश्चात् माँ घृतावरी देवी ने तीन पुत्रों को जन्म दिया, गंगा प्रसाद, गोरीलाल व देवीदल नाम रखा।

इनके दादा श्री सुखदेव जी दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी थे। इनके पिता का स्वर्गवास विक्रम सम्वत् 1959 को हो गया। उस समय इनके बड़े भाई की अवस्था 12 वर्ष की थी। अतः पिता की मृत्यु के बाद व्यवसाय को व्यवस्था बिगड़ गयी अर्थात् व्यवसाय समाप्त हो गया। बड़े भाई छगनलाल के आजीविका के हेतु एक जैन व्यापारी के यहाँ नौकरी करने लग गये। उस समय भूरामल जी की आयु 10 वर्ष थी अर्थात् बड़े भाई से दो वर्ष छोटे थे।

गाँव में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होनें आगे पढ़ाई के लिए अपने बड़े भाई से बनारस जाने का आग्रह किया। घर की परिस्थितिवश बड़े भाई राजी नहीं हुए परन्तु पढ़ने की तीव्र इच्छा व दृढ़ता देखकर इनके बड़े भ्राता ने 15 वर्ष की आयु में इन्हें वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी।[2]

जब आप स्यादवाद विद्यालय वाराणसी में पढ़ते थे तब सब कार्यो से परे रह कर रात-दिन ग्रन्थों का अध्ययन करने में लगे रहते। एक ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त होते ही दूसरे ग्रन्थ का अध्ययन प्रारम्भ कर देते। इस प्रकार

---

1. मुनि संघ व्यवस्था समिति, नसीराबाद (राज.), श्री ज्ञान सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय, पृ. 2
2. जेनमित्र, साप्ताहिक पत्र, मुनि श्री ज्ञानसागरजी का संक्षिप्त परिचय।

थोड़े ही समय में आपने शास्त्री परीक्षा तक के ग्रन्थों का अध्ययन पूरा कर लिया।[1] श्री भूरामल जी बचपन से ही कठिन परिश्रमी, अध्यवसायी, स्वावलम्बी एवं निष्ठावान थे।

ये अध्ययन काल में गंगा घाट पर गमछे बेचकर उससे प्राप्त धन से अपना भोजन खर्च, विद्यालय में जमा करते और शेष से अपना अन्य खर्च चलाते थे। विद्यालय के 70 वर्ष के इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण देखने व सुनने को नहीं मिला।

आप जब बनारस में पढ़ रहे थे तब तक जैन व्याकरण साहित्य आदि के ग्रन्थ प्रकाशित ही नहीं हुए थे इससे इनका मन क्षुब्ध हो उठा। परिणामतः आपने जैन साहित्य, न्याय, व्याकरण को पुर्नजीवित करने का भी दृढ़ संकल्प ले लिया। अतः विद्यालय के छात्र अजैन व्याकरण और साहित्य के ग्रन्थ पढ़कर ही परीक्षाएँ उत्तीण किया करते थे।

आपको यह देखकर दुःख हुआ कि जब जैन आचार्यो ने व्याकरण साहित्य आदि के एक से एक ग्रन्थों का निर्माण किया है तब हमारे जैन छात्र क्यों नहीं पढ़ते ? पर परीक्षा उत्तीर्ण करने का प्रलोभन उन्हें अजैन ग्रन्थों को पढ़ने के लिए प्रेरित करता था। आपके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अध्ययन समाप्ति के बाद में इस कमी को पूर्ण करेंगे।

जब आप वाराणसी विद्यालय में पढ़ रहे थे उस समय विद्यालय में जितने भी विद्वान अध्यापक थे वे सभी ब्राह्मण थे अतः वे जैन ग्रन्थों को पढ़ाने में आनाकानी करते और पढ़ने वाले को हतोत्साहित भी करते थे। किन्तु आपको जैन ग्रन्थों के पढ़ने और उनको प्रकाश में लाने की प्रबल इच्छा थी। अतः आपने जैसे भी जिस अध्यापक से सम्भव हुआ, आपने जैन ग्रन्थों को ही पढ़ा। जब आप बनारस विद्यालय में पढ़ रहे थे तब वहाँ पर पं. उमराव सिंह जी से ब्रह्मचर्य प्रतिमा[2] अंगीकार कर लेने पर ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध हुए।[3] उनका जैन ग्रन्थों के पठन-पाठन के लिए बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा। वे स्वयं उस समय धर्म शास्त्र का अध्ययन कराते थे। यही कारण है कि पं. भूरामल जी जैन जगत् में प्रसिद्ध महाकवि दिगम्बराचार्य

---

1. पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावना भाग पृ. ढ़।
2. पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, जेनधर्ममृत, 4/135
3. पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, दयोदयचम्पू, प्रस्तावना भाग

ज्ञानसागर बने और अपनी रचनाओं में उनका गुरु रुप में स्मरण किया है।

ज्ञान सागर जी अध्ययन समाप्त करने के बाद राणोली ग्राम वापस आ गये वहाँ पर ग्रामीण विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया तथा स्थानीय जैन बालकों को पढ़ाने का कार्य नि:स्वार्थ भाव से प्रारम्भ किया और शेष समय में साहित्य साधना में लगे रहे। इनकी लेखनी से एक से बढ़कर एक सुन्दर काव्य कृतियाँ जन्म लेती रही। इनकी तरुणाई विद्वता और अजीविकोपार्जन की क्षमता देखकर इनके विवाह के लिए अनेकों प्रस्ताव आये, सगे सम्बन्धियों ने भी आग्रह किया। किन्तु इन्होंने विवाह नहीं किया, क्योंकि इन्होंने वाराणसी में अध्ययन करते हुए ही संकल्प ले लिया था कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर माँ सरस्वती और जिनवाणी की सेवा में, अध्ययन - अध्यापन तथा साहित्य सृजन में ही अपने आपको समर्पित कर देना है।

इस प्रकार जीवन के 50 वर्ष साहित्य साधना, लेखन, मनन, चिन्तन एवं अध्ययन में व्यतीत कर इन्होंने पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया। इसी अवधि में आपने 'दयोदय', 'भद्रोदय', 'वीरोदय', 'जयोदय', 'सुदर्शनोदय' आदि साहित्यिक रचनायें संस्कृत भाषा में प्रस्तुत की।

पचास वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहकर असाधारण ज्ञानार्जन करते हुए 'ज्ञानं भार: क्रियां बिना' क्रिया के बिना ज्ञान भार स्वरुप है इस मन्त्र को जीवन में उतारने हेतु ये त्याग मार्ग पर प्रवृत्त हुए।

52 वर्ष की आयु में सन् 1947 में इन्होंने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से सप्तमप्रतिमा[1] के व्रत अंगीकार किये।[2]

सप्तमप्रतिमा व्रत -

संयम अंश जगो जहाँ, भोग अरूचि परिणाम।
उदय प्रतिज्ञा को भयो, प्रतिमा ताको नाम॥

जब संयम धारण करने का भाव उत्पन्न हो, विषय-भोगों से अंतरंग में उदासीनता उत्पन्न हो, तब जो त्याग की प्रतिज्ञा की जाय वह **प्रतिमा** कहलाती है। वे प्रतिमाएं 11 हैं -

1. दर्शन प्रतिमा 2. व्रत प्रतिमा 3. सामयिक प्रतिमा 4. प्रोषध प्रतिमा 5. सचित्तत्याग प्रतिमा 6. रात्रि भोजन त्याग प्रतिमा 7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा 8. आरम्भ त्याग प्रतिमा 9. परिग्रहत्याग प्रतिमा 10. अनुमतित्याग प्रतिमा 11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा।

श्रावक धर्म - संहिता, पृ. 67

---

1. पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, जैनधर्मामृत, 4/135
1. गोरीलाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ. 33

54 वर्ष की आयु में ये पूर्ण रुप से गृहत्याग कर आत्म कल्याण हेतु जैन सिद्धान्त के गहन अध्यन में लग गये।

सन् 1955 में 60 वर्ष की आयु में आचार्य वीरसागर जी महाराज से ही मनसुरपुर (रेनवाल) में **क्षुल्लक** दीक्षा[1] लेकर **ज्ञानभूषण** के नाम से खनियाँ (जयपुर) में मुनि दीक्षा अंगीकार कर 108 मुनि श्री ज्ञानसागरजी के नाम से विभूषित हुए।

सन् 1965 में मुनि श्री ज्ञानसागरजी के जीवन का महत्त्वपूर्ण वर्ष है। इस वर्ष आपने अजमेर नगर में चातुर्मास किया।[2]

सन् 1972 में 22 नवम्बर को उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री विद्यासागरजी को अपना आचार्य पद सौंपकर **संलेखना व्रत** ग्रहण किया[3] और 1 जून 1973 को प्रात: 10 बजकर 50 मिनट पर नसीराबाद नगर में समाधि मरण द्वारा हमारे आलोच्य महाकवि ज्ञान सागर जी ने अपने पार्थिव शरीर को त्याग दिया।[4]

संलेखनाव्रत का अर्थ -

मनुष्य जीवनभर सुख की पूर्ति के लिए दौड धूप में लगा रहता है। सुख के लिए अनेक प्रकार के कष्ट झेलता है किन्तु जब मौत आती है तो उसे पता ही नहीं चलता। बिना तैयारी के ही मौत उसे अज्ञात की ओर ले जाती है। बहुत कम ऐसे साधक होते है जो जीवन भर मौत का सामना करने की साधना करते हैं। जब उन महापुरुषों को यह आभास होने लगता है यह नश्वर शरीर अब ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है तब वे समस्त वासनाओं और परिग्रह तथा सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर अन्न जल का परित्याग कर मृत्यु का सामना करने का साहस जुटाते हैं। आत्म साधना में लीन ऐसे तपस्वियों के लिए मृत्यु अमरता का सन्देश लेकर आती है। वह उस अनन्त सुख की प्राप्ति में सहायक होती है जिसे पाकर कभी दु:खी नहीं होता है। इस प्रकार की मृत्यु की साधना को जैन धर्म में संलेखना व्रत कहते हैं।

वास्तव में त्याग, तपस्या, उदारता, साहित्य सर्जना आदि गुणों की साक्षात् मूति महाकवि आचार्य मुनि श्री ज्ञान सागर जी महाराज एवं उनके कार्य अनुकरणीय हैं।

---

1. पं. हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री, बाहुबलीसन्देश, पृ. 13
2. श्री इन्द्र प्रभाकर जैन, वीरोदय मासिक प्रपत्र पृ. 1
3. प्रभुदयाल जैन, बाहुबलीसन्देश, पृ. 15
4. पं. चम्पालाल जैन, बाहुबलीसन्देश में से।

आचार्य ज्ञानसागर का कृतित्व -

स्व. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज इस सदी के एक उत्कृष्ट साहित्य सृष्टा थे। उन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के अनेक महाकाव्य, चरित्रप्रधान काव्य, मुक्तक काव्य आदि लिखे। साहित्य जगत में उनका अत्यन्त समादर हुआ। उनकी रचनाओं, उक्तिवैचित्र्य, रस परिपाक, अलंकार छटा, प्रसाद गुण आदि ने समीक्षकों का मन मोह लिया।

सल्लेखनाधारी संकल्प करता है कि जो कुछ भी मेरा दुश्चरित है, उस सभी का मैं मन, वचन, काय से त्याग करता हूँ।

आत्मा का त्याग इसलिए नहीं करता, क्योंकि मेरी आत्मा ही स्पष्ट रुप से ज्ञान, तत्वार्थ श्रद्धान रुप दर्शन में अथवा सामान्य सत्ता के अवलोकन रुप दर्शन में है।

सल्लेखना शब्द सत् और लेखना इन दो शब्दों के संयोग से बना है। सत् का अर्थ सम्यक् और लेखना का अर्थ तनूकरण अर्थात् कृश करना है। बाह्य शरीर और आभ्यन्तर कषायों के कारणों को निवृत्ति पूर्वक क्रमशः भली प्रकार क्षीण करना सल्लेखना है।

शरीर इन्द्रियों को पुष्ट करने वाले समस्त रसयुक्त आहारों का त्याग कर नीरस आहार करते हुए शरीर को क्षीण करना शरीर सल्लेखना है।

सल्लेखना जीवन की अन्तिम वेला में की जाने वाली एक उत्कृष्ट साधना है। जो मनुष्य मरण काल में सल्लेखना व्रत ग्रहण करता है, वह लोक के समस्त सारभूत सुखों को प्राप्त करता है। सल्लेखना करने वाला साधक धर्मरुप अमृत का पान करने के कारण संसार के सभी दुखों से मुक्त हो जाता है तथा आत्मिक अपरिमित सुखों को प्राप्त करता है। (सल्लेखना दर्शन, डॉ. रमेश चन्द्र जैन)

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने अपनी अधिकांश रचनाएं गृहस्थावस्था में लिखी। उस समय वह पण्डित भूरामल शास्त्री जी के नाम से जाने जाते थे। उनका व्यक्तित्व स्वनिर्मित था। जब वह मात्र दस वर्ष के थे तब उनके पिता का देहान्त हो गया था। सबसे बड़े भाई भी दो वर्ष ही बड़े थे। ऐसी स्थिति में अपना दायित्व उन्हें स्वयं संभालना पड़ा और उन्होंने उनका पूर्णरुप से निर्वाह किया।

परम पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के ग्रन्थों की सूची-

संस्कृत भाषा में -

1. दयोदय
   जयोदय
   वीरोदय

सुदर्शनोयोदय
भद्रोदय
मुनि मनोरंजनाशीति
सभ्यकत्व सार शतक
प्रवचन सार प्रतिरुपक

हिन्दी की रचनाएं -

चरित्रकाव्य -

ऋषभावतार
भाग्योदय
विवेकोदय
गुणसुन्दर वृत्तान्त

आचार शास्त्र -

कर्तव्य पथ प्रदर्शन
सचित्तविवेचन
मानव धर्म

द्रव्यानुयोग -

तप्वार्थसूत्र

पद्यानुवाद -

देवागम स्रोत
नियमसार
अष्टपाहुड़
स्वामी कुन्द कुन्द और सनातन जैन धर्म
जैन विवाह विधि

दयोदयचम्पू -

प्रथम लम्ब - जम्बू द्वीप के भारतवर्ष के क्षेत्र के अन्तर्गत आर्यावर्त खण्ड में मालव नाम के प्रसिद्ध देश में उज्जयिनी नामक नगरी है। उस नगरी में वृषभदत्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम वृषभदत्ता था। वृषभदत्ता के राज्य में गुणपाल नाम का अति वैभवशाली राजसेठ था। उनकी पत्नि का नाम गुणश्री था। उनकी विषा नाम की एक पुत्री थी।

एक समय की बात है कि गुणमाल ने भोजन करने के पश्चात् जूठे बर्तनों को द्वार पर डाल दिया। उन जूठे बर्तनों में से एक बालक जूठन निकालकर खाने लगा। उसी समय एक मुनि अपने शिष्य के साथ वहाँ से निकले। मुनि ने अपने शिष्य से कहा कि वह गुणपाल का दामाद होगा ऐसी आश्चर्यजनक बात कही और कहा कि यह और इस नगर के सार्थवाह श्रीदत्त

की पति न के गर्भ से जन्मा है। किन्तु अपने पूर्वजन्मों के पाप के कारण अपने माता - पिता के सुख से वंचित है।

शिष्य ने मुनि से उसके पूर्व जन्म की कथा कहने को कहा - मुनि ने कहा -

अवन्ती प्रदेश में शिप्रा नामक नदी के तट पर शिशपा नामक छोटी सी बस्ती है। उसमें मृगसेन नामक एक धीवर रहता था। उसकी पत्नि का नाम घण्टा था। एक दिन वह मछलियाँ पकड़ने जा रहा था। रास्ते में उसने पार्श्वनाथ के मन्दिर अहिंसां सकोपदेशक दिगम्बर साधु को देखा। उस साधु के अहिंसा पूर्ण शब्दों से प्रभावित होकर उसने मुनि के चरणों को पकड़कर अपने पापी जीवन से उद्धार हेतु उपाय पूछा।

मुनि ने उसे समझाया कि मछलियाँ पकड़ते समय जो मछली सबसे पहले जाल में फँसे उसे छोड़ देना। धीवर ने मुनि की बात को स्वीकर कर लिया।

द्वितीय लम्ब -

मुनि के उपदेश को याद करके वह मृगसेन धीवर शिप्रा नदी के तट पर पहुँचा और उसने अपना जाल जल में बिछा दिया। पहली बार उसके जाल में रोहित मछली फँसी, उसने उसे छोड़ दिया। उसके बाद उसने कई बार जाल फैलाया किन्तु वह मछली बार-बार उसके जाल में फँस जाती और वह प्रतिज्ञानुसार उस मछली को पानी में छोड़ देता।

एक ओर तो अहिंसाव्रत का पालन करना था और दूसरी ओर स्त्री पुत्रादि के भरण - पोषण की चिन्ता। अन्त में वह निराश होकर खाली हाथ घर की ओर चल पड़ा। पति को खाली हाथ देखकर वह देर से आने का कारण पूछा।

पत्नी के पूछने पर धीवर ने साधु पुरुष के समान आचरण करने के अपने निश्चय को बताया। घण्टा धीवरी ने कहा कि गृहस्थ होकर साधु के समान आचरण करने की क्या आवश्यकता ? मृगसेन के बहुत समझाने पर भी वह धीवरी नहीं समझी। क्रोध में आकर उसने अपने पति को घर से निकाल दिया। अपमानित मृगसेन एक निर्जन धर्मशाला में गया और वहाँ विश्राम के लिए लेट गया। उसी समय एक सर्प ने आकर उसे डस लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी। यही मृगसेन धीवर इस बालक के रुप में सार्थवाह के घर जन्मा है।

पति को घर से निकालकर घण्टा अपनी कठोरता पर पश्चाताप करने लगी और उसे ढूँढते - ढूँढते उसी धर्मशाला में पहुँची। वहाँ अपने पति को मरा हुआ देखकर वह सिर पीट पीट कर रोने लगी और अहिंसाव्रत पालन

करने का निश्चय किया। उसी समय जिस सर्प ने मृगसेन को काटा था उसी ने घण्टा को भी काट दिया। वही घण्टा धीवरी गुणपाल की कन्या विषा हुई है। पूर्वजन्म के संयोग के कारण इनका पुनः मिलन हुआ।

तृतीय लम्ब -

गुरु शिष्य की इस बात को सुनकर गुणपाल सेठ आश्चर्य चकित हो गया। उसने सोमदत्त नामक बालक को मारने का निश्चय किया। सेठ ने सोमदत्त को मारने के लिए एक चाण्डाल को नियुक्त किया। चाण्डाल ने सेठ से रुपये लेकर उसे मारने का वचन तो दिया किन्तु उसे मारने की उसकी जरा भी इच्छा न थी। उसने सोमदत्त को अंधेरा हो जाने पर गाँव के बाहर नदी के तट पर जामुन के वृक्ष के नीचे डाल दिया और स्वयं घर आ गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी गायें चराने हेतु गोविन्द नाम का ग्वाला उसी रास्ते से निकला। उसने वृक्ष के नीचे पड़े हुए बालक को उठाया और ले जाकर अपनी पत्नी धनश्री को दे दिया। निःसन्तान दम्पत्ती उस बालक को बड़े स्नेह से पालन करने लगे। बालक यह जानता था कि उसके माता-पिता धनश्री - गोविन्द ही है।

चतुर्थ लम्ब -

ग्वाले के यहाँ पलता हुआ सोमदत्त युवा हो गया। एक दिन गुणपाल किसी कार्य से गोविन्द की बस्ती में आया। उस बालक को जीवित देखकर उसे लगा कि यह मेरा शत्रु है और उसने बातों ही बातों में यह जान लिया कि यह गोविन्द का ओरस पुत्र है। उसके मारने की इच्छा से सेठ ने गोविन्द से उसके पुत्र की बहुत प्रशंसा की तो गोविन्द ने कहा कि आपका जो कार्य हो उसे वह अवश्य पूरा करेगा। एक दिन अवसर पाकर गुणपाल ने एकान्त में सोमदत्त से कहा कि आज मुझे एक आवश्यक समाचार अपने घर भेजना है। क्या करना चाहिए ? सेठ की बात सुनकर सोमदत्त ने कहा कि समाचार मुझे दे दीजिये में आपके घर पहुँचा दूँगां। सोमदत्त गुणपाल से पत्र लेकर शीघ्र चल दिया। थक जाने पर उसने एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया और सो गया। उसके सो जाने पर वसन्तसेना नाम की वेश्या वहाँ से निकली। सोमदत्त के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसका परिचय जानने के लिए उत्सुक होकर वसन्तसेना ने उसके गले में बंधे हुए पत्र को खोलकर पढ़ा। पत्र में सेठ गुणपाल की ओर से अपनी पत्नी के लिए सन्देश था कि विषंसन्दातव्यम् अर्थात सोमदत्त को विष दे दिया जाय। वसन्त ने विचार किया कि सेठ जैसा सज्जन आदमी ऐसा अकार्य नहीं कर सकता। अवश्य ही पत्र लिखने में त्रुटि हुई है। उसने अपनी कन्या विषा के विवाह का ही आदेश दिया होगा। अतः उसने विषं सन्दातव्यम् के स्थान पर विषा सन्दातव्या लिखकर उस पत्र को उसके गले में

बांध दिया।

विश्राम करने के पश्चात् सोमदत्त उठा और सेठ गुणपाल के घर जा पहुँचा। घर पर पहुँचकर सोमदत्त ने वह पत्र महाबल को दे दिया। महाबल व उसकी माता पत्र पढ़कर सोचने लगी कि सेठ की अनुपस्थिति में विषा का विवाह इस युवक से कैसे किया जाय ? तब उन्होंने सोमदत्त से पूछा कि पत्र देते समय उन्होंने ओर कुछ तो नहीं कहा। सोमदत्त ने कहा उन्होंने पत्र में लिखे हुये कार्य को जल्दी सम्पन्न करने के लिए मुझे भेजा है। सेठ जी वहाँ अनेक आवश्यक कार्य होने के कारण नहीं आ सके।

सोमदत्त की बात को सुनकर महाबल और उसकी माता ने शुभ मुहूर्त में विषा और सोमदत्त का विवाह कर दिया।

पंचमलम्ब –

विषा ओर सोमदत्त के विवाह के समाचार को सुनकर गुणपाल विचार करने लगा कि मैंने जो उपाय सोमदत्त को मारने के लिये किये वे सब उसके जीवन के उपाय हो गये। लेकिन अब वह अपने ही घर में आसानी से मारा जा सकता है। गुणपाल यह सोच रहा था कि गोविन्द अपने बेटे के बारे में उससे पूछने लगा। गुणपाल ने झूठी हँसी के साथ बताया कि वह अब मेरा जामाता हो गया है। इसलिए वह कुछ दिन वहीं रहेगा।

सोमदत्त मारने की इच्छा से दूसरे दिन अपने घर को लौट गया। गुणपाल ने महाबल से पत्र मंगवा कर पुनः पढ़ा और उसने सोचा कि दुबारा पत्र न पढ़ने के कारण यह अनिष्ट हो गया। उसने अपनी मारने की इच्छा को दबाकर गुणश्री व महाबल से कहा कि में तो जानना चाहता था कि विषा के लिए यह वर तुम लोगों को ठीक लगा या नहीं। जैसा तुमने किया अच्छा किया किन्तु उसके मारने की इच्छा कम न हुयी।

उसने नागपंचमी के दिन सोमदत्त को बुलाकर मन्दिर में पूजन सामग्री भेजने को कहाँ। सोमदत्त ने उस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया। सोमदत्त के तैयार हो जाने पर गुणपाल मन्दिर के समीप रहने वाले चाण्डाल के पास गया। चाण्डाल को बहुत सा धन देकर सोमदत्त को मारने के लिए कहा। उसने चाण्डाल से कहा कि जो पुरुष पूजन सामग्री लेकर इधर से जाय, उसे मार डालना।

सोमदत्त जब पूजन सामग्री लेकर जाने लगा तो रास्ते में गेंद खेलते हुए महाबल ने अपनी गेंद सोमदत्त को देकर खेलने के लिए कहा तथा हाथ से पूजन की थाली लेकर स्वयं मन्दिर की ओर चला गया। रास्ते में ही चाण्डाल ने तलवार से महाबल का वध कर दिया।

उसके मर जाने का समाचार सारे नगर में फैल गया। गुणपाल इस समाचार को सुनकर बहुत खुश हुआ किन्तु घर जाकर सोमदत्त को जीवित देखकर व अपने पुत्र का सामाचर सुनकर दु:खी हो गया।

षष्ठ लम्ब -

सोमदत्त के स्थान पर महाबल के मर जाने से गुणपाल दु:खी रहने लगा। उसको चिन्तित देखकर पुत्र शोक से दु:खी मन वाली गुणश्री ने अपने पति से दुख का कारण पूछा। पहले तो गुणपाल ने अपनी चिन्ता का कारण नहीं बताया लेकिन अपनी पत्नी के बहुत आग्रह करने पर सब वृत्तान्त बता दिया। पहले तो गुणश्री अपने पति के इस निर्मम निर्णय का विरोध करती रही पर बाद में गुणपाल की बातों में आकर सोमदत्त को मारने का दायित्व स्वयं ही ले लिया।

एक दिन उसने सबके लिए खिचड़ी बनायी और सोमदत्त को मारने के लिए विष से युक्त चार लडडू बना दिये। इतने में ही उसे शोच जाने की आवश्यकता हुई तो उसने अपनी पुत्री को रसोई के कार्य में लगा दिया तथा स्वयं जंगल को चली गयी।

इतने में गुणपाल रसोई की ओर आया और विषा से बोला कि मुझे आवश्यक कार्य से शीघ्र जाना है भूख भी लग रही है। यदि खाने में विलम्ब है तो जो कुछ पहले तैयार हो वह खिला दो। विषा ने कहा जब तक भोजन तैयार नहीं होता है तब तक आप यह लड्डू खा लीजिए। उसने अपने पिता को दो लड्डू दे दिये। गुणपाल ने जैसे ही लड्डू खाये वह गिर पड़ा। विषा के चीखने चिल्लाने को सुनकर पास पड़ोसी आये जब तक गुणपाल के प्राण निकल गये।

गुणश्री ने आकर जब अपने पति को मरा देखा तो दुखी मन से अपने पति के दुष्कृत्यों के लिए पश्चाताप करने लगी। और बचे हुये लड्डू को खाकर वह भी मर गयी।

सप्तम लम्ब -

गुणपाल को राज्यसभा में न देखकर राजा वृषभदत्त ने उसके विषय में मन्त्री से पूछा। मन्त्री ने कहा कि जिस विषयुक्त भोजन को खिलाकर गुणपाल सोमदत्त को मारना चाहता था वही अन्न वह धोखे से खाकर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

राजा ने सोमदत्त को बुलाया और आसन पर बिठा दक कुशल समाचार पूछा। सोमदत्त ने अपने सास, ससुर के मृत्यु पर हार्दिक दु:ख प्रकट किया। राजा ने सोमदत्त के इस दुख के प्रति सहानुभूति प्रंकट करके अपनी पुत्री से विवाह करने का आग्रह किया। सोमदत्त ने विवाह के आग्रह को स्वीकार कर लिया।

सोमदत्त और राजकुमारी के विवाह के समय विषा वहाँ आयी और राजा को प्रणाम किया। राजा ने अपनी कन्या उसे और सोमदत्त को सौंप दी और सोमदत्त को अपना आधा राज्य दे दिया।

एक समय सोमद्त्त के घर एक साधु आये। सोमदत्त विषा और राजकुमारी ने उनका आदर सत्कार किया। मुनिराज ने सम्यग् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चरित्ररुप रत्नत्रय को अपनाने का उपदेश दिया। जिससे प्रभावित होकर सोमदत्त ने दिगम्बरी दीक्षा ले ली। विषा और वसन्त सेना वेश्या ने भी आर्याव्रत धारण किया। सोमदत्त ने तपस्या से सब सिद्धि को प्राप्त किया। विषा और वसन्तसेना ने अपने तप के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति की।

वीरोदय महाकाव्य का संक्षिप्त कथासार -

प्रथम सर्ग -

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब वसुन्धरा हिंसा, दुराचार, स्वार्थलिप्सा और पाप से भरी हुयी थी, वसुन्धरा का उद्धार करने के लिए भगवान महावीर ने जन्म लिया।

द्वितीय सर्ग -

भारत वर्ष के छः खण्ड हैं, जिनमें आर्य खण्ड सर्वोत्तम है। इसी आर्य खण्ड में विदेह नाम का एक देश है। इस देश के सर्वश्रेष्ठ नगर का नाम कुण्डनपुर है। इस नगर के मार्ग व बाजार कैसे सजे होते थे इसका सुन्दर वर्णन इस सर्ग में किया गया है।

तृतीय सर्ग -

इस कुण्डनपुर नामक नगर में राजा सिद्धार्थ शासन करता था। उसने अपने पराक्रम से अनेक राजाओं को अधीन कर लिया था। राजा सिद्धार्थ सौन्दर्य, धैर्य, स्वास्थ्य, गाम्भीर्य, उदारता, प्रजावत्सलता विद्या आदि में निपुण था। उसे चारों परुषार्थों का ज्ञान था।

राजा सिद्धार्थ की पत्नी का नाम प्रियकारिणी था। वह अनुपम सुन्दरी, राजमहिषी, परम अनुरागमयी और पतिमार्गानुगामी थी। वह दया, प्रेम, क्षमा से परिपूर्ण हृदयवाली, शान्तस्वभावी, लज्जाशीला, परमदानशीला थी। रानी समदर्शिता, कोमलता आदि से परिपूर्ण थी। उसने अपने अप्रतिम गुणों के कारण राजा सिद्धार्थ के हृदय में अचल स्थान पा लिया था। राजा - रानी अत्यधिक प्रेम करते थे। इस प्रकार उनका जीवन प्रेममय होकर आनन्द से व्यतीत हो रहा था।

चतुर्थ सर्ग -

आषाढ़ मास की षष्ठी तिथि को भगवान महावीर का रानी प्रियकारिणी के गर्भ में अवतार हुआ। वर्ष ऋतु के सुखद वातावरण से परिपूर्ण एक दिन

रात्रि के अन्तिम समय में रानी ने सोलह स्वप्नों को देखा। प्रातः कालीन स्तुतियों से उनकी निद्रा टूटी, प्रातःकालीन कृत्यों से निर्वृत्त होकर अपनी सखियों के साथ अपने स्वप्न सुनाने और उन स्वप्नों का अभिप्राय जानने की इच्छा से वह अपने पति राजा सिद्धार्थ के पास गई। रानी ने राजा के पास बैठकर अपने स्वप्नों को राजा को सुनाया। राजा ने रानी के स्वप्नों का फल इस प्रकार बताया –

तुमने सर्वप्रथम जो ऐरावत हाथी देखा है, इसका तात्पर्य है कि तुम्हारा पुत्र मदस्रावी गज के समान महादानी होगा।

दूसरे स्वप्न में तुमने जो वृषभ देखा है, उसके समान तुम्हारा पुत्र धर्म की धुरी को धारण करने में समर्थ होगा।

तीसरे स्वप्न में जो तुमने सिंह देखा है, उसके समान उन्मत्तों एवं मुर्खों के गर्व का दलन करने वाला होगा।

चौथे स्वप्न में गजलक्ष्मी देखने का फल है कि तुम्हारा पुत्र इन्द्रादि देवताओं द्वारा सुमेरु पर्वत के शिखर पर अभिषिक्त होगा।

पांचवें स्वप्न में जो तुमने गुंजन करते हुए भ्रमरों से युक्त दो मालाएँ देखी है वे यह प्रकट करती है कि तुम्हारा पुत्र अपनी यशः सुरभि से जगत मण्डल को सुरभित करने वाला और योग्य व्यक्तियों से सम्मानित होगा।

छठें स्वप्न में तुमने चन्द्रमा देखा है जो इस बात का सूचक है कि तुम्हारा पुत्र सभी कलाओं में पारंगत होगा और अपने धर्म रुप अमृत से जगत का सिंचन करेगा।

सातवें स्वप्न में सूर्य देखने का फल है कि तुम्हारा पुत्र लोगों के हृदय कमल का विकासक, अज्ञान रुप अन्धकार का नाशक एवं परम प्रतापी होगा।

आठवें स्वप्न में तुमने जल से परिपूर्ण दो कलश देखे हैं सो तुम्हारा पुत्र लोगों का परम कल्याण करने वाला एवं तृष्णातुर लोगों के लिए अमृत रुप सिद्धि को देने वाला होगा।

नवें स्वप्न में तुमने जल में क्रीडा करती हुई दो मछलियाँ देखी है उसके समान तुम्हारा पुत्र अपनी सुन्दर चेष्टाओं से स्वयं प्रसन्न रहकर जनता को हर्षित करेगा।

दसवें स्वप्न में तुमने आठ हजार से अधिक कमलों से युक्त सरोवर देखा है। उसके समान तुम्हारा पुत्र 1008 लक्षणों से युक्त होगा एवं लोगों के दुःख व पाप का नाशक होगा।

ग्यारहवें स्वप्न में तुमने समुद्र देखा है उसका फल यह होगा कि तुम्हारा पुत्र समुद्र के समान धीर गम्भीर, नवनिधियों और केवल ज्ञान जनित नव लब्धियों का धारक होगा।

बारहवें स्वप्न में तुमने जो सुन्दर सिंहासन देखा है उसके समान ही तुम्हारा पुत्र निरन्तर उन्नति को प्राप्त करने वाला, उत्तम कान्ति से युक्त और शिवराज्य पद का अनुगामी होगा।

तैरहवें स्वप्न में देव सेवित विमान देखने का अर्थ है कि तुम्हारा पुत्र देवताओं से सेव्य, लोगों को मोक्ष दिलाने वाला और अति पवित्र आत्मा होगा।

चौदहवें स्वप्न में तुमने जो श्वेत वर्ण वाला नाग मन्दिर देखा है उसके समान ही तुम्हारा पुत्र अपने उज्ज्वल यश के कारण देव गृह के समान विश्व प्रसिद्ध होगा।

पन्द्रहवें स्वप्न में तुमने निर्मल रत्नों की राशि देखी है, फलस्वरुप तुम्हारा पुत्र अत्यन्त निर्मल गुण राशि से शोभायमान होगा।

सोलहवें स्वप्न में तुमने धूमरहित अग्नि का समूह देखा है। यह स्वप्न इस बात का सूचक है कि तुम्हारा पुत्र भी चिरकालीन दारूण परिपाक वाले कर्म समूह को भस्म करके अपने निर्मल आत्म स्वरुप को प्राप्त करेगा। इस प्रकार तुम्हारा पुत्र तीनों लोकों का स्वामी तीर्थङकर होगा।

उत्पन्न होने वाले अपने पुत्र से राजा द्वारा बताये गये लक्षणों को सुनकर रानी प्रियकारिणी आनन्द से रोमाञ्चित हो गई। तीर्थेश्वर के गर्भवतरणा को जानकर देवताओं ने भी आकर रानी की वन्दना की।

पंचम सर्ग –

भगवान् महावीर के गर्भ में आने के पश्चात् श्री ही आदि देवियाँ वहाँ आई। राजा सिद्धार्थ ने उनका आदर सत्कार किया तथा उनके आने का कारण पूछा। राजा के पूछने पर देवियों ने बताया कि रानी प्रियकारिणी के गर्भ में जिनेन्द्र भगवान् का अवतार हुआ है। अतः इन्द्र के आदेश से तीर्थंकर की पूज्य माता की सेवा करने आये हैं। अतएव हमको पुण्य कार्य की अनुमति मिले। राजा से आज्ञा पाकर सभी देवियाँ कंचुकी के साथ माता के समीप जाकर उनकी चरण वन्दना करने लगी। अपने मधुर वचनों से माता को आश्वस्त किया और लग्नता से सेवा में जुट गयी। देवियों के आग्रह करने पर रानी उनके भगवद्विषयक प्रश्नों का उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट करती थी। इस प्रकार वे सभी देवियाँ माता के साथ ही गर्भस्थ जिनेन्द्र देव की भी सेवा अर्चना करने लगी।

षष्ठ सर्ग –

रानी प्रियकारिणी के गर्भवृद्धि के लक्षणों को देखकर राजा सिद्धार्थ अति प्रसन्न हुए। ऋतुराज बसन्त का आगमन हुआ। चारों ओर प्रसन्नता का साम्राज्य फैल गया। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तम समय में रानी प्रियकारिणी

ने वर्धमान नामक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र की उत्पत्ति होने पर रानी अत्यधिक हर्षित हुई। शिशु के कोमल शरीर से सुगन्धि निःसृत हो रही थी।

सप्तम सर्ग -

भगवान् ने जब जन्म लिया, उस समय सभी दिशाओं में आनन्द का संचार हो गया। इन्द्र का सिंहासन कम्पायमान हो उठा। भगवान् के जन्म का समाचार जानकर इन्द्र ने दूर से ही भगवान् जिनेन्द्र देव को प्रणाम किया और सुर - असुरों सहित कुण्डनपुर को प्रस्थान किया। कुण्डनपुर की सभी देवताओं ने तीन बार प्रदक्षिणा की ओर गोपुर की अग्रभूमि पर उपस्थित हुए। इन्द्राणी ने रानी के प्रसूति गृह में प्रवेश किया। उन्होंने एक माया निर्मित शिशु को माता के पार्श्व में सुला दिया और जिन भगवान् को इन्द्र को सौंप दिया।

जिन भगवान् को देखकर इन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। और ऐरावत हाथी पर बिठा कर जैन मन्दिरों से युक्त सुमेरु पर्वत के लिए प्रस्थान किया। पर्वतराज सुमेरु ने जिन भगवान् को शिर पर धारण किया। देवता लोगों ने क्षीर सागर से भगवान् का अभिषेक किया। अभिषेक करने के पश्चात् भगवान् के शरीर को पोंछकर उनके कोमल शरीर को सुन्दर सुन्दर आभूषणों से विभूषित किया। इस प्रकार देवताओं ने बड़े उत्साह के साथ भगवान् का जन्म महोत्सव मनाया और फिर ले जाकर उन्हें उनकी माता त्रिशला देवी की गोद में सौंप दिया। वे सभी देवता ताण्डव नृत्य से पुरवासी लोगों को आनन्दित करके अपने निवास स्थान को चले गये।

अष्टम सर्ग -

राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र का जन्म महोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न किया। पुत्र के शरीर की बढ़ती हुई कान्ति को देखकर राजा सिद्धार्थ ने अपने पुत्र का नाम श्री वर्धमान रखा। बालक वर्धमान अपनी महान् उदार चेष्टाओं से सम्पूर्ण जनसमुदाय को हर्षित करने लगे।

भगवान् ने धीरे - धीरे बाल्यावस्था को बिताकर युवावस्था में पदार्पण किया। पुत्र को युवावस्था में देखकर पिता ने उनके विवाह के लिए कन्या देखने का निश्चय किया। पिता के विवाह प्रस्ताव को सुनकर उन्होंने विवाह न करने का निश्चय बताया। पिता के बार - बार आग्रह करने पर उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की अपनी इच्छा प्रकट की तथा आजीवन ब्रह्मचारी रहने का अपना निश्चय बताया। पुत्र की ब्रह्मचर्य व्रत के प्रति इतनी निष्ठा देखकर राजा सिद्धार्थ ने हर्षित होकर उनके सिर पर हाथ रखकर यथेच्छ जीवन यापन करने की अनुमति दे दी।

नवम सर्ग -

विवाह करने का प्रस्ताव स्वीकार न करने के पश्चात् भगवान् का

ध्यान संसार की शोचनीय स्थिति की ओर गया। आज संसार में हिंसा, स्वार्थ, परायणता, व्यभिचार, अधर्म, दुर्जनता आदि बुराइयों से लिप्त संसार की रक्षा करने का भगवान ने निश्चय किया। तभी पृथ्वी पर शरद ऋतु का आगमन हुआ। शीत के प्रताप से प्रत्येक व्यक्ति अति शोचनीय दशा को प्राप्त हो रहा है।

दशम सर्ग -

संसार की क्षणभङ्गुरता को देखकर वैराग्य भावना का उदय होता है और एक दिन वे घर छोड़कर वन में जाकर प्रव्रजित हो जाते हैं। भगवान वन जाकर वस्त्राभूषण त्याग कर, केशों को उखाड़ कर मार्गशीर्ष मास के कृष्ण पक्ष की दशमी तिथि को दिगम्बरी दीक्षा ले लेते हैं और मौन व्रत धारण कर लेते हैं। दीक्षित होने के पश्चात् वीर प्रभु के मन में मनः पर्यय नाम का ज्ञान दीपक का उदय होता है।

उन्होंने अपना स्वतन्त्र मार्ग चुना। अपना वीर नाम साथ करने के लिए तपस्या काल के समय कठिन से कठिन विपत्तियों का सामना किया और सब पर विजय प्राप्त की।

एकादश सर्ग -

भगवान् ने ध्यानावस्था में ही अवधि ज्ञान से अपने पूर्व जन्मों के वृत्तान्तों को जान लिया। सबसे पहले भील थे उसके पश्चात् आदितीर्थङ्कर ऋषभदेव के पौत्र मरीचि के रूप में जन्म लिया। मरीचि ही स्वर्ग का देव बना फिर ब्राह्मण के कुल में जन्म लेकर अनेक कुयोनियों से जन्म लेता हुआ एक बार शाण्डित्य ब्राह्मण और उसकी पाराशरिका नाम की स्त्री का स्थावर नाम का श्रेष्ठ पुत्र हुआ। परिव्राजक होकर तपस्या के प्रभाव से माहेन्द्र स्वर्ग का भोग किया। उसके बाद राजगृह नगर में विश्वमूर्ति ब्राह्मण और उसकी जैनी नामक स्त्री के विश्वनन्दी नाम का पुत्र हुआ। विश्वनन्दी महाशुक्र नामक स्वर्ग में गया। उसके पश्चात् विश्वनन्दी पोदनपुर के राजा प्रजापति और रानी मृगावती का त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ। इसके बाद विश्वनन्दी को नरक में जाना पड़ा। इसके पश्चात् वह सिंह योनि को प्राप्त हुआ। यह नारकी सिंह बनकर नरक गया। फिर सिंह रूप में जन्मा उस सिंह को किसी मुनिराज ने उसका पूर्व वृत्तान्त बता दिया। सिंह योनि के पश्चात् वब अमृतभोजी देव हुआ। इस देव ने कनकपुर के राजा के पुत्र के रुप में जन्म लिया। मुनिवेश धारण करने के पश्चात् यह राजकुमार लान्तव स्वर्ग में पहुँचा। फिर इस राजकुमार ने साकेत नगर के राजा व्रजषेण और शीलवती रानी के पुत्र रुप में जन्म ग्रहण किया। अन्त में तपस्या करते हुए महाशुक्र नामक स्वर्ग को गया। इसके पश्चात् पुष्कल देश की पुण्डरीकिणी पुरी के सुमित्र राजा और सुव्रता रानी का प्रियमित्र

नाम का पुत्र हुआ। अन्त में वह सहस्त्रार स्वर्ग में जन्मा। पुनः पुष्कर देश की छत्रपुरी नगरी के राजा अभिनन्दन और रानी वीरमती का नन्द नाम का पुत्र हुआ। इस जन्म में दैगम्बरी दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग का इन्द्र बना। इसी इन्द्र ने अब इस कुण्डनपुरी में राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी के वर्धमान नामक राजकुमार के रुप में जन्म लिया है।

अपने पूर्व जन्मों के वृत्तान्त को महावीर ने स्वयं किए गए पाप का फल बताया। भगवान् विचारते है कि मुझे स्व राज्य अर्थात् आत्मीय स्वरुप की प्राप्ति के लिए परिजनों से असहयोग ही नहीं बल्कि दुर्भावों का बहिष्कार भी करना चाहिए। तभी मेरा स्वराज्य प्राप्ति के लिए किया गया सत्याग्रह सफल होगा।

द्वादश सर्ग -

आत्मतत्त्व का चिन्तन करते हुए महावीर भगवान् ग्रीष्म ऋतु में पर्वत शिखर पर महान् योग से अपने कर्मो की निर्जरा करने में संलग्न हो रहे थे। वर्षा ऋतु में वृक्षों के नीचे खड़े होकर कर्म मल गलाते रहे और शीतकाल में चौराहों पर रात - रात भर खड़े रह कर ध्यान किया करते थे उन्होंने विचार किया कि पीड़ा आत्मा को नहीं ज्ञान रहित शरीर को कष्ट पहुँचाती है। समय - समय पर भगवान् ने एकमासिक और चातुर्मासिक उपवास भी किये। आत्मतत्व को जानकर संसार को पापों से दूर करने के लिए उग्र तपस्या करते हुए साढ़े बारह वर्ष व्यतीत होने पर भगवान् महावीर वैशाख मास की शुक्ला दशमी को भगवान् को कैवल्य विभूति की प्राप्ति हुई। इससमय उनके चार मुख सुशोभित होने लगे। उनके अन्दर सभी विधाओं का प्रवेश हो गया। इसी उल्लासमय वातावरण में इन्द्र ने समवसरण नामक सभामण्डप का निर्माण किया। इसी समवसरण सभामण्डप में भगवान् महावीर ने मुक्ति मार्ग का उपदेश दिया।

त्रयोदश सर्ग -

समवसरण सभा के मध्य भाग में स्थित कमलासन पर भगवान् चार अङ्गुल अन्तरीक्ष पर विराजमान हुए। उनके समीप आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए और देव कृत चौदह अतिशय भी प्रकट हुए। देवतागण दुन्दुभि बजा रहे थे और भगवान् महावीर अपनी मधुरवाणी से सबके कर्ण को अभिषिक्त कर रहे थे।

भगवान् के इस दिव्य रुप से प्रभावित वेद वेदांग का ज्ञाता इन्द्रभूति नामक ब्राह्मण वहाँ आया। उसके मन में महावीर भगवान का वैभव देखकर आश्चर्य हुआ और अज्ञानता वश मन में तर्क वितर्क करने लगा। अन्त में उसने कहा - हे देव मुझे सत्य का ज्ञान कराने की कृपा करें और ऐसा

कहकर चरणों में गिर पड़ा।

भगवान् महावीर स्वामी ने आषाढ़ की गुरु पूर्णिमा को उसे सत्य, अहिंसा और त्याग का उपदेश दिया।

चतुर्दश सर्ग -

श्री वीर भगवान् के उपदेश के महान् व्याख्याता बनकर ग्यारह गणधर हुए - इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, शुचिदत्त, सुधर्म, माण्डव्य, मौर्यपुत्र, अकम्पन, अचल, मेदार्य, प्रभास। इन्होंने भगवान् महावीर जी के सन्देश का प्रसार किया। भगवान् ने सबको उपदेश दिया तथा मिथ्यात्वी इन्द्रभूति आदि ब्राह्मण विद्वानों को क्षण भर में सम्यक्तवी और संयमी बना दिया। भगवान् महावीर स्वामी ने ब्राह्मण के गुणों का ज्ञान कराया। भगवान् के अमृत वचनों को सुनकर इन्द्रभूति का सारा कल्मष धुल गया। सभी गुणधरों का कल्याण हुआ। गणधरों की आध्यात्मिक उन्नति को जानकर अन्य लोग भी महावीर भगवान् की शरण में आने लगे।

पंचदश सर्ग -

समवसरण में उपस्थित सभी व्यक्तियों ने भगवान महावीर के उपदेश को अपनी - अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहण किया। गौतम, इन्द्रभूति ने भगवान् की वाणी को द्वादशाङ्ग रुप से विभाजित किया, और उसका प्रचार प्रसार किया। भगवान् का शिष्यत्व राजवर्ग के लोगों ने ही नहीं ग्रहण किया बल्कि जन सामान्य भी इससे अछूता नहीं रहा। जैन धर्म के अनुयाइयों ने जैन धर्म को तो स्वीकार किया ही साथ ही साथ जिनालयों और जिनाश्रमों का भी निर्माण करवाया। और जैन साधुओं का यथाशक्ति सम्मान किया। महावीर भगवान् ने जिन सर्वलोकन कल्याणकारी उपदेशों को दिया उनमें साम्यावाद, अहिंसा, स्याद्वाद और अनेकान्त प्रमुख थे। जैन धर्म को स्वीकार न करने वालों ने भी जैन धर्म के मूल सिद्धान्त **अहिंसा परमोधर्मः** के ग्रहण किया। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी द्वारा प्रवर्तित जैन धर्म ब्रह्माण्ड के दिगदिगन्तों में विस्तार पाने लगा।

षोडश सर्ग -

भगवान् महावीर स्वामी ने समाजोपयोगी अहिंसा धर्म को बताया है। भगवान् महावीर स्वामी **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।** सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्र दुःखभाग भवेत्॥ के सिद्धान्त को संसार में सर्वत्र देखना चाहते थे। वह अहिंसा, परोपकार, इन्द्रिय संयम आदि गुणों को अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा देते थे।

सप्तदश सर्ग -

भगवान् महावीर स्वामी ने मनुष्यता की व्याख्या करते हुए बताया है

कि सबको समान अधिकार प्राप्त है। कोई किसी से छोटा या बड़ा नहीं है। जो मनुष्य दूसरे का सम्मान करता है और उसकी छोटी बात को बड़ी समझता है वास्तव में वही मनुष्य है। अतएव मानव मात्र का सम्मान करके, आत्मोत्थान के मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए। दूसरों के दोष दर्शन के समय मौन धारण करना चाहिए। और उनके गुणों को ईर्ष्यारहित होकर अपनाना चाहिए। मनुष्य को अपने ज्ञान और धन पर कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए। उच्च नीच का व्यवहार जाति और कुलाश्रित न मानकर गुण और कर्माश्रित मानना चाहिए। पुरुष को दृढ़, आत्मविश्वासी, सत्यनिष्ठ, निर्भीक एवं पाप रहित मन वाला होना चाहिए। संसार के द्वन्दों पर विजय प्राप्त करने वाला पुरुष जितेन्द्रिय होकर जिन कहलाता है। उसका अपनी स्थिति के अनुसार शुभ आचरण ही जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध है।

अष्टादश सर्ग -

भगवान् महावीर स्वामी ने मनुष्यों को कष्टों से पार करने के अनेक उपाय बताये हैं। काल की महत्ता को बताया है कि समय जो राजा को रंक बना देता है और रंक को राजा।

समय के प्रभाव से जब सतयुग, त्रेतायुग में परिणत हुआ तो अव्यवस्था आ गयी जो सतयुग में सुविधाएँ थी वह त्रेतायुग में नहीं थी। यह जो अव्यवस्था फैल रही थी उस अव्यवस्था को नियन्त्रित करने के लिए बसुन्धरा पर चौदह कुलकरों ने जन्म लिया। जिनमें नाभिराय पहले थे। इनकी स्त्री का नाम मरुदेवी था। इन्होंने आदि तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव को पुत्र रुप में प्राप्त किया।

भगवान् ऋषभदेव ने अनेक प्रकार से लोगों का कष्ट दूर किया। उन्हें जीवन यापन का उपदेश दिया। ऋषभदेव ने पुरुषों को 72 कलाओं और स्त्रियों को 64 कलाओं को सिखाया।

गृहस्थ धर्म का पालन करने के पश्चात् ऋषभदेव ने सन्यास ग्रहण किया और लोगों को धर्म के प्रति प्रेरित किया। ऋषभदेव के पश्चात् द्वापर युग में अजितनाथ आदि तेईस तीर्थङ्कर और भी हुए जिन्होंने ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रचार - प्रसार किया।

एकोनविंश सर्ग -

इस सर्ग में अनेकान्तवाद, स्यादवाद, और उसके सात भंगों का वर्णन किया गया है। कोई भी पदार्थ विनष्ट नहीं होता है बल्कि नवीन रुप धारण करता है। सभी पदार्थ अनादिकाल से अपने कारणों से उत्पन्न होते आ रहे है। अतः इसका कोई कर्त्ता सृष्टा या नियन्ता ईश्वरादिक नहीं है।

विंशतितम सर्ग -

भगवान् महावीर स्वामी ने अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिए वह सर्वज्ञ कहे जाते हैं। मनुष्यों को सर्वज्ञता प्राप्त करने के लिए महावीर द्वारा प्रचलित स्यादवाद के मार्ग को अपनाना चाहिए। तभी मुक्ति संभव है।

एकविंश सर्ग -

शरद् काल में भगवान् महावीर स्वामी ने कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को एकान्त वास किया और रात्रि के अन्तिम समय में पावानगर के उपवन में उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग कर मोक्ष प्राप्त किया। भगवान् महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को उनका स्थान प्राप्त हुआ।

द्वाविंश सर्ग -

भगवान् महावीर के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने संसार के कल्याण के लिए जो उपदेश दिया था, काल के प्रभाव से उसकी दशा शोचनीय हो गयी। श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय तक जैन धर्म की गंगा एक प्रवाह रुप से बहती रही किन्तु भद्रबाहु स्वामी के समय में पड़े 12 वर्ष के महान् दुर्भिक्ष के पश्चात् वह धारा दो रुप में विभक्त हो गयी। पहली दिगम्बर सम्प्रदाय, दूसरी श्वेताम्बर सम्प्रदाय। अनेक सम्प्रदाय तथा उपसम्प्रदाय बनने के कारण महावीर स्वामी के उपदेश का यथोचित रुप से पालन नहीं हो सका। जिन बुराईयों से बचने के लिए महावीर स्वामी ने उपदेश दिया था, वे बुराइयाँ जैनियों में प्रकट होने लगी। जैन धर्म का संचालन जैनी लोगों से निकलकर क्षत्रिय वैश्य लोगों के हाथों में आ गया, जिसके कारण जैन धर्म एक जाति या सम्प्रदाय वालों का धर्म माना जा रहा है।

इतना सब होने पर यह नहीं जानना चाहिए कि जैन मतावलम्बियों का धरा पर अभाव हो गया है। आज भी अनेक जितेन्द्रिय महापुरुष है जिनका ज़ीवन दूसरों के लिए दुःखदायी नहीं वरन् सबका कल्याण करने वाला ही है।

भगवान् महावीर स्वामी को हम प्रणाम करते है और हमारी हार्दिक इच्छा है कि उनकी कीर्ति सदा वसुन्धरा पर बनी रहे।

जैन धर्म का सब और प्रसार हो जिससे मनुष्य अपने कर्तव्य मर्ग पर चले, समस्त लोग कर्मठ बने और धर्म के अनुकूल चले। ऐसी कवि की भावना है।

सुदर्शनोदय -

प्रथम सर्ग -

भारत वर्ष में तिलक के समान शोभायमान होने वाला, आर्यावर्त है।

उस आर्य खण्ड में अंग नाम का एक देश है जो अपने अतुलित वैभव के कारण जाना जाता था। इसी देश में चम्पापुरी नाम की एक नगरी थी। इस नगर में धात्रीवाहन नाम का राजा राज्य करता था। उस राजा की अत्यन्त रुपवती किन्तु कुटिल अभयमती नाम की रानी थी।

द्वितीय सर्ग -

उस समय चम्पापुरी में सज्जन, दानी, बुद्धिमान, कलावान वैश्यों में सर्वश्रेष्ठ वृषभदास नाम का एक सेठ निवास करता था। उसकी पत्नी सुन्दर, दोष रहित, मृदुभाषिणी एवं जिनमति नाम वाली थी। एक दिन जिनमति ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में हर्ष को बढ़ाने वाली प्रतिपदा तिथि का अनुकरण करती हुयी स्वप्नावली को देखा। प्रातः काल होते ही माङ्गलिक कार्यो को करके सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित होकर अपने पति के पास जाकर बोली कि आज मैंने हर्ष को देने वाली स्वप्नावली देखी है। मैं उसका अभिप्राय जानने के लिए आपके पास आयी हूँ। मैंने प्रथम स्वप्न में सुमेरु पर्वत, दूसरे में कल्पवृक्ष, तीसरे में सागर, चौथे में निर्धूम अग्नि और पांचवे स्वप्न में आकाश में विहार करते हुए विमान को देखा है।

सेठानी की बात को सुनकर सेठ ने कहा इनका फल जानने के लिए हमें योगिराज के पास चलना चाहिए। ऐसा विचार कर सेठ और सेठानी ने जिनालय में जाकर भगवान् की पूजा की और योगिराज के दर्शन के लिए गए। योगिराज के पास जाकर सेठ और सैठानी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया मुनि राज ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् सेठ ने मुनि से निवेदन किया कि मेरी पत्नि ने रात्रि में पाँच स्वप्नों को देखा है। हम उन स्वप्नों का अभिप्राय जानने की इच्छा से आपके पास आये हैं। सेठ की बात को सुनकर मुनिराज बोले कि तुम्हारी पत्नी ने जो पाँच स्वप्न देखे हैं उनका फल है कि वह योग्य पुत्र को जन्म देगी। प्रथम स्वप्न में सुमेरु पर्वत देखा है, उसके समान तुम्हारा पुत्र धैर्यवान होगा। कल्पवृक्ष का फल है उसके अनुसार दानशील होगा। सागर के समान गुण रुप रत्नों का भण्डार होगा, निर्धूम अग्नि के समान अपने कर्मरूप ईंधन को भस्मसात् करके शिवपद को प्राप्त करेगा। स्वर्गवासी देवों का प्रिय पात्र होगा।

मुनि के वचनों को सुनकर सेठ सेठानी अति प्रसन्न हुए। उसके पश्चात् जिनमति ने गर्भ धारण किया जिससे उसका सौन्दर्य दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। सेठ वृषभदास अपनी पत्नि जिनमति का प्रसन्नचित्त होकर संरक्षण करने लगा।

तृतीय सर्ग -

नव मास व्यतीत होने पर शुभ बेला में जिनमति ने पृथ्वी को सुशोभित करने वाले पुत्र को जन्म दिया। सेवक से पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर

वृषभदास अति प्रसन्न हुआ। वृषभदास ने भक्ति पूर्वक जिनगृह में जाकर जिनेन्द्र देव का पूजन किया तथा अत्यधिक दान दिया। वृषभदास ने प्रसूति गृह में पहुँच कर पत्नि और पुत्र पर गन्धोदक छिड़का। सेठ पुत्र दर्शन से पहले जिनदेव के दर्शन करने गया था अत: स्वभाव से सुन्दर उस बालक का नाम सुदर्शन रखा। बालक अपनी बाल चेष्टाओं से घर के सभी लोगों के हर्ष में वृद्धि करने लगा।

कुमार अवस्था प्राप्त होने पर सुदर्शन को विद्याध्ययन के लिए गुरु के पास भेजा गया। माँ सरस्वती की कृपा से वह सभी विद्याओं में पारंगत हो गया।

धीरे - धीरे युवा अवस्था को प्राप्त होकर सुदर्शन का सौन्दर्य बढ़ने लगा। एक समय सागरदत्त नामक वैश्य की पुत्री मनोरमा को सुदर्शन ने जिन मन्दिर में पूजन करते समय देखा। तभी से दोनों एक दूसरे से प्रेम करने लगे। कुछ समय के पश्चात् यह वृत्तान्त सेठ वृषभदास को भी पता चला। वह इस बारे में सोच ही रहे थे कि वहाँ मनोरमा के पिता सेठ सागरदत्त आ गये। वृषभदास ने उनका आदर सत्कार किया तथा आने का प्रयोजन पूछा। सागरदत्त ने कहा कि वह अपनी कन्या मनोरमा का विवाह सुदर्शन के साथ करना चाहते हैं। वृषभदास ने हर्षित होकर विवाह की स्वीकृति दे दी और शुभ दिन शुभ बेला में मनोरमा और सुदर्शन का विवाह हो गया।

चतुर्थ सर्ग -

एक समय उस नगर के उपवन में एक ऋषिराज पधारे। चम्पापुरी के लोग उनके दर्शन के लिये गये। सेठ वृषभदास भी अपने परिवार सहित दर्शन के लिए गया। मुनि को प्रणाम किया। मुनि राज ने धर्म वृद्धि का आशीर्वाद दिया तब सेठ ने धर्म का स्वरूप पूछा। मुनिराज ने धर्म अधर्म का स्वरुप और भेद समझाये। मुनि की अमृतवाणी को सुनकर सेठ का मोह दूर हो गया तथा वह सब कुछ त्याग कर मुनि बन गया।

मुनि के वचन व पिता के आचरण से प्रभावित होकर सुदर्शन ने भी मुनि बनने की अपनी इच्छा मुनि राज के सामने प्रकट की, और कहा कि मनोरमा के प्रति प्रीति मुझे मुनि बनने में बाधा उत्पन्न करती है। सुदर्शन की बात सुनकर मुनि राज बोले कि हे सुदर्शन ! तुम दोनों के अनुराग का कारण पूर्वजन्म के संस्कार हैं। क्योंकि पहले जन्म में तुम विन्ध्याचल निवासी भील थे और मनोरमा तुम्हारी भीलनी पत्नि। वह भील अपने पापों के कारण से अगले जन्म में कुत्ता हुआ। कुत्ता जिनालय में मरने के कारण उसका जन्म ग्वाले के यहाँ पुत्र रुप में हुआ। एक बार उस ग्वाले के पुत्र ने एक सरोवर से एक सहस्त्र पत्र कमल तोड़ा उसी समय आकाशवाणी हुई कि इस कमल

का उपभोग तुम मत करो। किसी बड़े पुरुष को समर्पण करना, जिसे सुनकर वह बालक सेठ वृषभदास को कमल भेंट करने की इच्छा से गया और आकाशवाणी की बात कहकर वह कमल उन्हें देने लगा। इन्होंने वह कमल राजा को देना चाहा और उस बालक को लेकर राजा के समीप गये। सम्पूर्ण बात जानने पर राजा ने वह कमल जिन भगवान की सेवा में समर्पित करना चाहा। सबको लेकर वह जिन मन्दिर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर राजा ने बड़े महोत्सव से वह सहस्त्रदल कमल बालक के हाथ से जिन भगवान् के चरणों में समर्पित करवा दिया। सेठ वृषभदास ने उस बालक को योग्य जानकर अपने घर सेवक बना लिया।

एक दिन शीतकाल में वह बालक जंगल से लकड़ियों को काट कर घर लौट रहा था। तब उसने मार्ग में एक वृक्ष के नीच ध्यानावस्था में साधु को देखा। उनको गरीब जानकर विचार किया कि निश्चय ही इन्हें शीत सता रहा होगा। अत: उसने उनके आगे आग जला दी और स्वयं भी बैठ गया। सारी रात आग जलाता हुआ वहीं बैठा रहा। प्रात: काल जब मुनिराज ने अपनी समाधि समाप्त की ओर सामने आग जलाते हुए उस बालक को देखा और प्रसन्न होकर **नमोऽर्हते** मन्त्र का उपदेश दिया और कहा कि किसी भी कार्य के करने से पहले इस मन्त्र का स्मरण कर लिया करो। बालक मुनि को प्रणाम करके घर चला आया और मुनि की आज्ञा का पालन करते हुए जीवन यापन करने लगा।

एक दिन जब वह गाय भैसों को चराने के लिए जंगल गया हुआ था, तब एक भैंस किसी सरोवर में घुस गई। उसको निकालने के लिए वह मंत्रस्मरण पूर्वक सरोवर में कूदा। सरोवर में लकड़ी की चोट लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गयी और उस महामन्त्र के प्रभाव से वही बालक सेठ वृषभदास के घर में पुत्र बनकर जन्मा।

वह भीलनी भी मरक भैंस हुई। उसके बाद धोबिन बनी और उसके योग से उसका आर्यिकाओं के साथ समागम हो गया और उसने आर्यिक व्रत को अपना लिया। वही क्षुल्लिका अपने गुणों के कारण तुम्हारी पत्नि मनोरमा बनी। अत: अब तुम दोनों धर्म के अनुकूल धर्म आचरण करते हुए जीवन बिताओ।

मुनिराज के अमृत वचनों को सुनकर सुदर्शन और मनोरमा मुनि के द्वारा बताये गये मार्ग पर चलकर सुख पूर्वक जीवन यापन करने लगे।

पंचम सर्ग -

एक दिन प्रात: काल जिनेन्द्र देव का पूजन करके जब सुदर्शन लौट रहा था तो रास्ते में कपिला ब्राह्मणी ने उसको देखा और उसके अपूर्व सौन्दर्य

पर मोहित हो गयी। उसने सुदर्शन को छल से बुलाने का निश्चय किया। दासी के द्वारा दोस्त की बीमारी का बहाना करके घर बुलाया। जब सुदर्शन दोस्त को अस्वस्थ जानकर उसके कक्ष में गया जहाँ कपिला ब्राह्मणी लेटी थी। उसने रति चेष्टायुक्त मधुर वाणी में स्वागत करते हुए उनका हाथ पकड़ लिया। अपने मित्र के स्थान पर उसकी स्त्री को देखकर वह घबरा गया। तब चतुर सुदर्शन ने अपने को नंपुसक बताकर उससे पीछा छुड़ाया और घर लौट आया।

षष्ठ सर्ग -

सबके मन को मोहित करने वाली बसन्त ऋतु का आगमन हुआ वन क्रीडा के लिए सब लोक उद्यान में गये। रानी अभयमती भी उद्यान में गयी, वहाँ सुदर्शन की पत्नी मनोरमा अपने पुत्र सहित उद्यान में आई तब उसको देखकर कपिला ब्राह्मणी ने रानी से उसका परिचय पूछा। रानी ने बतलाया कि यह नगर के सेठ सुदर्शन की पत्नी है। कपिला तिरस्कार के साथ बोली कि **कहीं नपुंसक के भी पुत्र होते हैं।** उसने अपनी आप बीती बातें रानी को सुना दी। यह सुनकर रानी ने कहा कि कपिला सुदर्शन ने झूठ कह कर तुझे धोखा दिया है। तब कपिला ने रानी से कहा कि वह सुदर्शन को वश में करके दिखाए।

कपिला की चुनौती ने रानी के मन में कामभाव जागृत कर दिया। वह हर समय सुदर्शन के ही बारे में सोचने लगी और निरन्तर कृष होती रही। रानी की दशा देखकर दासी ने रानी से इस मनोव्यथा का कारण पूछा। रानी ने अपना अभिप्राय पण्डिता धाय से कहा। दासी ने कहा आप ऐसा घृणित कार्य छोड़ दीजिए। परपुरुष से कामजन्य स्नेह ठीक नहीं। पर रानी पर उसकी बातों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। रानी ने कहा कि स्त्री भोग्या होती है। उसको अवसर पाते ही बलवान पुरुष के साथ रमण कर लेना चाहिए। अब तू सुदर्शन को लाने का प्रबन्ध कर।

दासी ने विचार किया कि रानी को समझाने में समर्थ नहीं हो सकूँगी क्योंकि मैं उनकी दासी हूँ अत: आज्ञा का पालन करना ही उचित है। उसने सोचा कि अष्टमी चतुर्दशी पर्व के दिन सुदर्शन सेठ शमशान भूमि में प्रतिमा योग द्वारा आत्मध्यान में संलग्न होते है। इस अवस्था में उन्हें पूजा हेतु मिट्टी के पुतले के बहाने रनवास में लाया जा सकता है ऐसा विचार कर अपने कर्तव्य को सिद्ध करने के लिए उद्यत हो गई।

सप्तम सर्ग -

पण्डिता दासी ने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए एक मिट्टी का पुतला बनवाया और उसे वस्त्र से ढक कर पीठ पर लादकर अन्त:पुर में प्रवेश करने

के लिए गयी तभी द्वारपाल ने उसे रोक लिया। दासी ने कहा कि आज रानी अभयमती का उपवास है अतः वह यह पुतला देखकर ही पारणा करेगी। इसी उद्देश्य से भीतर ले जा रही हूँ। अतः मुझे जाने की आज्ञा दो। द्वारपाल ने दासी को धक्खा देकर बाहर किया तो दासी की पीठ पर रखा हुआ पुतला गिरकर टूट गया। इस पर दासी ने जोर-जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया। और अपशब्द बोलने लगी। उसकी बात सुनकर द्वारपाल डर गया और अन्दर जाने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार दासी प्रतिदिन बिना रोक टोक के पुतला महल में ले जाने लगी। अष्टमी के दिन प्रोषद्योपवास ग्रहण कर सुदर्शन सेठ शमशान में सदा की तरह ध्यानावस्था में बैठा था। दासी ने वहाँ पहुँच कर सुदर्शन को रानी के सहवास हेतु प्रेरित किया जब सुदर्शन पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो उसने उसी ध्यानावस्था में सुदर्शन को अपनी पीठ कर लाद लिया और वस्त्र से ढक्कर रोज की तरह रानी के कक्ष में पहुँचा दिया।

सुदर्शन को अपने पास पाकर रानी बहुत खुश हुई। उसने सुदर्शन को डिगाने के लिए अनेक प्रयत्न किये किन्तु सुदर्शन की वैराग्य भावना और भी दृढ़ हो गयी। अपनी काम चेष्टाओं को निष्फल देखकर वह त्रिया चरित्र करना उचित होगा यह सोचकर जोर - जोर से चिल्लाने लगी अरे द्वारपाल दोड़ो यहाँ कोई दुष्ट घुस आया है और मुझे सताना चाहता है। रानी की पुकार को सुनकर सुभट द्वारपाल जल्दी से अन्दर आये व सुदर्शन को राजा के समीप ले गये। राजा ने सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर उसे प्राण दण्ड की आज्ञा देकर चाण्डाल को सौंप दिया।

अष्टम सर्ग -

जब सुदर्शन के बारे में लोगों ने सुना तो लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। कुछ लोग कहने लगे कि सुदर्शन तो पर्वों के दिन शमशान में प्रोषद्योपवास धारण करता है। राजमहल में कैसे पहुँच गया। कुछ लोगों ने कहा सुदर्शन एन्द्रजालिक है।

जब राजा ने सुदर्शन का वध करने का चाण्डाल को आदेश दिया। चाण्डाल ने ज्यों तलवार का प्रहार किया कि वह फूल माला बनकर सुदर्शन के गले का हार बन गई।

जब राजा को यह बात ज्ञात हुई तो वह क्रुद्ध होकर स्वयं ही सुदर्शन को मारने के लिए उद्यत हो गया। ज्यों ही आकर सुदर्शन को मारने के लिए उसने हाथ में तलवार ली त्यों ही उसके अभिमान का नाश करने वाली आकाशवाणी हुई कि यह सुदर्शन अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट रहने वाला महान् जितेन्द्रिय पुरुष है। यह सब प्रकार से निर्दोष है। अपने ही घर के छिद्र को देखो और दोषी का निरीक्षण करो।

इस आकाशवाणी को सुनकर राजा का सब अज्ञान, मोह दूर हो गया और वह सुदर्शन के पास जाकर अपनी भूल के लिए क्षमा मांगने लगा और चरण पकड़कर अपने स्थान पर उसी से राज्य करने का निवेदन करनेलगा।

राजा की बात सुनकर सुदर्शन महापुरुष ने कहा कि राजन् इसमें आपका कोई दोष नहीं है। यह सब तो मेरे पूर्वकृत कर्म का दोष है। आप तो अपराधी को दण्ड ही दे रहे थे जो आपके लिए उचित था। राजन् इस घटना का मेरे मन में जरा भी विकार नहीं है। इस संसार में न कोई किसी का मित्र है न शत्रु। महारानी और आप तो मेरे माता-पिता समान है। आपने मेरे साथ जो किया वह उचित था। प्रत्येक व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति के लिए मद, मात्पर्य आदि दुर्भावो का परित्याग करना चाहिए संसार में सुख-दुःख में एक समान रहना चाहिए। सुख आत्मा का गुण है। वह राज्य को पाकर नहीं मिल सकता, राज्य आप करें अब तो निर्वृत्ति ही मेरे योग्य है।

इस घटना के पश्चात् सुदर्शन ने मुनि बनने का निश्चय कर लिया और घर जाकर अपना अभिप्राय अपनी पत्नी मनोरमा से कहा। उसने कहा जो तुम्हारी गति सो मेरी गति यह सुनकर सुदर्शन प्रसन्न हुआ।

सुदर्शन ने जिनालय में जाकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् का पूजन अभिषेक किया। वही पर विराजमान विमलवाहन नाम के योगीश्वर के दर्शन किये और उन्हीं आचार्य से दोनों ने जिन दीक्षा ले ली और सुदर्शन मुनि बनकर तथा मनोरमा आर्यिका बनकर रहने लगे।

इधर रानी को जब अपनी भेद खुल जाने की बात ज्ञात हुई तो शर्म से फाँसी लगा कर मर गई और मर कर वह पाटिलपुत्र में व्यन्तरी देवी हुई। पण्डिता धाय राजा के भय से भागकर पाटिलपुत्र की प्रसिद्ध वेश्या देवदत्ता की शरण में गई। वहाँ जाकर उसने सारी कहानी सुनाई और सुदर्शन को विचलित करने के लिए कहा।

नवम सर्ग -

सुदर्शन मुनिराज ग्रामानुग्राम विहार करते हुए एक दिन गोचरी के लिए पाटीलपुत्र आये। वहाँ सुदर्शन को देखकर पण्डिता दासी ने देवदत्ता वेश्या को उकसाया। यह सुनकर देवदत्ता ने मुनि का पड़ गाहन किया और अनेक प्रकार की काम चेष्टाओं से सुदर्शन को वश में करना चाहा। जब उसकी चेष्टायें निष्फल हो गयी तो सुदर्शन से बोली कि इस अल्पवय में आपने यह व्रत क्यों

अपनाया है ? परलोक की चिन्ता तो वृद्धावस्था में की जाती है। इस समय इस सुन्दर शरीर का अनादर आप क्यों कर रहे है।

वेश्या के इन वचनों को सुनकर मुनिराज सुदर्शन बोले कि इस शरीर में तू क्या सौन्दर्य देखती है ? यह तो घृणा का स्थान है। यह शरीर ऊपर से सुन्दर दिख रहा है। नाशवान शरीर का सुख आत्मा का सुख नहीं है। आत्मा को सुख पहुँचाने के लिए शरीर के वशवर्ती नहीं रहना चाहिए। तुम्हारे द्वारा यह अंगीकृत मार्ग पर्वत के समान ऊँचा नीचा है। तुम इन्द्रिय विषयों में सुख मानती हो जबकि सुख आत्मा का गुण है। उसका इन्द्रिय विषयों से कोई प्रयोजन नहीं है।

अपने वचनों का विरागयुक्त उत्तर पाकर वेश्या सुदर्शन मुनिराज को अपनी शय्या पर ले गई और अपने हाव भाव दिखाना प्रारंभ कर दिया। किन्तु सुदर्शन के ऊपर उसकी काम चेष्टाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वेश्या ने तीन दिन तक अपनी सभी संभव कलाओं का प्रयोग किया पर उन पर उसका कोई असर नहीं हुआ। तब उसने आश्चर्य चकित होकर उनकी प्रशंसा करती हुई उनके गुंण गाने लगी। उनकी नम्रता, धीरता, जितेन्द्रियता, दृढ़ता की प्रशंसा करती हुई वह बोली मोह अन्धकार के कारण मैंने आपके प्रति जो अपराध किया है उसे क्षमा करें और धर्म युक्त वचनों से मेरा कल्याण करें।

देवदत्ता के इन वचनों को सुनकर सुदर्शन मुनिराज ने उसे उपयुक्त आचरण का स्वरूप समझाया कि पुरुष को जितेन्द्रिय बनने के लिए एकादश नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए।

1. विचारशील मनुष्य को सभी अभक्ष्य, अनुपसेव्य, अनिष्ट, त्रस-बहुल एवं अनन्त स्थावर काय वाले पदार्थों के खाने का त्याग करना चाहिए।
2. गुणों में अनुराग पूर्वक अतिथि को शुद्ध भोजन कराकर स्वयं भोजन करे तथा सदा सदाचार में तत्पर रहना चाहिए।
3. जीवन पर्यन्त त्रिकाल सामायिक करना चाहिए।
4. प्रत्येक पर्व के दिन यथा विधि उपवास करे।
5. प्रत्येक वस्तु को पका कर खाना चाहिए।
6. दिन में दो बार से ज्यादा खान पान न करे और एक ही बार खाने का अभ्यास करें। मानवता को धारण कर निशाचरता को न प्राप्त करें। रात्रि में भोजन न करें।
7. काम सेवन का सर्वथा परित्याग करना चाहिए।
8. इन्द्रिय विषयों पर नियंत्रण रखकर आत्मिक गुणों की प्राप्ति के लिए उद्यत रहना चाहिए।

9. जितेन्द्रिय पुरुष को पूर्व अर्जित धन आदि में भी विरक्ति भाव धारण करना चाहिए। अर्थात् उनका त्याग करे।
10. सांसारिक कार्यों से मन हटाकर सम्पूर्ण समय परम तत्व का चिन्तन करना चाहिए।
11. आहार सिद्धि के लिए अपने चित्त को लोक मार्ग में नहीं लगाना चाहिए।

इस प्रकार मुनिराज के अमृत तुल्य वचनों से देवदत्ता और पण्डिता दासी का मोह दूर हो गया। दोनों ने सुदर्शन मुनिराज से दीक्षा लेकर आर्यिका बन गयी।

देवदत्ता को उपदेश देकर सुदर्शन भी शमशान में जाकर आत्मध्यान में लीन हो गये। एक दिन विहार करती व्यन्तरी ने सुदर्शन को देख लिया। सुदर्शन को देखते ही उसे पूर्व भव याद आ गया और बदला लेने के लिए उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। और अपशब्द बोलने लगी। किन्तु अपनी नश्वर देह पर अत्याचार की चिन्ता न करके वह अजर व अमर आत्मा के प्रति चिन्तन करने लगे। सुदर्शन मुनिराज का अवशिष्ट राग द्वेष नाश को प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। तथा अघातिया कर्मो का नाश हो जाने से उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

मुनि मनोरंजनाशीति का संक्षिप्त कथासार

यह मुक्तक काव्य है। इसमें श्री मान्नभिराजा के पुत्र भगवान् वृषभदेव ने जो मुनिवृत्ति को प्रकट किया उसका निरुपण किया गया है।

इस ग्रन्थ में साधुता का स्वरुप, निर्ग्रन्थवृत्ति का स्वरुप, अहिंसा महाव्रत का स्वरुप, सत्य महाव्रत का स्वरुप, अचौर्यमहाव्रत का स्वरुप, ब्रह्मचर्य महाव्रत का स्वरुप, परिग्रत्याग महाव्रत का स्वरुप बतलाया गया है। तथा अहिंसाव्रत प्रमुख है अहिंसा धर्मवृक्ष की मूल है।

ईर्यासमिति के स्वरुप में साधु के एक स्थान पर विश्राम का काल, चातुर्मास का काल, वर्षा योग के बाद विहार करें यह निरुपित किया गया है।

भाषा समिति का स्वरुप, एषणा समिति का स्वरुप, आहार शुद्धि साधु के गमन की विशेषताएं, साधु के आहार की विशेषता, एषणासमिति की प्रसिद्ध विधि, आहार के समय परिहरणीय सचित्तादि आहार का त्याग, परिमार्जन काल, आदान निक्षेपणसमिति का स्वरुप, प्रतिष्ठापन समिति का स्वरुप, सभी जीवों में समभावना का उपदेश स्वावलम्बनमय जीवन की शिक्षा, समता आवश्यक का स्वरुप, भेद विज्ञान की प्राप्ति का लक्ष्य, मुनिपद ही कल्याण कल्पदुम, मुनि तप और ऋद्धियों का गर्व न करें, सहृदय मनुष्य की भावना, रत्नत्रयधारी की परिणति, साधु को साम्यपद ही श्रेष्ठ, साम्य का साधक स्तवन, वन्दना और प्रतिक्रमण को अपनाये, कायोत्सर्ग का स्वरुप, कायोत्सर्ग का

फल, शरीर के अभाव में आत्मा का विनाश नहीं होता, प्रतिक्रमण का स्वरुप, साधु की चर्या, इन्द्रियाधीन प्राणी की दशा, पन्चेन्द्रियविजय, मूल गुण का स्वरुप, सात शेष गुणों का कथन, साधु को सदा ध्यान-ज्ञान में रत रहना चाहिए, आर्त्तध्यान का स्वरुप व भेद, रौद्रध्यान का स्वरुप, धर्मध्यान का स्वरुप, आज्ञाविचयधर्म ध्यान का स्वरुप विपाकविचयधर्मध्यान में चिन्तनीय विषय, साधु निर्द्वन्द्वता का आश्रय करे, आत्मसुखों के लिए बाह्यसुखों का त्याग आवश्यक, निरन्तर शुभपरिणाम रखे, सिद्ध परमेष्ठी का स्थान प्राप्त करना ही लक्ष्य, संकल्प विकल्प पतन के कारण है, चित्त की स्थिरता ज्ञान और ध्यान से ही होती है। ध्यान का फल, आर्यिकाओं को क्या निषिद्ध है यह बताया गया है। मुनि आर्यिकाओं का सम्पर्क न करें, मुनि के द्वारा परिहरणीय स्थान, समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग का जो समय कहा गया है उसी समय में करना चाहिए, रौद्रध्यान छोड़कर धर्म शुक्लध्यान की प्राप्ति की भावना, स्वाध्याय के योग्य स्थान, नवधाभक्ति द्वारा प्रदत्त आहार शुद्ध है। कार्य के चार कारण द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव कारणों का कथन, मुक्ति के चार कारण, चार कारणों वं निर्ग्रन्थता का फल, साधु के विभिन्न नामों की सार्थकता को कहा गया है।

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी कहते हैं कि मुनिव्रत नि:श्रेयस मोक्ष का पात्र बनने के लिए उचित कारण है। जो वीर प्रभु तीर्थनायक महावीर स्वामी का भजन करते हैं वे सत्यपुरुष संसार सागर को पार करते हैं।

आचार्य ज्ञानसागर का वैदुष्य

जयोदय महाकाव्य में ज्ञान सागर जी का व्याकरणात्मक वैशिष्ट्य

संस्कृत भाषा को जानने के लिए व्याकरण का अध्ययन परम आवश्यक है। व्याकरण का अर्थ है - पदों की मीमांसा करने वाले शास्त्र **व्यक्रियन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्** व्याकरण को वेद पुरुष का मुख कहा गया है। **मुखं व्याकरणं स्मृतम्** जिस प्रकार से शरीर में मुख की अनिवार्यता है उसके द्वारा भोजन ग्रहण करते हैं। जिसके विपाक परिणाम से शरीर का पोषण होता है। वेद रुपी पुरुष के वास्तविक स्वरुप को जानने के लिए व्याकरण का अध्ययन आवश्यक है। मुख के बिना हमारा शरीर पुष्ट नहीं हो सकता है उसी प्रकार व्याकरण के बिना वेद रुपी पुरुष पुष्ट नहीं हो सकता है।

प्राचीन आचार्य ऋषि मुनियों ने व्याकरण की महत्ता बतलायी है। अन्य शास्त्र में गति पाने, पदों की सुन्दर व्याकृति करने और वेदार्थ की सम्यक जानकारीके लिए व्याकरण का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। इसके ज्ञान के बिना काव्य की रचना नहीं हो सकती है। यत: शब्दार्थ का यह भाव ही काव्य है अत: शब्दार्थ के ज्ञान और विवेचन के लिए व्याकरण परम उपयोगी है।

व्याकरण से अनभिज्ञ व्यक्ति एक ऐसा प्राणी है जो वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता और सुनता हुआ भी नहीं सुनता, परन्तु व्याकरण के विद्वान् के लिए वाणी अपने रुप को उसी प्रकार अभिव्यक्त करती है जिस प्रकार सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कामिनी अपने पति के सामने अपने को समर्पण करती है।

उत् त्वः पश्यन् न ददर्श वाचस् उत त्वःश्रणवन् त श्रणोत्येनाम्॥
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्ये उशती सुवासाः॥

प्रत्येक सुकवि का शब्दशास्त्र पर अच्छा अधिकार होता है। इसीलिए उसकी अभिव्यक्तियाँ सुष्ठु, साधु संगत तथा समीचीन होती है।

जब हम जयोदय महाकाव्य में आचार्य ज्ञानसागर जी के व्याकरणात्मक वैदुष्य का दर्शन करेंगे।

न वर्णलोपः प्रकृतेर्न भङ्ग कुतोऽपि न प्रत्ययवत्प्रसङ्गः।
यत्र स्वतो वा गुणवृद्धिसिद्धिः प्राप्ता यदीयापदुरीतिऋद्धिम्।[1]

परिसंख्या अलङ्कार के सहारे कवि ने जयोदय महाकाव्य के प्रथम सर्ग में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से यह प्रतिपादित किया है कि नृपति जयकुमार की शासन प्रणाली एक आदर्श प्रणाली थी। उस राजा की पदरीति समृद्धि प्राप्त थी। जबकि व्याकरण शास्त्र में पदों में कहीं - कहीं किसी वर्ण का लोप पाया जाता है लेकिन उसके राज्य में ब्राह्मणादि वर्णों का लोप नहीं था। अमात्यादि प्रधान पुरुषों का भङ्ग अर्थात् अपमान नहीं होता था। जब कि व्याकरण में किसी प्रत्यय से प्रभावित होने पर प्रकृति अर्थात् मूल तत्व में परिवर्तन हो जाता है। उसके शासन में कभी उन्मार्ग गमन का प्रसङ्ग ही नहीं आता था। इसी तरह व्याकरण भी असाधु शब्दों के प्रयोग की स्वीकृति नहीं देता। प्रजाओं में शौर्यादि गुणों की वृद्धि स्वतः होती थी, जबकि व्याकरण में प्रत्यय, गुण और वृद्धि आदि द्वारा पदों की निष्पत्ति होती है। इस तरह वैयाकरण की पदरीति वर्णलोप से युक्त होती है, प्रकृति (मूलतत्व) विकारयुक्त और प्रत्ययवती होती है। पदों की निष्पत्ति गुण वृद्धि पूर्वक प्रवर्तित होती है। ये बातें जयकुमार के राज्य में नहीं थी।

एक अन्य उदाहरण व्याकरणात्मक ज्ञान का -

भवि द्युतोऽग्रविधिगुणवृद्धिमान् सपदि तध्दितमेव कृतं भजन्।
यतिपतिः कथितो गुणिताहवयः सतत मुक्तिविदामितिं पूज्यपात्॥[2]

ऋषिराज जिन्होंने पृथ्वी पर पापकर्म को नष्ट कर दिया है जो गुणों की

---

1. जयोदयमहाकाव्य 1/13
2. जयोदयमहाकाव्य 1/95

वृद्धि करने वाले हैं। प्राणिमात्र का हित करते हैं वे इस प्रशस्त गुणों से सुविख्यात यतिराज मुमुक्षुजनों के बीच पूज्यपाद हैं।

व्याकरण में धातु के आगे गुण[1] और वृद्धि[2] संज्ञाओं को बताने वाले, तद्धित और कृदन्त प्रकरणों को स्पष्ट करने वाले तथा संज्ञात्मक शब्दों की व्याख्या करने वाले पूज्यपाद नामक आचार्य वैयाकरणों में प्रमुख हैं।

यहाँ कवि ने ऋषिराज व वैयाकरणों की सुन्दर तुलना की है।

उद्धरन्नपिपदानि सन्मनः शब्दशास्त्रमनुतोषयज्जनः।
श्री प्रमाणपदवीं व्रजेन्मुदा वाग्विशुद्धिरुदितार्थ शुद्धिदा।।[3]

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि शब्दशास्त्र पढ़कर उसके अनुसार प्रत्येक शब्द की निरुपित और सज्जनों के मन को रंजित करते हुए अनायास व्याकरण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करे। क्योंकि वचन की शुद्धि ही पदार्थ की शुद्धि की विधायक होती है।

अर्थ को जानने के लिए विभक्तियों, व लिङ्गों तथा व्याकरण का ज्ञान परम आवश्यक है। अर्थ ज्ञान के बिना अध्ययन निष्फल है। शब्द शास्त्र की ही अपर संज्ञा व्याकरण है।

व्याकरणात्मक वैदुष्य की एक और बानगी देखिए -

सदूष्मणा न्तस्स्थसदंशशुकेन स्तनेन साध्वी मुकुलोपमेन।
चेतश्चुरा या पटुतातुलापि स्वरङ्गनामानयिता रुचापि।[4]

इसमें जयकुमार सुलोचना के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सुलोचना का शरीर यौवन की ऊष्मा से युक्त, चोली से आवृत और स्तन युगल से उपलक्षित, साध्वी सुचरिता होती हुई भी दूसरों के मन को चुराने वाली चतुरता के लिये आदर्श है। उसने अपनी कान्ति से देवाङ्गनाओं में सम्मान प्राप्त किया था।

व्याकरण की दृष्टि से इसका दूसरा अर्थ यह है कि उष्मवर्ण श ष स ह, एवं अन्तःस्थवर्ण य र ल व से उपलक्षित मु - म वर्ग अर्थात् प वर्ग प फ ब भ म एवं कु - कवर्ग अर्थात् क ख ग घ ङ् इन वर्णों से विभूषित स्तनों से टवर्ग - ट ठ ड ढ ण की रक्षिका, तवर्ग - तथा द ध न से युक्त चवर्ग - च छ ज झ ञ को अपनी सम्पदा समझने वाली तथा अकार आदि समस्त स्वर और उनके अङ्गों के नाम के अपूर्व ज्ञान से समुन्नत होती हुई कान्ति से

---

1. 'अदेङ गुणः' अष्टाध्यायी
2. वृद्धिरदैत् तदैव
3. जयोदयमहाकाव्य 2/52
4. जयोदयमहाकाव्य 11/78

साध्वी सुलोचना सभी वर्णों एवं मात्रा की अधिकारिणी है। उसने मेरे मन को अधिकार क्षेत्र में कर लिया है।

इससे भी कवि का व्याकरणात्मक वैदुष्य सूचित होता है।

एक अन्य उदाहरण में कवि के व्याकरण सम्बन्धी वैदुष्य को देखा जा सकता है -

अवर्णनीयप्रभयान्विता मेहवर्णनीयाङ्गमिताभिरामे।
स्वान्ते विवणातिशयेकजातिः प्रत्याहृता भाति सुवर्णतातिः॥[1]

सुलोचना अद्वितीय प्रभा से युक्त होकर गुणों के द्वारा आश्रय लेने योग्य शरीर से युक्त है। यह **अ** अक्षर से वर्णनीय प्रभा से, और **ह** अक्षर से वर्णनीय शरीर से युक्त होकर आश्चर्य गर्भित आनन्द मय स्वरुप से युक्त है।

इसने **अ** से **ह** तक की पूरी की पूरी वर्णमाला को प्रत्याहार[2] बना लिया है, इसे सम्पूर्ण वर्णमाला कंठस्थ है। यह सरस्वती के समान मालूम पड़ती है।

मञ्जुलद्यो गुणसारे किल क्वचित् सुसखिः नापदाधारे।
तत्रोपयतो चेतः पत्यौ नानीदृशि ममेतः॥[3]

हे सखि! जो मनोहर और लघु शरीर वाला है, गुणों में श्रेष्ठ है तथा आपत्तियों का स्थान नहीं है ऐसे उपपत्ति जार में अब मेरा चित्त लग रहा है इसके विपरीत विरुप, गुणहीन और विपत्तियों के स्थानभूत पति में नहीं लग रहा है।

पति और **उपपति** दो शब्द है। इनमें उपपति शब्द की **शेषोध्यसखि** सूत्र से **घि** संज्ञा होती है। उपपति शब्द से ङित् विभक्ति पड़े रहते गुण[4] होकर **उपपतये** रुप बनता है तथा उपपति शब्द की तृतीया एकवचन में ना आदेश[5] होकर **उपपतिना** रूप बनता है। ऐसे उपपति शब्द में मेरा मन लग रहा है। पति शब्द के चिन्तन में नहीं क्योंकि उसकी घि संज्ञा नहीं होती, उसमें ङित् विभक्ति पड़े रहते गुण नहीं होता और तृतीय के एक वचन में ना आदेश नहीं होता है।

एक अन्य रूचिकर उदाहरण द्रष्टव्य है -

सखि ! शस्तः सखिवत्यतिरिति किं सिद्धान्ततो न जानासि।
शस्तोऽ तिसखिवदुपपतिरित्यालिः न किं समानासि॥[6]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 11/80 2. आदिरन्त्येन सहेता, अष्टाध्यायी
3. जयोदय महाकाव्य, 16/73
4. घङिन्त, 7/3/111. अष्टाध्यायी–इस प्रकृत सूत्र से यहाँ गुण हुआ।
5. यहा 'दा' सुप् प्रत्यय के स्थान पर आङो नास्त्रियाम्, 7/3/120. अष्टाध्यायी
6. जयोदय महाकाव्य, 16/73

हे सखि! पति मित्रवत् अर्थात् तुम्हारे समान ही प्रशंसनीय है यह तुम नहीं जानती हो। सखि के ऐसा कहने पर नायिका उत्तर देती है। हे आलि उपपति परम मित्र के समान प्रंशसनीय है यह तुम नहीं समझती हो। भाव यह है कि यदि पति मित्र के समान है तो उपपति परम मित्र के समान है।

श्लेष के द्वारा अर्थ बताया गया है। व्याकरणमे शस प्रत्यय द्वितीया के बहुवचन से लेकर पति और सखि शब्द के रूप एक समान चलते हैं और उपपति और अतिसखि शब्द के रुप भी द्वितीया के बहुवचन से लेकर समान चलते हैं।

इन विभिक्ति रूपों का ज्ञान व्याकरण से ही संभव है। जो कवि की व्याकरणात्मक व्युत्पत्ति को सूचित करता है।

निसर्ग एषोऽ पितवाथ भातु विसर्गलोपं सहसे न जातु।
उदिदश्यमाना त्रिजगद्विता या हे लक्ष्मि ! मां मातृवदाशु पाया:॥[1]

हे लक्ष्मि! आपका यह स्वभाव सदा विद्यमान रहे कि आप कभी विसर्ग के लोप को सहन नहीं करती। जिस प्रकार व्याकरण में विसर्ग के लोप को सहन नहीं किया जाता है। परमार्थ से आपका जो दान स्वभाव है उसे कभी नहीं छोड़ती और शब्द स्वरुप की अपेक्षा आप लक्ष्मी शब्द के आगे रहने वाली विसर्गो को नहीं छोड़ती।

उच्चारणमात्र से आप त्रिजगत् का हित करने वाली हो अत: माता के समान आप शीघ्र ही मेरी रक्षा करें।

उपर्युक्त श्लोक में विसर्ग लोप की ओर संकेत किया गया है जो कवि के व्याकरणात्मक वैदुष्य का सूचक है।

जयोदय महाकाव्य में ज्योतिषशास्त्र -

आचार्य ज्ञान सागर जी की ज्योतिष शास्त्र पर पूर्ण आस्था थी। उन्होंने अपने काव्य में तिथियों व नवग्रहों का वर्णन किया है।

सुलोचना की सभा में जब राजकुमार आये तब उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि शूरवीर (सूर्य) बुद्धिमान (बुधग्रह), कवि (शुक्र) महान् वक्ता (बृहस्पति) होकर मंगल (ग्रह या कल्याण) चाहने वाले उपस्थित है। किन्तु इनमें वह सोम्यमूर्ति (चन्द्रग्रह या जयकुमार) कौन है ? जो मेरी प्रसन्नता का आश्रय हो (अथवाकुमुदों को प्रसन्न करने वाला हो) यही सोचकर ही में शनेश्चर (शनिग्रह या धीरे - धीरे चलने वाली) बन रही हूँ।[2]

कवि ने राजकुमारों की ग्रहों के साथ बहुत सुन्दर तुलना की है। ज्ञान

1. जयोदय महाकाव्य, 19/35

2. वही, 5/91

सागर जी ने तिथियों के बारे में बताया है। वह राजा ज्योतिरीश अर्थात् कांतिमान् होते हुए ज्योतिर्विद् है, कारण इसकी वाणी सदा नन्दा है (आनन्द देने वाली या आदि तिथि) है। इसकी कीर्ति भद्रा (मनोहरा या दूसरी तिथि) है। वीरता विजया (जय करने वाली या तीसरी तिथि) है। लक्ष्मी रिक्तातिथिका (गरीबों के काम में आने वाली या चतुर्थी तिथि) है। पंचमी तू पूर्णा (इसके मनोरथ को पूर्ण करने वाली या पूर्णा तिथि) बनकर रह।[1]

सूर्यग्रहण अमावस्या के दिन होता है। इस पर जयकुमार ने सोचा कि देखो, अमावस्या के दिन सूर्य के समान इस मांगलिक वेला में तेजस्वी अर्ककीर्ति भी रोषरुप राहु द्वारा ग्रस्त होकर ग्रहण भाव को प्राप्त हो रहा है। यह सोचकर सुलोचना का पति जयकुमार भी कुछ विचार को प्राप्त हुआ।[2]

नागपाश में बांधकर जयकुमार ने अर्ककीर्ति को अपने रथ में डाल दिया। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि राहु द्वारा आक्रान्त सूर्य ही हो। जैसे नाशपाश तो राहु और अर्ककीर्ति हुआ सूर्य।[3]

कविवर ज्ञानसागर का शास्त्रीय वैदुष्य -

सांख्य, बौद्ध और जैन मत के सिद्धान्तों को संक्षेप में कवि ने किस प्रकार प्रकट किया है, यह दर्शनीय है -

कूटस्थतां श्वमरीचिरन्येति तात,
भृष्टाध्वरो भवति वा द्विजराडिहातः ॥
स्याद्वादभागुदित पिच्छगणस्य वृत्तिः
सा सोगताय नियता क्षणदाप्रवृत्तिः ।।[4]

हे तात! श्वरमरीचि-सूर्य, कूटस्थतापेति - पूर्वाचल के शिखर पर स्थिति को प्राप्त हो रहा है। (पक्ष में श्वर स्पष्टवादी, मरीचिसांख्य मत का प्रवर्तक) कूटस्थता - नित्येकवाद को, उपेति प्राप्त हो रहा है। द्विजराट् - चन्द्रमा, भ्रष्टाध्वरो - छूटे मार्ग को प्राप्त हो रहा है। (पक्ष में द्विजराङ-ब्राह्मण, भ्रष्टाध्वर - हिंसक यज्ञ को प्राप्त हो रहा है: उदितपिच्छगणस्यवृत्तिः-ऊपर पूंछ उठाने वाले मुर्गे की वृत्ति वादभाग - शब्द को प्राप्त हो रही है। (पक्ष में मयूरपिच्छ को धारण करने वाले दिगम्बर मुनियों की वृत्ति, स्याद्वाद भाग - स्याद्वाद वाणी को प्राप्त हो रही है और क्षणदाप्रवृत्ति - रात्रि की प्रवृत्ति सौगताय नियता - अच्छी तरह समाप्त हो गई है (पक्ष में सौगत - बौद्धमत को प्राप्त हो गई है क्षणिकवाद को स्वीकृत कर रही है)।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 6/88
2. वही, 7/73 3. वही, 8/81
4. वही, 18/60

मुनिचर्या में श्लेष के माध्यम से जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का भी कवि ने प्रतिपादन किया है।

अनेकान्तप्रतिष्ठोऽपि चेकान्तस्थितिमभ्यगात्।
अकायक्लेसंभूतः कायक्लेशमपि श्रयन्॥[1]

मुनि जयकुमार अनेकान्त प्रतिष्ठोऽपि - अनेक स्थलों में स्थित हुये थे। एकान्तस्थितिमभ्यगात् - एकान्त निर्जन स्थान को प्राप्त हुये थे। दूसरा अर्थ - अनेकान्त नामक स्याद्वाद सिद्धान्त में स्थित होकर भी एकान्त स्थिति विविक्त शय्यायसन नामक तप को प्राप्त हुये थे तथा कायक्लेश से रहित होकर भी कायक्लेश को प्राप्त हुये थे। दूसरे अर्थ पंचाग्नि तपादि क्लेशों से रहित होकर भी आतापनादि योगरुप कायक्लेश तप के आश्रयी थे।

इस प्रकार आचार्य ज्ञान सागर जी ने श्लेष पदों के माध्यम से जहाँ एक और जैन दर्शन के गुणस्थान, मार्गणा, अनेकान्त कर्म अवस्थादि सिद्धान्तों और अपने प्रिय समन्तभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्य नन्दि जैसे पूर्वाचार्यो का नामोल्लेख किया है। काव्य - विनोद का समावेश भी काव्य की विशेषता है। पावन तीर्थ सम्मेद शिखर और जिनवाणी का भी सादर उल्लेख हुआ है। आचार्य ज्ञान सागर जी ने अर्हन्त को ही नमन किया है। इस प्रकार दिगम्बरत्व की रक्षा भी कवि ने की है।

कविवर ज्ञानसागर की बहु आयामी दृष्टि

जयोदयकार का पर्यावरणीय ज्ञान -

आचार्य ज्ञान सागर जी द्वारा रचित जयोदय महाकाव्य अपनी विशेषताओं के कारण एक अपना अलग अस्तित्व रखता है। इस महान् ग्रन्थ के अभ्यन्तर में छिपे पर्यावरणीय संरक्षण के सूत्रों को कवि ने अपने कौसल से लोक जीवन के ताने - बाने में समाहित किया है। अनेक घटनाओं के अंकन के साथ आध्यात्मिक कथ्य का समन्वित एवं समेकित निरुपण काव्यकार की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

सूर्य का हमारे जीवन में बहुत महत्व है क्योंकि यह हमें प्राथमिक ऊर्जा और अक्षय ऊर्जा प्रदान करता है। सौर ऊर्जा अत्यन्त उत्कृष्ट है, क्योंकि सस्ती होने के साथ - साथ यह कभी भी समाप्त नहीं होती तथा प्रदूषण भी नहीं करती।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने सूर्य के ऊर्जस्वी और तेजस्वी[1] दोनों रुपों का वर्णन किया है। सूर्य के प्रभाव से होने वाले जैविक कार्यकलापों की दार्शनिक आख्या भी प्रस्तुत की गयी है।[2] सूर्य के अस्त होने पर पक्षियों की शांति[3] के

1. जयोदय महाकाव्य, 28/12 2. वही 7/9 3. वही 15/15

वर्णन से कवि ने सूर्य के जैविक गतिविधियों के संचालक रुप को स्पष्ट किया है।

जल प्रत्येक जैव – रासायनिक प्रतिक्रिया का माध्यम है अत: जीवन का आधार भी है। जयोदय महाकाव्य ने पानी के शुद्धतम रूप का वर्णन करते हुए हिमनद[1] जल स्वरुप को निर्मल गुण वाला बताया है। ज्ञान सागर जी ने जल के गुणों का वर्णन करते हुए उसके सरस रुप की भी चर्चा की है।

शरद ऋतु में सरोवर का जल कमलों से युक्त हो जाता है[2] इसका वर्णन बड़ा ही मनोहारी किया है। कवि ने जीवन दायिनी गंगा के नित्य प्रवाहमान[3] स्वरुप, उसके सौन्दर्य, उसके प्रवाह, पवित्रता[4] आदि का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

ज़यकुमार के गुणों की प्रशंसा करते हुए कवि ने यमुना नदी का सजीव चित्रण किया है तथा उसका श्यामल रुप भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित किया है।[5]

जयकुमार के गम्भीरता की उपमा समुद्र[6] से की है। वनों की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है यह सर्वविदित है। इसलिये इसकी उपयोगिता का वर्णन कवि ने अपने जयोदय महाकाव्य में किया है। वनों की गहनता का वर्णन करते हुए कवि ने वन की प्रखरता से चर्चा की है जहाँ वृक्षों की गहन शाखाओं के कारण सूर्य की किरणे जयकुमार के मस्तक पर नहीं पड़ रही थी।[7] इसीलिए विश्राम के लिए वह स्थल चुना।

कवि ने वृक्षों के सौन्दर्य[8] एवं उनके छायादार[9] स्वरुप को भी बड़े ही अनूठे ढंग से पेश किया है।

संरक्षण का जो मार्ग बचता है, वह है अधिकाधिक पेड़ लगाना। सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत काफी पेड़ आज सड़कों के किनारे लगाये जाते हैं, इस विषय का उल्लेख करते हुए कवि ने सड़क के सौन्दर्य की तुलना नायिका के सौन्दर्य से करने के क्रम में दोनों और लगे पेड़ो[10] को आधार बनाया है। पेडों को मानव उपकारी मानते हुए उनकी तुलना सदाचारी[11] व्यक्ति से की है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 15/41
2. वही, 4/59
3. वही, 1/8–9
4. वही, 13/58
5. वही, 6/107
6. वही, 6/81
7. वही, 13/68
8. वही, 13/76
9. वही, 13/75
10. वही, 4/15
11. वही, 5/21

इससे ज्ञात होता है कि कवि ने कोई भी पक्ष अपने काव्य में अछूता नहीं छोड़ा। काव्य सौन्दर्य के लिए सभी पक्षों का समीचीन वर्णन किया है।

जयोदय महाकाव्य में पशु - पक्षियों एवं वृक्षों का वर्णन -

जयोदय महाकाव्य में कवि ने बड़ी से बड़ी बात को पशु-पक्षी आदि के माध्यम से सरलता पूर्वक कहकर अपने वैदुष्य को दर्शाया है। एक ही विषय के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग इस काव्य की अलौकिकता को सिद्ध करता है तथा कवि के शब्द भण्डार को भी। अनेक शब्दों को भिन्न - भिन्न रुपों में रखकर जो नये अर्थों की कल्पना की है वह सचमुच ही हृदयग्राही है।

पशु - पक्षियों, पुष्प, पादपों का प्रयोग उपमाओं, रुपकों, उत्प्रेक्षाओं आदि अलंकारों में हुआ है। एक उत्प्रेक्षा है नदी के निकटवर्ती उद्यान में प्रत्येक वृक्ष के नीचे खड़े स्त्री पुरुषों के युगल ऐसे लग रहे थे मानों भोग भूमि के युगल हों।[1] कवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा उद्यान व वृक्ष का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। बकरे के माध्यम से कवि ने संसारी मनुष्यों की दशा का वर्णन किया है। जैसे बलि को संकल्पित बकरा शिर पर रखे जो, चावलों को खाते हुए मृत्यु की ओर नहीं देखता, उसी प्रकार यह प्राणी विषय सेवन में विपत्ति नहीं मानता।[2]

पशुओं में सबसे महत्वपूर्ण पशु हाथी है। हाथी भगवान् अजितनाथ का चिन्ह है। कवि ने जयकुमार के हाथी का नाम सुघोष भी बताया है।[3]

जयकुमार के हाथी ने वैरियों के हाथियों को वैसे ही परास्त कर दिया जैसे क्वचित पद वाले जिन भगवान् के वचनों से चार्वाक आदि के वचन खण्डित हो जाते हैं।[4]

आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने काव्य में घोड़े का भी वर्णन किया है। जयकुमार के घोड़े का नाम जय आया है।[5] घोड़े के सन्दर्भ में एक उत्प्रेक्षा की गई है कि युद्ध में घोड़ों की खुरों से गढढे हो गये थे जो शत्रुओं के खून से भरे हुये वे ऐसे लगते थे मानो यमराज की रानियों के वस्त्र रंगने के लिए कुसुम्भ भरे पात्र हो।[5]

कवि ने अन्य पशुओ का भी वर्णन किया है जिनमें अज[6], गाय[7], श्व[8], महिषी[9] आदि।

पक्षियों में मयूर[10] हंस, राजहंस, चकोर[11], कबूतर, कबूतरी[12] आदि

---

1. जयोदय महाकाव्य, 14/14 2. वही, 25/35 3. वही, 8/61
4. वही, 8/67 5. वही, 8/49 6. वही, 8/27
7. वही, 22/31 8. वही, 2/11 9. वही, 2/91
10. वही, 22/31 11. वही, 12/51 12.वही, 6/89

पक्षियों का प्रयोग जयोदयकार ने किया है।

जैन संस्कृति में सर्वाधिक चर्चित वृक्ष कल्पवृक्ष है। इसे सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला बताया गया है। यह तीर्थंकर शीतलनाथ का चिन्ह है। जयोदयकार ने भी इच्छा पूर्ति के लिए कल्पवृक्ष[1] का प्रयोग किया है तथा अन्य वृक्षों का उल्लेख किया है। रम्भातरु[2], ताड़[3], आम्र[4], चन्दन[5], सागोन[6], देवदारू[7] आदि।

कविवर ज्ञानसागर की बहु आयामी दृष्टि

कवि की दृष्टि में गृहस्थ के लिए विहित कर्म -

सच्चे कवि की दृष्टि क्रान्ति दर्शी होती है, कुछ की एकाङ्गी होती है, लेकिन जयोदय महाकाव्य के प्रणेता आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की दृष्टि समन्वयात्मक थी। एक गृहस्थ के लिए उपयोगी सभी बातों का निर्देश प्रारम्भिक सर्गों में कवि ने किया है।

कविवर ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने **जयोदय महाकाव्य** में गृहस्थ धर्म का विशद् विवेचन किया है। धर्म, अर्थ और काम गृहस्थ के करने योग्य पुरुषार्थ है। गृहस्थ अपनी बुद्धि से परस्पर अनुकूल तीनों पुरुषार्थ करते हुए जीवन यापन करें। इस प्रकार कवि ने त्रिवर्ग सेवन पर बल दिया है।[8]

संसार में एकमात्र घर ही गृहस्थ के लिए भोगों का समुचित स्थान है। उस भोग का साधन धन है अतः गृहस्थ को धनार्जन करना चाहिए वह धन जनता से मेल जोल रखने पर प्राप्त होता है। इसलिए गृहस्थ ही धर्मादि त्रिवर्ग का संग्राहक होता है।[9]

देव पूजन कभी निष्फल नहीं जाता। गृहस्थ धर्म में देव - पूजा को महत्त्वपूर्ण बताया गया है। प्रातः काल के समय गृहस्थ की मन और इन्द्रिया प्रसन्न रहती है। अतः उस समय प्रधानतया सब अनर्थों का नाश करने वाला देव - पूजन करना चाहिए, ताकि सारा दिन प्रसन्नता से बीते। प्रसिद्ध है कि दिन के प्रारम्भ में जैसा शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है, वैसा ही सारा दिन बीतता है।[10]

भगवान् अरहंत देव की सर्वप्रथम पूजा करनी चाहिए क्योंकि वे ही मंगलों में उत्तम और शरणागत वत्सल हैं। वे देवताओं से भी श्रेष्ठ देव हैं। उनके समान शरीरधारियों का हित करने वाला दूसरा कोई नहीं है।[11]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 23/18
2. वही, 1/51
3. वही, 11/21
4. वही, 14/1
5. वही, 1/86
6. वही, 23/13
7. वही, 14/15
8. वही, 21/28
9. वही, 2/19
10. वही, 2/21
11. वही, 2/23

पूजा करने का ढंग कुछ भी हो किन्तु उनका उद्देश्य मूलतः भगवान् की पूजा होने पर उसमें कोई दोष नहीं है। जैसे नर्तकी मूलसूत्र रस्सी का आश्रय लेकर तरह – तरह से नाचती है तो उसका नाचना दोषयुक्त नहीं माना जाता।[1]

जिनेन्द्र भगवान् के बिम्ब की प्रतिष्ठा संसारी आत्माओं के लिए शान्तिदायक होती है। किसान पशु–पक्षियों से बचाये रखने के लिए ही एक मनुष्याकार का पुतला बनाकर खेत के बीच में खड़ा कर देता है। इससे वह अपने उद्देश्य में प्रायः सफल ही होता है।[2]

गृहस्थ किसी कार्य के आरम्भ में भगवान् जिनेन्द्र का नाम लेकर अपने इष्टदेव का स्मरण करे तो निश्चय ही उसका कार्य सिद्ध होगा किन्तु सदाचार का उल्लंघन करने पर सिद्धि प्राप्त न होगी।[3]

गृहस्थ को चाहिए कि वह मन से सदैव जिन भगवान् का स्मरण किया करें। पर्व के दिनों में तो उनकी विशेष रुप से सेवा भक्ति करें। क्योंकि गृहस्थ के लिए निर्दोष रुप से की गयी जिन भगवान् की भक्ति ही मुक्ति देने वाली हुआ करती है। सफल तथा सुखी गृहस्थ जीवन के लिए गृहस्थ को विविध शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए साथ ही उसे विविध कलाओं में निपुण होना चाहिए।[4]

गृहस्थ आश्रम में रहने वाले मनुष्य को काम शास्त्र का अध्ययन भी यत्नपूर्वक करना चाहिए अन्यथा अनेक प्रसंगों में धोखा खाना पड़ता है।[5]

गृहस्थ को निमित्त शास्त्र या ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन भी करना चाहिए।[6]

गृहस्थ को अर्थशास्त्र का ज्ञाता होना जीवन यात्रा के लिए आवश्यक है।[7] गृहस्थ वास्तु शास्त्र का भी अध्ययन करें, ताकि उसके द्वारा अपना निवास स्थान किसी तरह बाधाकारक न हो। इसके अतिरिक्त और भी जो लौकिक शास्त्र है उनका भी अध्ययन करने वाला मनुष्य सबसे चतुर कहलाकर अपने जीवन को सम्पन्नता से बिता सकता है।[8]

भारतीय संस्कृति में दान और अतिथि – सेवा की बड़ी महत्ता है। वक्ष्यमाण पंक्तियों में कवि ने गृहस्थ के लिए इन दोनों को अपरिहार्य माना है। मधुर सम्भाषण पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार योग्य अन्न और जल का दान करते हुए अपने घर पर आये अतिथि का समीचीन रुप से विसर्जन करना

---

1. जयोदय महाकाव्य, 2/29 2. वही, 2/31 3. वही, 2/35
4. वही, 2/37 5. वही, 2/57 6. वही, 2/58
7. वही, 2/59 8. वही, 2/62

अर्थात् उसे प्रसन्न कर भेजना गृहस्थ के धर्म कार्यों में सबसे मुख्य है।[1]

पापों को दूर करने के लिए संयम के उपकरण प्रदान कर अपना यश भूमण्डल पर फैले, इसके लिए दान देता रहे।[2]

गृहस्थ को दान देते रहना चाहिए क्योंकि यतियों का गुण तो विनयादि गुणों से ही प्राप्त होता है।[3]

गृहस्थ अवसर के अनुसार समान धर्मा गृहस्थ को उसके लिए आवश्यक और गृहस्थोचित कार्यों में सुविधा उत्पन्न करने वाले कन्या, सुवर्ण कम्बल आदि धन सम्पत्ति भी दे। क्योंकि संसार में जीवों का निर्वाह परस्पर के सहयोग से ही होता है।[4]

शुक्र, सात्तिक, निराभिष भोजन बुद्धिवर्धक एवं स्वास्थ्यवर्धक होता है। इस तथ्य को कवि ने निम्नांकित श्लोक में उजागर किया है। दान पूजा के अन्तर गृहस्थ को चाहिए कि वह मनुष्योचित तथा अपने आपके लिए रुचिक निरामिष भोजन अपने कुटुम्ब वर्ग के साथ एक पंक्ति में बैठकर किया करे। थाल में कुछ छोड़कर ही सबके साथ उठे। यह गृहस्थ की सामाजिक सभ्यता है।[5]

भारतीय संस्कृति में गृहस्थ के मरणोपरान्त पिण्डदान आदि कृत्यों के सम्यक् सम्पादन के लिए पुत्र का होना आवश्यक बताया गया है। योग्य पुत्र के होने से गृहस्थ की लोक यात्रा अच्छी तरह से सम्पन्न होती है। इसलिए कवि ने अग्रिम श्लोक द्वारा पुत्र की आवश्यकता जतायी है। जो विचारहीन गृहस्थ व्यर्थ के घमण्ड में आकर सन्तानोत्पत्ति के लिए अपनी सहधार्मिणी के साथ में उचित समय पर भी समागम नहीं करता, उस मूर्ख शिरोमणि गृहस्थ की बिना पुत्र के बुरी स्थिति होगी, ऐसा सन्तों, सज्जनों का कहना है।[6]

मनुष्य को चाहिए कि जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरा पीना, परस्त्री सङ्गम, वेश्यागमन, शिकार और चोरी तथा नास्तिक पना इन सबको भी त्याग दे। अन्यथा यह सारा भूमण्डल तरह तरह की आपदाओं से भर जायेगा।

मनुष्य को प्रसन्नता के लिए अपने हृदय को शुद्ध या सरल बनाये रखना चाहिए।[7]

मनुष्य को षट्पद कहा है। गृहस्थोचित छः कार्य आवश्यक रुप से करने चाहिए। सुलोचना गृहस्थोचित सभी कार्य करती थी जैसे - देव पूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।[8]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 2/92 2. वही, 2/94 3.वही, 2/95
4. वही, 2/100 5. वही, 2/107 6.वही, 2/124
7. वही, 9/37 8. वही, 12/32

सद्गृहस्थ को शुभ परिणाम में लीन रहना चाहिए।[1]

इस प्रकार कवि ने जो गृहस्थ धर्म के कर्तव्य बताए हैं। हमें उनका पालन अवश्य करना चाहिए। उसी के द्वारा मनुष्य अपना गृहस्थ धर्म का निर्वाह भली भाँति कर सकता है।

जयोदय महाकाव्य में अर्थ पुरुषार्थ - अर्थ से हमारी सभी आवश्यक वस्तुओं का निर्वाह होता है। इसके बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने अर्थ पुरुषार्थ का विवेचन यत्र - तत्र किया है। संसार में एकमात्र घर ही गृहस्थ के लिए भोगों का समुचित स्थान है। उस भोग का साधन धन है। वह धन हमें जनता से मेल जोल करने पर प्राप्त होता है।[2] क्योंकि सारी सुख सुविधायें अर्थ के द्वारा ही सम्भव है।[3]

जिस मनुष्य ने अपने **अर्थ** नाम को सार्थक कर बताया है और जो 1. कंजूसी 2. जितना खाना उतना कमाना और 3. भूल से भी खर्च कर देना इन दोषों से रहित है तो वह मनुष्य दुनिया में प्रतिष्ठा का पात्र बनकर सर्वथा प्रसन्नता का अनुभव करता है।[4]

मुनि ने जयकुमार को उपदेश देते समय कहा है कि हर मनुष्य को अपनी योग्यता के अनुसार अर्थोपार्जन करना चाहिए।[5] मनुष्य को अर्थ का अर्जन पुरुषार्थ पूर्वक करना चाहिए।[6] धन को अवनीति पूर्वक नहीं कमाना चाहिए। यह कार्य निन्दा के योग्य है क्योंकि अनुचित तरीके से अर्जित धन से क्या कभी चित्त स्वस्थ्य और प्रसन्न रह सकता है ? अर्थात् कभी नहीं।[7] प्राय: लोभी जनों को विवेक नहीं होता है। व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना चाहिए।

आचार्य ने धन संग्रह को अनुचित बताते हुए कहा है कि हे दुर्गुणों के स्थान मन! आशारुपी पाश के प्रभाव से शीघ्र ही धन - धाम को अधिकृत करने के लिए आयु व्यतीत कर दी, रात दिन तूने विश्राम नहीं किया अब शीघ्र ही जिनराज के नाम का पुन: उच्चारण कर। इसके बिना तेरा कल्याण नहीं होगा।[8]

पृथ्वी, स्त्री, मकान, घर ये सभी प्रपंच आतडक युक्त हैं। यह सब जनसमूह को मोहित करते हैं।[9]

धन सम्पत्ति प्रत्येक दिशा में चमकने वाली बिजली के समान हैं। दिखाई देने वाला यह सब कुछ नामरुपात्मक जगत् अनित्य है, स्थिर रहने

---

1. जयोदय महाकाव्य, 18/2 2. वही, 2/21 3.वही, 1/66
4. वही, 2/110 5. वही, 2/111-116 6.वही, 3/1
7. वही, 8/82 8. वही, 23/61 9.वही, 23/65

वाला नहीं है।[1]

धतूरा के आसव से उन्मत्त हुआ अज्ञानी मनुष्य नरमते मनुष्य के लिये आदृत इष्ट धन के संचय में आनन्द मानता है।[2]

लक्ष्मी एक को छोड़कर अन्य को प्राप्त होती है। अत्यन्त उद्दण्ड है। लक्ष्मी का स्वभाव ही चंचल है।[3] मनुष्य जन उसको हृदय से चाहते है। जिनके नाम के अक्षर कल्याण, महत्व और लाभ इन तीनों शब्दों के आदि अक्षर से निहित है। अर्थात् जिसका कमला नाम है। जो गृहस्थों के द्वारा सेवनीय है। हे देवि आप मेरे हृदय में स्थिर रहें।[4]

सिद्धि व सफलता के लिए विनायक गणधन का ही स्मरण करना चाहिए।[5]

व्यक्ति को बिना लोभ के अर्थोपार्जन करना चाहिए। दूसरे के धन से कभी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। मनुष्य को अपने धन से सन्तुष्ट रहना चाहिए। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धनोपार्जन करना जरुरी है।

कविवर ज्ञानसागर का मानवता के प्रति दृष्टिकोण - आचार्य ज्ञानसागर जी की मानवता के प्रति पूर्ण आस्था है। वंश निर्माताओं ने कुलों का निर्माण कर उन कुलों के लिए यह अवश्य कर्त्तव्य निर्दिष्ट किया है। अतः अपने कुल की मर्यादा से स्थित मनुष्य कुलोचित आचरण करे, उसी का नाम सदाचार है।[6] मनुष्य को अपने आचार - विचार में एकता बनायी रखनी चाहिए। मानव कल्याण की भावना को कवियों ने भिन्न - भिन्न रुपों में प्रस्तुत किया है। किसी ने दान के द्वारा, किसी ने अपने प्राणों का त्याग करके, किसी की विपत्ति में साथ देना आदि।

विवाहित की पवित्र भावना को रखने वाला और स्थितिकारी मार्ग का आदर करने वाला गृहस्थ यथाशक्ति अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का दान भी करता रहे। यों पेट तो कुत्ता भी शीघ्र भर ही लेता है।[7] सत् पुरुषों की चेष्टाएँ तो अपने और पराये दोनों के कल्याण के लिए ही होती है।[8]

भावना की पवित्रता सदा कल्याण के लिए ही कही गयी है फिर भी भोगाधीन मन वाले को कम से कम सदाचार का अवश्य ध्यान रखना चाहिए क्योंकि भगवान् सर्वज्ञ ने सदाचार को ही प्रथम धर्म बताया है।[9]

मानवता के बिना मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसके बिना मनुष्य पशु तुल्य है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 25/3 2. वही, 25/14 3. वही, 26/60
4. वही, 19/36 5. वही, 19/40 6. वही, 2/8
7. वही, 2/91 8. वही, 2/104 9. वही, 2/75

गुणी मनुष्य धोबी है, जो समताभाव रुपी पवित्र जल से अपने गुणरुपी वस्त्र को शीघ्र धोता है। वह मैल की रक्षा नहीं करता और विवेक रुपी उत्तम साबुन को लेकर गुणरुपी वस्त्र धोता है।[1]

मानव स्वयं अपने भाग्य को बनाता है या बिगाड़ता है। हर मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मानव जाति के कल्याण के लिए अग्रसर रहे। तभी मानव जाति का सर्वाङ्गीण विकास हो सकेगा।

कविता ज्ञानसागर का धार्मिक दृष्टिकोण - हमारे समाज में अनेक धर्मों का प्रचलन है। सभी लोग अलग - अलग धर्म को मानने वाले हैं। आचार्य ज्ञानसागर जी जैन धर्म को मानने वाले हैं। उन्होंने यत्र - तत्र जैनियों के लिए क्या उचित है तथा क्या अनुचित है अपने जयोदय महाकाव्य में उसका विवेचन किया है। गृहस्थ के लिए बताया है कि वह मनुष्योचित तथा अपने आपके लिए रुचिकर निरामिष भोजन अपने कुटुम्ब वर्ग के साथ एक पंक्ति में बैठकर किया करें। थाल में कुछ छोड़कर ही सबके साथ उठे।[2] मांसाहारी भोजन मानवता का नाश करता है।[3]

धर्म व्यक्ति को कर्तव्यों, सत्कर्मों की ओर ले जाता है। जैन धर्म से हमें लौकिक व पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।[4] धर्म पुरुषार्थ की तो कौए की आँख में स्थित कनीनिका के समान दोनों ही जगह आवश्यकता है।[5] धर्म के बिना मनुष्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता है क्योंकि धर्म ही मनुष्यों के सुख का हेतु माना जाता है। क्योंकि उसके करने से ग्राम शार्दूल भी देव हो सकता है।[6]

धर्म के बिना जीवित रहना कठिन है। धर्म का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। धर्म के प्रभाव से दोनों ने मनुष्य जन्म प्राप्त किया।[7] जो मनुष्य धर्म को नहीं मानता है वह मनुष्य अमृत को छोड़कर स्वयं विष को पीता है।[8]

धर्म से हमें सभी प्रकार के सुखों का अनुभव होता है। इन्द्रियजन्य सुख भी धर्मरुपी वृक्ष के फल है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि धर्मनिष्ठ तथा धर्मपरायण है और धर्म सम्मत समाज का पक्षधर है।

आचार्य ज्ञानसागर और जीवनमूल्य - जीवनमूल्यों का हमारे जीवन में विशिष्ट महत्त्व है। हमारे संस्कार, शिक्षा-दीक्षा, आदर्श सब जीवन मूल्यों पर आधारित है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 26/66 2. वही, 2/107 3. वही, 2/109
4. वही, 12/99 5. वही, 2/10 6. वही, 23/49
7. वही, 23/50 8. वही, 25/83

मनुष्य को गुरुओं व मुनियों का आदर करना चाहिए, उनके प्रति भक्तिमान बने रहना चाहिए। गुरुदेव का मंगलमय दर्शन सदा करते रहना चाहिए।[1] जयोदय महाकाव्य में नायक मुनियों के प्रति पूर्ण निष्ठावान है। उस जयकुमार ने तीन प्रदक्षिणाएँ कर चन्द्ररुप उन साधु महाराज के समक्ष कमलरुप अपने दोनों हाथओं को जोड़कर विनयपूर्वक बैठ गया।[2] कहाँ ऋषिराज इस धरातल पर जिनका दर्शन भाग्यशाली महापुरुषों के लिए भी दुर्लभ है, वह महामणि आज मेरे भाग्योदय से सौभाग्य से मेरे हाथ में शोभित हो रहा है।[3] हमें अपने जीवन में यथोयोग्य रीति से दान, सम्मान और विनय द्वारा न केवल समानधर्मी लोगों को संतुष्ट रखे बल्कि विधर्मी लोगों को भी अपने अनुकूल बनायें।[4] मनुष्य को सदैव धर्म कार्य में संलग्न रहना चाहिए क्योंकि धर्म का मूल विनय ही है।

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि अपने अन्तरङ्ग को शुद्ध रखने के लिए आस्तिक्य, भक्ति, धृति, सावधानता, त्यागिता अनुभक्तिता, कृतज्ञता और नेष्यप्रतीच्छाय आदि गुणों को प्राप्त करें।[5] इन सब गुणों का अपने जीवन में अवश्य पालन करना चाहिए।

कर्म परायण होकर ही धनार्जन करें, अनुचित साधनों का प्रयोग करके धनार्जन नहीं करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कुलक्रम से आयी हुई आजीविका को चलाता रहे और पाप, पाखण्ड से बचता रहे और जैसा अपने आपको अच्छा लगे, उसी समुचित आश्रम में निरत होकर अपना जीवन बितायें। लेकिन जब तक जिस आश्रम को अपनाये तब तक उस आश्रम के नियमों का उल्लंघन कभी न करें।[6]

किसी भी कार्य के प्रारम्भ में भगवान् जिनेन्द्र का नाम लेकर अपने इष्ट देव का स्मरण करें तो निश्चय ही अपने अभीष्ट धर्म की सिद्धि प्राप्त करेगा। लेकिन यदि वह सदाचार का पालन नहीं करेगा तो वह कभी सिद्धि नहीं पायेगा।[7]

अपने कुल की मर्यादाओं में स्थित होकर आचरण करें उसी का नाम सदाचार है। गृहस्थ को चाहिए कि वह कम से कम सदाचार का अवश्य ध्यान रखे। अर्थात् भले पुरुषों को अच्छी लगने वाली चेष्टा, आचरण किया करें, क्योंकि देशना करने वाले भगवान सर्वज्ञ ने सदाचार ही प्रथम धर्म बताया है।[8]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 2/68 2. वही, 1/100 3. वही, 1/106
4. वही, 2/72 5. वही, 2/74 6. वही, 2/116
7. वही, 2/35 8. वही, 2/75

कवि की दृष्टि में सदाचार ही परम धर्म है। सदाचार के प्रति कवि में अटूट आस्था है। हम अपने जीवन में इन आदर्शो का पालन करेंगे तो निश्चय ही हमारा जीवन सफल हो जायेगा।

काम पुरुषार्थ के प्रति कवि का दृष्टिकोण - कवि ने गृहस्थ के लिए काम पुरुषार्थ की महत्ता बतायी है। संसार में सब भोगों में स्त्रियाँ ही सर्वोत्तम भोग है।[1]

युवती रत्न जो अनायास ही प्राप्त हो रही है, सुख, शान्ति के लिए उससे बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं। कारण निश्चय ही इन्द्र जैसे देव श्रेष्ठों ने भी स्त्री या लक्ष्मी की प्राप्ति के उद्देश्य से ही विमानिता स्वीकार कर ली है।[2]

गृहस्थाश्रम में रहने वाले मनुष्य को कामशास्त्र का अध्ययन भी यत्नपूर्वक करना चाहिए।[3] गृहस्थ की बिना पुत्र के बुरी स्थिति होती है। हमारे धर्म की ऐसी मान्यता है। अतः जो विचारहीन गृहस्थ व्यर्थ के घमण्ड में आकर सन्तानोत्पत्ति के लिए अपनी सहधर्मिणी के साथ में उचित समय पर समागम नहीं करता, वह मूर्ख है।[4] पर स्त्री के साथ समागम अनुचित है।[5] कामी की मनोदशा चित्रित करते हुए कहा है कि वह स्त्री को देखकर ठीक से कार्य नहीं कर पाता है।[6] कामीजन तम स्वभावा नायिका को प्रंशसनीय मानते है।[7] काम से पीड़ित मनुष्य इतना अन्धा हो जाता है कि अपने ऊपर आयी विपदा को भी नहीं देख पाता है।[8]

स्त्री की मनोदशा प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं कि स्त्रियों के लिए न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। वे वनों में नयी - नयी घास चरने वाली गायों की तरह नवीन नवीन पुरुषों की और अभिसरण किया करती है।[9]

स्त्रियों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे सोलह वर्ष की युवा पुरुष को मिश्री मिले दूध सा भोगती है। दाढ़ी मूँछ आ जाने पर उसी का खट्टी छाछ की तरह अरुचिभाव से सेवन करती है। दाढ़ी के सफेद बाल हो जाने पर उसे फटी छाछ की तरह देखना भी नहीं चाहती। आश्चर्य है कि वह एक ही पुरुष को तीन प्रकार से देखा करती है।[10]

स्त्रियों के मन की बात को जानना दर्पण में पड़े प्रतिबिम्ब की तरह अत्यन्त गुप्त होता है। इस संसार में कौन पुरुष उनका रहस्य जान सकता है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 5/16 2. वही, 9/23 3.वही, 2/57
4. वही, 2/124 5. वही, 2/125
6.वही, 7/95, 8/51 7. वही, 11/71
8. वही, 13/40 9. वही, 2/147 10. वही, 2/153

अग्नि ईंधन से और समुद्र सैकड़ो नदियों से भले ही सन्तोष को प्राप्त हो जावे, परन्तु यह पुरुष विषय वांछाओं से सन्तोष को प्राप्त नहीं होता, ऐसा यह मोह रुपी विषय शक्तिशाली है।[1]

अनासक्ति रुप से किया गया भोग पाप का कारण नहीं होता है।[2]

मोक्ष के प्रति कवि की दृष्टि - कवि की पुरुषार्थ चतुष्टय में प्रबल आस्था है। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम यह तीनों पुरुषार्थ लौकिक सुख के लिए है, लेकिन मोक्ष पुरुषार्थ जन्मान्तरीय आगामी सुख के लिए हैं ऐसा विचार नित्य ही करना चाहिए।[3] पुरुषार्थों में अन्तिम मोक्ष पुरुषार्थ कर्मों के अभाव का कारण रुप उद्यम है। वह त्यागी तपस्वियों में तो अपने किये गये विहित कर्म मात्र का नाशक है। किन्तु श्रावकों के लिए निश्चय ही वह पापों का नाशक है।[4] मोक्ष से हमारा अगला जीवन सुधर जाता है।

हमारे कुलकरों ने त्रिवर्ग की भक्ति को मोक्ष पुरुषार्थ के प्रति शक्ति प्राप्त करने के लिए उपयोगी बताया है।[5] पहले त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थ) मार्ग का पीछे अपवर्ग (मोक्ष) मार्ग अनुसरण करना होगा। अर्थात् गृहस्थाश्रम में रखकर अन्त में त्यागी बनना होगा।[6] मोक्ष की इच्छा रखने वाले को अध्यात्म विद्या का पान करना आवश्यक है।[7] इसके बिना मुक्ति सम्भव नहीं है। मुनि धर्म को मानने वाले योगिराज शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

चौदह लगामों वाले मुख के धारक और जल, स्थल तथा आकाश रूप तीनों मार्गों से गमन करने वाले सफेद घोड़ों द्वारा महाराज जयकुमार ने शीघ्र ही काशीपुरी को वैसे प्राप्त कर लिया जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र रुप तीन मार्गों से गमन करने वाले एवं चतुर्दश गुणस्थानों को पार करने वाले शुक्ल ध्यान द्वारा शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर ली जाती है।[8]

शुभ और अशुभ दोनों कर्मों का उदय, बन्ध का कारण होने से मोक्ष प्राप्ति में बाधक है। ज्ञानी जीव अपने पद के अनुरुप शुभाचरण करता हुआ श्रद्धा में उसे मोक्ष का साक्षात का कारण नहीं मानता।[9]

यह जीव अपनी आत्मा में विद्यमान सुख को न जानकर पर पदार्थों में सुख को खोजता हुआ दुःखी होता है।[10] जयकुमार ने केवल ज्ञान प्राप्त कर स्नातकत्व अर्हन्त अवस्था प्राप्त कर ली।[11] सतर सुलोचना ने ब्राह्मणी आर्या के द्वारा अच्युतेन्दु पद प्राप्त किया।[12]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 25/16 2. वही, 23/06 3. वही, 2/10
4. वही, 2/22 5. वही, 12/9 6. वही, 12/108
7. वही, 10/118 8. वही, 3/114 9. वही, 25/64
10. वही, 25/61 11. वही, 28/20 12. वही, 28/69

कवि ने अपने जयोदय महाकाव्य में जयकुमार व सुलोचना को उत्तम सुख प्राप्त करने के पश्चात् मोक्ष की ओर अग्रसर किया है।

मनुष्य को पाप-पुण्य छोड़कर मोक्ष का मार्ग अपनाना चाहिए।[1]

जीवन दर्शन -

आचार्य ज्ञानसागर का जीवन के प्रति दृष्टिकोण - प्रत्येक व्यक्ति अनादि काल से नाना प्रकार के राग - द्वेष से ग्रसित रहा है। उनके पूर्व जन्म के संस्कार और वर्तमान परिवेश से एक विशेष प्रकार का जीवन जीने का मार्ग अपनाना पड़ता है। स्थान काल परिस्थिति के भेद से व्यक्ति की मान्यताओं जीवन मूल्यों में अन्तर हुआ करता है। व्यक्ति का धार्मिक विश्वास, जीवन जीने की कला, लोक अभिरुचि आदि मनुष्य को एक विशेष प्रकार का व्यक्तित्व प्रदान करती है।

आचार्य ज्ञान सागर जी के जयोदय महाकाव्य में दर्शन - संस्कृत जैन काव्यों में प्रसंगवश वैदिक और अवैदिक दोनों ही दार्शनिक विचारधाराओं के मौलिक सिद्धान्त निबद्ध किये गये हैं। आचार्य ज्ञानसागरजी ने दर्शन का मधुमय वर्णन किया है जिससे वैरस्य नहीं होता। महाकवि अश्वघोष ने सौन्दरनंद में स्वयं लिखा है **काव्य का रस सरस होता और दर्शन का उपदेश कटु। जैसे कड़वी औषधि मधु में मिला देने पर मीठी हो जाती है उसी प्रकार कटु उपदेश भी काव्य के सरस आश्रय से मधुर हो जायेगा।**

आचार्य ज्ञान सागर जी ने दर्शन के सभी सिद्धान्तों का जयोदय महाकाव्य में वर्णन किया है।

स्याद्वाद का उदाहरण देखिए -

नो नक्तमस्ति न दिनं न तमः प्रकाशः
नैबाध भानुभवनं न च भानुभासः।
इत्यर्हतो नृप! चतुर्थवचो विलास -
सन्देश के सुसमये किल कल्यभासः॥[2]

हे राजन! अर्हन्त भगवान् के चतुर्थ वचन की चेष्टा का सन्देश देने वाले प्रातः कालीन दीप्ति के सुन्दर समय में न रात है, न दिन है, न अन्धकार है, न प्रकाश है, न नक्षत्रों का अनुभवन है और न सूर्य की दीप्तियाँ है। परार्थ न अस्ति रूप है, न नास्ति रूपहै, न अस्तिनास्ति रूप है, किन्तु अवक्तव्य है, क्योंकि एक ही साथ अस्ति - नास्ति ये दो विरोधी धर्म नहीं कहे जा सकते। इसी तरह इस पञ्चम काल में न तो रात है, न दिन है, न अन्धकार है, न प्रकाश है, न नक्षत्रों का अनुभाव-सद्भाव है और न सूर्य की रश्मियाँ है किन्तु प्रकाश और अन्धकार की एक अवक्तव्य दशा है।

1. जयोदय महाकाव्य, 23/76   2. वही, 18/62

वैशषिक दर्शन और न्याय दर्शन का उदाहरण दृष्टव्य है -

येषां मतेनाथ गुणः स्वधाम्ना सम्बध्यते वे समवायनाम्ना।

तेषां तदेक्यात्किल संकृतिर्वाऽ नवस्थितिः पक्षपरिच्युतिर्वा॥[1]

जिनके मत में गुण गुणी के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बन्ध को प्राप्त होता है, उनके मत में समवाय के एक होने के कारण संकर, अनवस्थिति और प्रतिज्ञाहानिरुप दोष आते हैं।

वस्तु की भेदाभेदात्मकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि -

अभेदभेदात्मकमर्थमर्हस्तवोदितं संकलयन् समर्हम्।

शक्नोमि पत्नीसुतवन्न वक्तुं किलेह खंड्गेन नभो विभक्तुम्॥[2]

हे अर्हन्! आपके द्वारा कथित भेदाभेदात्मक पदार्थ को जब मैं पूर्णरूप से ग्रहण करता हुआ कहना चाहता हूँ तब पत्नि के पुत्र के समान कह नहीं सकता हूँ, तात्पर्य यह है कि पुरुष की पत्नी को उसका पुत्र माता कहता है और पति पत्नी कहता है। उसे सर्वथा न मातारुप कहा जा सकता है और न पत्नी रुप, क्योंकि उसमें माता और पत्नी का व्यवहार पुत्र और पति की अपेक्षा से है, इसी तरह किसी वस्तु को भेद और अभेद दोनों रुप कहा जाता है। प्रदेश भेद न होने के कारण वस्तु अपने गुणों से अभेदरुप है। और संज्ञा, लक्षण आदि की अपेक्षा भेद रुप है। दो रूप वस्तु को एकान्त रुप से एक रुप कहना तलवार से आकाश को खण्डित करने के समान अशक्य है। एकानेकात्मता का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि सत् सर्वथा एक नहीं क्योंकि वह अनेक गुणों का संग्रह रुप है। घृत, शक्कर और आटा आदि को मिलाकर लड्डू बनाया जाता है अतः वह देखने में एक प्रतीत होता है। पर जिन पदार्थों के संग्रह रुप से बना है उनकी और दृष्टि देने से वह अनेक रुप हो जाता है। परन्तु जीवादि द्रव्य रुप सत् अनेक गुणों के संग्रह के रुप होने से लड्डू की तरह अनेक रुपता को प्राप्त नहीं होता क्योंकि घृत, शक्करा आदि पदार्थ अपना पृथक - पृथक अस्तित्व लिये हुए लड्डू में सगृहीत होकर एक रुप दिखते है। इस प्रकार जीवादि द्रव्यों में रहने वाले ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण अपनी - अपनी पृथक सत्ता नहीं रखते और न कभी जीवादि द्रव्यों से पृथक थे। इसलिए सत् में जो अनेकत्व है वह उसमें अनेक गुणों के साथ तादात्म्य होने से है, संग्रहरुप होने से नहीं। अनेक गुणों की और दृष्टि देने से जीवादि सत् अनेक रुप जान पड़ते हैं परन्तु उन सबमें प्रदेश भेद न होने से परमार्थ से एकरुपात्मक है।[3]

यह भी विचार किया जाता है कि जिस प्रकार स्त्री वाची **दार** शब्द

---

1. जयोदय महाकाव्य, 26/82 2. वही, 26/78 3. वही, 26/84

एक स्त्री के रहने पर भी दारा इस प्रकार बहु संख्या में प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार सत् भी एक होकर भी अनेकरुपता को प्राप्त होता है, वैयाकरणों ने जिस प्रकार **रामश्च, रामश्च रामश्चेति रामाः** इस द्वन्द्व समास में अनेक राम शब्दों को एक राम शब्द में समाविष्ट कर अनेक में एकत्व को प्रकट किया है, उसी प्रकार पर्यायगत अनेकरुपता को गोणकर द्रव्य में भी आचार्यों ने एकरुपता स्वीकृत की है। तात्पर्य यह है कि सत् एक भी है और अनेक भी है। द्रव्यार्थिक नय सामान्य की विवक्षा में द्रव्य एक है और पर्यायार्थिक नय की विवक्षा में अनेक है।[1]

वस्तु की भावाभावात्मकता का वर्णन इस श्लोक में मिलता है -

भावैकतायामखिलानुव्रत्ति र्भवेदभावे थ कुतः प्रवृत्तिः।
यतः पदार्थी न घटं प्रयाति हे नाथ! तत्तवं तदुभानुपति॥[2]

वस्तु की नित्यनित्यात्मता[3], अद्वैत मानने का निषेध,[4] ब्रह्म से सृष्टि तथा भूतचतुष्ट्य मान्यता का निराकरण[5], निश्चय नय और व्यवहार नय[6] आदि का परिचय अपने जयोदय महाकाव्य में दिया है। सप्तभंग जैसे गहन विषय को भी सरस उदाहरण से हृदयंगम कराया है।

तुलान्तवत्तद् द्वयमस्तु वस्तु प्रतिष्ठित विज्ञहृदीह वस्तुम्।
न पश्चिमांशेन विना बिभर्ति समग्रमंश खलु यास्ति भिति॥[7]

इस प्रकार के वर्णन से कवि के जैन दर्शन के सिद्धान्तों के प्रति अनुराग का सहज आभास हो जाता है। इस सब दृष्टान्तों से आचार्य ज्ञान सागरजी के गम्भीर दार्शनिक ज्ञान की सहज अभिव्यक्ति हो जाती है। जयोदय महाकाव्य में वर्णित दार्शनिक मीमांसा तत्त्वजिज्ञासुओं को सद्बोध एवं सद् शिक्षा में अग्रसर करने में पूर्णतया सक्षम है।

आचार्य ज्ञानसागर के उपास्य देव - आचार्य ज्ञानसागर जी जैन भक्ति निष्ट है। इनके उपास्य देवता जिनेन्द्र भगवान हैं। उनको ही यह मुक्ति - भुक्ति दाता मानते हैं। श्री के द्वारा जो आश्रित है, अच्छी बुद्धि के धारक हैं, आत्मतल्लीनता के द्वारा जो सर्वज्ञ बन चुके हैं, इसलिए मुक्ति के भी स्वामी है, ऐसे जिन भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने आपके कल्याण के लिए अपनी शक्ति के अनुसार में जयोदय महाकाव्य लिख रहा हूँ।[8]

भगवान् जिन के चरणानुयोग का यह उपदेश है कि मनुष्य दिगम्बर बने, उपवास करे, और चित्त में आत्मचिन्तन करते हुए भोगों का त्याग करे तभी संसार से मुक्त हो सकता है।[1]

1. जयोदय महाकाव्य, 26/85 2. वही, 26/87 3. वही, 26/89
4. वही, 26/86 5. वही, 26/93,94 6. वही, 2/3
7. वही, 26/77 8. वही, 1/1 9. वही, 1/22

अरहंत देव ही कल्याणकारी है। कवि कहते हैं कि अरहंत भगवान् सब मंगलों में उत्तम मंगल है और शरणागत वत्सल हैं, देवताओं से भी श्रेष्ठ देव हैं। उनके समान शरीर धारियों का हित करने वाला दूसरा कोई नहीं है।[1]

जिन भगवान के विंब की प्रतिष्ठा भी हम संसारी आत्माओं के लिए शांतिदायक होती है। जिन भागवान् की पूजा विवाह आदि के प्रारम्भ में भी की जाती है तो वह **विवाह पूजा** कहलाती है। जिन भगवान का नाम लेकर ही स्वास्तिक लिखें।[2]

किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले जिनेन्द्र का नाम लेकर इष्ट देव का स्मरण करे तो वह निश्चय ही धर्म की सिद्धि प्राप्त करेगा।[3] तीनों सन्ध्याओं के समय जिन भगवान का स्मरण करना चाहिए जिस प्रकार सूर्य का आतप किसान के अन्न को पकाता है ठीक उसी प्रकार भगवान् का चिन्तन इष्ट सिद्धि करने वाला माना जाता है।[4]

अरहंत भगवान् विघ्न हर्ता है। उनके नामोच्चारण से ही सारी विघ्न बाधाओं का नाश हो जाता है। गृहस्थ को चाहिए कि वह मन से सदैव जिन भगवान् का स्मरण करे, पर्व के दिनों में तो उनकी विशेष पूजा, सेवा भक्ति करे। क्योंकि जिन भगवान् की भक्ति मुक्ति देने वाली हुआ करती है।[5]

जयकुमार कहता है कि हे जिन सूर्य! हे पापहारक संसार का पालन करने वाले, आपके ऊपर विश्वास रखने वाले को पृथ्वी पर सुख-शान्ति, सम्पत्ति तथा आनन्द प्राप्त होता है। वह व्यक्ति निश्चिंत हो जाता है फिर उसके पास अहंभाव कैसे रह सकता है ? विघ्न तो हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है।[6]

जैन धर्म की कृपा से लौकिक व पारलौकिक सुख मिलता है। जयकुमार व सुलोचना ने विवाह के पश्चात् ऐसी कामना की कि अरहंत भगवान के स्तवन से उत्तरोत्तर शान्ति की वृद्धि हो, पापों का नाश हो, पुण्यमय बुद्धि का प्रकाश हो और दयायुक्त हृदय में जैन धर्म बना रहे। इस प्रकार से उन्होंने अर्हन्त आदि पंचपरमेष्ठी भगवानों के चरणों में श्रद्धा भक्ति प्रकट की।[7]

राजा जयकुमार ऋषभदेव के अद्वितीय गुणों की प्रशंसा करता है कि हे नाथ! भास्कर देदीप्यमान होने पर भी भानु-सूर्य आपके तुल्य नहीं है क्योंकि आप सर्वसग हितकारी है - कोमल प्रकृति वाले हैं और भानु खर - तीक्ष्ण प्रकृति वाला है। आप कलङ्क पाप से दूर हैं अतः चन्द्रमा भी आपके तुल्य नहीं है, क्योंकि आप गम्भीर धैर्यवान होने के साथ अजडाशय प्रबुद्ध आशय

1. जयोदय महाकाव्य, 2/27 2. वही, 2/34 3. वही, 2/35
4. वही, 2/35 5. वही, 2/39 6. वही, 10/95
7. वही, 12/102

से सहित है और समुद्र जडाशय जल के संग्रह रुप है इसी प्रकार मेरू पर्वत तुङ्ग – ऊँचा होकर भी आपके तुल्य नहीं है क्योंकि आप तुङ्ग उदार प्रकृति होने के साथ कोमल हृदय में कोमल है, परन्तु मेरु पर्वत हृदय में कोमल न होकर भीतर से कठोर है।[1]

ऋषभदेव आपके उदय होने से पाप, दु:ख का नाश हो जाता है। आप नित्य नया रूप धारण करने वाले अद्वितीय सूर्य है।

हे भगवान्! आप वृषभध्वज हैं – वृषभ चिन्ह वाली ध्वजा से सहित है, दिशा रूप वस्त्रों से सहित अर्थात् नग्नमुद्रा के धारक है संसार का नाश करने वाले हैं। प्राणिमात्र का हित करने वाले हैं। सभी देवों में प्रभुत्व सम्पन्न देव हैं। इस प्रकार महादेव के साथ नाम सादृश्य होने पर भी मेरा जिन के लिए नमस्कार हैं। किन्तु मृग धर्म के धारण करने वाले महादेव को मेरा नमस्कार नहीं है।[2] इससे कवि की धार्मिक अनुदारता और संकीर्णता सूचित होती है। जिन भगवान् सबसे श्रेष्ठ होने के कारण देवाधिदेव कहलाते हैं। हे भगवान्! आप मोह रहित है, राग रहित हैं और भौतिक लक्ष्मी रहित है।[3]

हे समस्त पदार्थो के ज्ञाता जिनेन्द्र! भक्त जन अन्य गुणहीन देवों को छोड़कर इच्छारहित आपकी आराधना कर अपना साध्य मनोरथ सिद्ध कर लेते हैं क्योंकि चिन्तामणि रत्न को प्राप्त कर क्या मनुष्य कृतार्थ – कृतकृत्य नहीं होता। अर्थात् अवश्य होता है।[4]

हे रागादि दोष तथा ज्ञनावरणादि कर्मों से रहित देव! भक्ति के वशीभूत चतुर मनुष्य आपका ही आश्रय लेते हैं।

जिन भगवान् ही मनुष्य का उद्धार करने वाले हैं। इनके दर्शन मात्र से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। इनके गुणों को जानकर ही काव्य के नायक ने जैनश्वरी दीक्षा धारण करता है। वह जानता है। मुक्ति का यही एक मात्र साधन है।

आचार्य ज्ञान सागरजी के आराध्य देव जिन भगवान् ही है। उनके प्रत्येक ग्रन्थ का आरम्भ जिनदेव के स्तवन से हुआ है। काव्य का नायक भी जिनेन्द्र देव का ही भक्त है। कवि की जिनेन्द्र भगवान् के प्रति पूर्ण भक्ति, निष्ठा तथा आस्था है।

कवि का सन्देश – आचार्य ज्ञान सागर जी अपने काव्य जयोदय से यह सन्देश देना चाहते हैं कि मानव को सदाचार की शक्ति से उन्मार्ग को जीतना चाहिए। मनुष्य को सदाचार का पालन अवश्य करना चाहिए – **सदाचारो हि परमो धर्मः।**

1. जयोदय महाकाव्य (उत्तरांक्ष), 19/19 2. वही, 19/22
3. वही, 24/90 4. वही, 24/94

सज्जनों ने इहलोक के कल्याण की प्राप्ति के लिए मन्वादि - उपदिष्ट नीति मार्ग द्वारा निर्दिष्ट आचरण किया है। वह हमें पूर्व काल के विद्वानों के सम्बन्ध से ही प्राप्त है। बालक जैसे चलता ही है वैसे इस संसार में कौन अनुगमन नहीं करेगा।[1]

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कुल की मर्यादा में स्थित होकर आचरण करें। उसी का नाम सदाचार है।[2]

महापुरुषों से मान्य और उत्तम विचार वाले दृढचित्त लोग देव का स्मरण किया करें किन्तु गृहस्थ व्यावहारिक नीति ही स्वीकार करते हैं क्योंकि गायों का पोषण केवल अन्नमात्र से नहीं हो सकता । उनको घास की भी आवश्यकता होती है।[3] व्यावहारिक नीति नियमों में कितने ही वचन ऐसे होते हैं जो प्रायः एक दूसरे के विरुद्ध पड़ते है। मनुष्य को चाहिए कि उनमें से जिस को लेकर अपने जीवन का निर्वाह हो सके उस समय उसी को स्वीकार करे, क्योंकि अपना हित कौन नहीं चाहता।[4]

धर्म अर्थ, काम ये तीनों पुरुषार्थ गृहस्थ के करने योग्य है। जो एक साथ परस्पर विरुद्धता लिये हुए हैं। गृहस्थ को चाहिए कि वह अपनी बुद्धिमत्ता से परस्पर अनुकूल करते हुए बर्ताव करें।[5]

प्रातःकाल के समय गृहस्थ को देव पूजन करना चाहिए, ताकि सारा दिन प्रसन्नता से बीते। कहा गया है कि दिन के प्रारम्भ में जैसा शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है वैसा ही सारा दिन बीतता है।[6]

गृहस्थ को सर्वप्रथम भगवान अरहंत देव की पूजा करनी चाहिए क्योंकि वे शरणागत - वत्सल हैं, वे देवों के देव हैं। तीनों सन्ध्याओं के समय जिन भगवान् का स्मरण करना चाहिए।[7] जिन भगवान् की भक्ति - मुक्ति देने वाली हुआ करती है। समझदार को चाहिए कि अपनी बुद्धि ठिकाने रखने के लिए भगवती सरस्वती की आराधना करे।[8]

गृहस्थ को प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग का अध्ययन करते हुए शब्द शास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण शास्त्र, अलंकारशास्त्र, छन्दशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, कामशास्त्र, निमित्त शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र अर्थशास्त्र, संगीतशास्त्र, मंत्रशास्त्र, वास्तुशास्त्र का अध्ययन करके मनुष्य सबमें चतुर कहलाकर अपने जीवन को सम्पन्नता से व्यतीत कर सकता है।[9]

गृहस्थ को ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम को यथायोग्य आयु अनुसार पालन करना चाहिए।[10]

1. जयोदय महाकाव्य, 2/7 2. वही, 2/8 3.वही, 2/11
4. वही, 2/18 5. वही, 2/19 6. वही, 2/23 7. वही, 2/36
8. वही, 2/41 9. वही, 2/47-62 10. वही, 2/117

गृहस्थ को धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ के बाद मोक्ष मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। इसके लिए गृहस्थ के बाद त्यागी बनना होगा।[1] प्रत्येक गृहस्थ को उक्त नियमों का पालन करना चाहिए। इससे जीवन उल्लासमय, सुखमय तथा समृद्धिमय हो सकता है। साथ ही गृहस्थ को एहिक और आमुष्मिक सर्वविध ऐश्वर्य सुलभ हो सकते हैं।

मानव जीवन का उद्देश्य संसार में आकर विषयों का दास बनना नहीं बल्कि अरहंत की सच्ची भक्ति कर मोक्ष प्राप्त करना है। कवि के द्वारा चित्रित नरपति जयोदय भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। कवि सरस्वती जिन वाणी की स्तुति करते हैं। हे सरस्वति! तुम श्रीपति जिनेन्द्र देव का वह दर्शन कराने वाली हो, जो कि सम्यग्ज्ञान तथा धर्माचरण आदि लक्षणों से सहित है। तुम अतिशत चतुर अथवा उदार हो, ज्ञानी तथा अज्ञानी सभी जनों के द्वारा सेवनीय - उपासनीय हो तथा पुण्यशाली लोगों को अद्वितीय वर देने वाली हो।[2]

आचार्य ज्ञानसागर जी सरस्वती की लोक प्रसिद्ध मूर्ति का वर्णन करते हैं कि सरस्वती मयूरवाहिनी है, उसके चार हाथ हैं। वह एक हाथ में वीणा, दूसरे हाथ में माला, तीसरे हाथ में पुस्तक लिये हुए हैं तथा चौथा हाथ गोद में रखे हुए हैं। वह सरस्वती श्रेष्ठ मयूर के द्वारा बाह्यमान है, जन समूह का कल्याण करने वाली है, पाप रुपी सांप इससे दूर रहते हैं। यह सन्देह को नष्ट करने वाली है तथा अनुमान करने योग्य है।[3]

सरस्वती जी को शरद ऋतु के समान बताया है। हे सरस्वती! तुम विद्वानों के हृदय में दीपिका रुप हों, अर्थात तुम्हारे ही आलोक में हेयोपादेय पदार्थों का ज्ञान होता है। तुम्हारे आशीर्वाद से सहित ऐसा कौन मनुष्य है जो ज्ञान से अनुमत-समर्थित न हो, अर्थात् कोई नहीं है। पृथ्वी पर मैं तुम्हारे उपकार को नहीं भूलता हूँ, कभी भी तुम्हारे उपकार को विस्मृत नहीं कर सकता। तुम्हारे विषय में स्नेहपूर्ण - प्रेमपूर्ण वृत्ति को धारण करता हूँ। अथवा यतश्च तुम दीपिकास्वरुप हो, अतः मैं उसकी तेल सहित बत्ती हूँ।[4]

राजा जयकुमार सरस्वती जी की आराधना के पश्चात् लक्ष्मी जी की आराधना करते हैं कि वह भवनवासिनी देवी है। यह जगत की अद्वितीय माता है तथा सब प्रकार की वृद्धि करने वाली है।

हे माता! तुम किन्हीं पुरुषों के द्वारा हीरा आदि रुप होने से उपल स्वभाव वाली मानी गई हो, और किन्हीं पुरुषों के द्वारा रत्न मोती आदि रुप होने से समुद्रजा कही जाती हो, परन्तु हम बुद्धिरुपी नौका के द्वारा जानते है कि तुम प्राणिमात्र के हृदय में वास, करती हो भाव यह है कि सभी लोक आपको हृदय से चाहते है।[1] लक्ष्मी माता नामोच्चारण मात्र से आप त्रिजगत् का हित करने वाली हूँ। जिसके नाम के अक्षर कल्याण, महत्त्व और लाभ इन तीनों शब्दों में निहित है, अर्थात् जिसका **कमला** नाम है तथा जो धर्म, अर्थ, काम रुप त्रिवर्ग के धारक गृहस्थों के द्वारा इस समय भी सेवनीय है, ऐसी ही देवि! आप मेरे हृदय में स्थिर रहे।

1. जयोदय 12/108 2. वही, 19/23 3.वही, 19/24, 4.वही, 19/30, 5.वही, 19/34

जयोदय का सर्गानुसारी कथानक

प्रथम सर्ग - प्राचीन काल में हस्तिनापुर में जयकुमार नाम का एक राजा राज्य करता था। वह भारत वर्ष के आदि सम्राट भरत चक्रवर्ती का प्रधान सेनापति था। वह कीर्तिमान, विद्वान, बुद्धिमान, सौन्दर्यवान् एवं अत्यन्त प्रतापी राजा था। एक दिन राजा जयकुमार वन क्रीड़ा करने के लिए गये, वहाँ पर किसी तपस्वी मुनि राज के दर्शन हुए। मुनि के दर्शन पाकर वह बहुत हर्षित हुआ। उसने उनकी स्तुति की और विनम्रता पूर्वक कर्तव्य पथ प्रदर्शन हेतु निवेदन किया।

द्वितीय सर्ग - मुनि राज ने जयकुमार को धर्म का माहात्म्य व गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों का उपदेश दिया तथा उसकी उपादेयता, उपयोगिता को बतलाया। जिसे जयकुमार ने भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर आत्मसात किया। तत्पश्चात् जब वह राज्य भवन को वापिस आ रहे थे तब मार्ग में एक सर्पिणी जो मुनिराज के उपदेश को उसके साथ सुन रही थी वही सर्पिणी किसी अन्य सर्प के साथ रमण कर रही थी। यह देखकर जयकुमार ने उस सर्पिणी को पीटा। देखा देखी अन्य लोगों ने भी उसे धिक्कारा तथा प्रहारों से मार डाला। तत्पश्चात् वह सर्पिणी मर कर व्यन्तरी हुई और उसका पति सर्प पहले मर कर व्यन्तर देव हुआ था। उसने अपने पति के पास जाकर जयकुमार के बारे में भला बुरा कहा। उस सर्प ने बिना विचार किये ही अपनी पत्नी के वचनों पर विश्वास कर लिया तथा जयकुमार को मारने के लिये आया तब उसने वहाँ देखा कि जयकुमार उस सर्पिणी के दुश्चरित्र का सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रियों को सुना रहा है तथा स्त्रियों के कौटिल्य की निन्दा कर रहा है। तब सर्प ने घटना की वास्तविकता जानने के बाद उसने अपनी स्त्री की निन्दा की और सारा वृतान्त जयकुमार को बताकर उनका सेवक बन गया तथा आज्ञा पाकर अपने स्थान को चला गया।

तृतीय सर्ग - एक दिन राजा जयकुमार अपनी राज्य सभा में विराजमान थे तभी काशी नरेश अकम्पन महाराज के दूत ने राजा जयकुमार की प्रशंसा करते हुए उनकी आज्ञा से काशी नरेश का संदेश कहा कि श्रेष्ठ मनुष्यों वाली काशी नगरी के राजा अकम्पन की आज्ञा से आपके समीप उपस्थित हुआ हूँ। उस राजा के सुलोचना नाम की पुत्री है जो सुप्रभा रानी से उत्पन्न हुई है। सुलोचना अति सुन्दर और गुणों की स्वामिनी है। उसके विवाह की इच्छा से स्वयंबर समारोह का आयोजन किया है। काशी नगरी में श्री सर्वतोभद्रक नाम का श्रेष्ठ सभामण्डप बनाया गया है तथा काशी नगरी को वधू रुप में सजाया गया है। अतः सुलोचना स्वयंबर के उपलक्ष्य में आपको सादर आमन्त्रित किया

गया है। यह सन्देश कहकर दूत चुप हो गया। वहाँ का सन्देश सुनकर राजा जयकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने वक्षस्थल से हार उतारकर दूत को उपहार के रूप में दे दिया।

तत्पश्चात् अपनी चतुरंगी सेना सजाकर काशी की ओर प्रस्थान किया। महाराज अकम्पन ने अपने परिवार के साथ आगवानी करके उनका स्वागत किया तथा उनके रहने की उचित व्यवस्था की।

चतुर्थ सर्ग - काशी नरेश के यहाँ सुलोचना का स्वयम्बर समारोह हो रहा है, यह समाचार अयोध्या नरेश भरत ने सुना। भरत ने अपने पुत्र अर्ककीर्ति को यह समाचार सुनाया। यह सुनकर उनके पुत्र अर्ककीर्ति ने स्वयम्बर में जाने की इच्छा प्रकट की और पिता जी की अनुमति मांगी। उनके सुमति नाम के मन्त्री ने बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए ऐसा कहा। किन्तु दुर्मति नाम के मन्त्री ने जाने के लिए सहमति प्रकट की। यह विचार विमर्श चल रहा था कि काशी नरेश ने वहाँ पहुँच कर स्वयम्बर समारोह में आने का निमन्त्रण दिया। अपने मन्त्रियों से विचार विमर्श के पश्चात् अर्ककीर्ति स्वयम्बर समारोह का समाचार पाकर काशी पहुँचते हैं। उनका वहाँ यथोचित सत्कार के साथ ठहरने की समुचित व्यवस्था की जाती है।

पंचम सर्ग - स्वयम्बर समारोह में अनेक देश देशान्तर से राजकुमार सुलोचना का वरण करने की इच्छा से पहुँचे। काशी नरेश अकम्पन ने उन सबका यथोचित सत्कार किया। जैसे ही हस्तिनापुर का राजा जयकुमार सभी मण्डप में पहुँचे वैसे ही सभी राजाओं का मन उसे देखकर प्रतिद्वन्द्विता से परिपूर्ण हो गया।

काशी नरेश के भाई देव ने सुलोचना को सभा मण्डप में चलने का आदेश दिया। सुलोचना अपनी सखियों के साथ जिनेन्द्र देव की पूजा करने के लिए गयी। उसके बाद सभामण्डप में पहुँची।

षष्ठ सर्ग - जब सुलोचना सभा मण्डप में पहुँची, तो सभी रजाओं के हृदय अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण हो गये। सुलोचना विद्या देवी नाम की परिचारिका के साथ मार्ग पर चलने लगी। इसके बाद विद्या देवी सुलोचना को वहाँ आये हुये भूमण्डल में सम्मानित राजाओं का एक-एक करके उनके गुणों का वर्णन करने लगी। वे राजा लोग भाँति - भाँति के तर्क वितर्कों के पात्र होने के कारण बड़े दयनीय थे। सबसे पहले विद्यादेवी ने सुनमि - विनमि इन दो राजाओं का परिचय दिया। उसके बाद क्रम से भरत पुत्र अर्ककीर्ति तथा कलिंग, कामरुप, कांची, काबुल, अंग, बंग, सिन्धु, काश्मीर, कर्नाटक, मानव, आदि देशों से आये हुये राजाओं का गुणों से विस्तार किया। जब सुलोचना

जयकुमार के पास पहुँची तब विद्या देवी ने सुलोचना का चित्त जयकुमार के अनुकूल देखा तो उसने विस्तार पूर्वक उनके गुणों का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उसके गुणों को सुनकर सम्राट भरत के सेनापति और सोमदेव के पुत्र जयकुमार पर अनुरक्त सुलोचा ने जयकुमार के गले में जयमाला डाल दी। उसी समय नगाड़े आदि बजने लगे। जयकुमार का मुख सुलोचना को पाकर कान्तियुक्त हो गया, किन्तु अन्य राजाओं के मुखमण्डल म्लान हो गये।

सप्तम सर्ग - अर्ककीर्ति के सेवक दुर्मर्षण ने स्वयंबर समारोह के विषय में चक्रवर्ती के पुत्र के सामने जाकर वक्ष्यमान क्रम से उल्टा सीधा कहना शुरु कर दिया। जयकुमार के वरण को उसने काशी नरेश की पूर्व नियोजित योजना बताया तथा उसने कहा कि उसने आपको छोड़कर सोमदेव के पुत्र जयकुमार का वरण किया है। जयकुमार जैसे आपके कितने सेवक होंगे।

दुर्मर्षण के वचनों को सुनकर अर्ककीर्ति काशी नरेश व जयकुमार से युद्ध करने को तैयार हो गया परन्तु सुमति नाम के मन्त्री ने समझाया कि काशी नरेश व जयकुमार हमारे अधीनस्थ राजा हैं। अकम्पन तो आपके पिता के भी पूज्य है। उनसे युद्ध करना गुरुद्रोह होगा। किन्तु अर्ककीर्ति पर सुमति के वचनों का कोई भी असर नहीं हुआ। अर्ककीर्ति के युद्ध का समाचार महाराजा अकम्पन के पास पहुँचा। मन्त्रियों से सलाह लेकर उन्होंने एक दूत अर्ककीर्ति को समझाने के लिए भेजा। किन्तु दूत के समझाने पर भी अर्ककीर्ति युद्ध से विरत नहीं हुआ। दूत ने जब आकर महाराज अकम्पन से युद्ध की सूचना दी तो महाराज अकम्पन चिन्ता ग्रस्त हो गये। महाराज अकम्पन को चिन्तित देखकर जयकुमार ने धीरत् बँधाया। तत्पश्चात् जयकुमार अर्ककीर्ति से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो गये। यह देखकर अकम्पन भी अपने पुत्रों व सेना सहित युद्ध के लिए चल पड़े। अर्ककीर्ति भी अपनी सेना सहित युद्ध क्षेत्र में आ गये। दोनों सेनाओं ने रणभेरी बजाकर युद्ध की घोषणा कर दी।

अष्टम सर्ग - दोनों सेनाएँ परस्पर एक दूसरे को युद्ध के लिए ललकारने लगी। गजारोही के साथ गजारोही, पदाति के साथ पदाति, रथारोही के साथ रथारोही, अश्वारोही के साथ अश्वारोही परस्पर युद्ध करने लगे। सेना के द्वारा उठाई गई धूलि से दिशाएँ व्याप्त हो गई। जयकुमार तथा काशी नरेश के पुत्रों हेमाङ्गद आदि ने अपने प्रतिद्वन्द्वियों के साथ डटकर सामना किया। दोनों और से घमासान युद्ध चल रहा था। इसी बीच रतिप्रभदेव ने आकर जयकुमार को नाशपाश और अर्द्धचन्द्र नाम का बाण दिया। सच ही कहा गया है कि भव्य पुरुष का प्रभाव अनायास ही भाग्य को अनुकूल कर लेता है। जयकुमार ने इन

दोनों बाणों से अर्ककीर्ति को बांध दिया। और जयकुमार विजयी हो गये।

युद्ध से लौटकर काशी नरेश ने सुलोचना को जयकुमार के विजयी होने का शुभ समाचार सुनाया। इसके बाद सब लोगों ने जिनेन्द्र देव की पूजा की।

नवम सर्ग - जयकुमार की जीत और अर्ककीर्ति की पराजय से महाराज अकम्पन को चिन्ता हुई की अर्ककीर्ति को कैसे प्रसन्न किया जाये। उन्होंने विचार किया कि अपनी छोटी पुत्री अक्षमाला का विवाह अर्ककीर्ति से कर दिया जाये। उन्होंने विनयभाव से अर्ककीर्ति को समझाया और अक्षमाला को स्वीकार करने के लिए कहा। जयकुमार ने भी अर्ककीर्ति से प्रीतियुक्त विनम्र वचन कहे। काशी नरेश ने जयकुमार व अर्ककीर्ति की सन्धि करा दी। काशी नरेश अकम्पन ने अपने सुमुख नाम के दूत को भरत चक्रवर्ती के पास भेजा। सुमुख ने काशी नगरी का वृत्तान्त बडी नम्रता से भरत को सुनाया और महाराज अकम्पन की ओर से क्षमायाचना की। सम्राट भरत ने राजा अकम्पन और जयकुमार की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की और उनके निर्णय को उचित बताया। दूत ने सम्राट भरत से आज्ञा लेकर काशी नगरी में प्रस्थान किया और काशी नरेश को अयोध्या में हुयी वार्ता का उल्लेख किया।

दशम सर्ग - तत्पश्चात् काशी नरेश के यहाँ विवाह की तैयारी होने लगी। सारी नगरी को धूम धाम से सजाया गया। सारी नगरी दुल्हन की तरह प्रतीत होने लगी। तरह - तरह के बाजे बजने लगे। सुलोचना ने स्नान करके रेशमी वस्त्रों और अनेक आभूषणों को धारण किया और माता - पिता के सम्मुख जाकर उन्हें प्रणाम किया।

जयकुमार जब सम्पूर्ण आभूषणों से युक्त होकर बारात सजाकर नगर मार्ग से निकले तो प्रजाजन उनको देखने की इच्छा से उत्साहित हो रही थी। राजद्वार में पहुँचते ही बन्धुों द्वारा आदर पूर्वक जयकुमार को मण्डप में लाया गया। और सुलोचना को भी मण्डप में लाया गया।

एकादश सर्ग - जयकुमार ने सुलोचना के रूप सौन्दर्य का अवलोकन किया। वह सुलोचना के रूप से अत्यधिक प्रभावित हुआ तथा जयकुमार ने अपने मुख से सुलोचना के मुख, स्तन, नख, शिख, जघनभाग, नाभि, ओष्ठ आदि सभी अंगो का अलग - अलग वर्णन बड़ी कुशलता के साथ किया।

द्वादश सर्ग - जयकुमार व सुलोचना ने जिनेन्द्र देव का पूजन किया। पुरोहित के कहने पर महाराज ने अपनी पुत्री का हाथ जयकुमार के हाथ में दे दिया, खुशी के इस अवसर पर उन्होंने धन की वर्षा कर दी और दहेज में कोई कमी नहीं रहनें दी। उपस्थित प्रजाजनों के सम्मुख गुरुजनों ने वर वधु

को आशीर्वाद दिया। महिलाओं ने अनेक सौभाग्य गीत गाये। दासियों एवं स्त्रियों ने हास परिहास के साथ बारातियों को भोजन कराया। काशी नरेश ने जयकुमार व बारातियों का हृदय से अतिथि सत्कार किया।

त्रयोदश सर्ग - विवाह के पश्चात् जयकुमार ने अपने श्वसुर महाराज अकम्पन से जाने की अनुमति मांगी। सुलोचना के माता - पिता ने अश्रुपूरित नेत्रों से अपनी पुत्री को विदा किया। माता - पिता उन्हें छोड़ने के लिये के तालाब के समीप तक गये।

सुलोचना के भाई भी सुलोचना के साथ थे। जयकुमार के सारथि ने मार्ग में स्थित वन और गंगानदी के वर्णन से जयकुमार का मनोरंजन किया। राजहंसो से सेवित एवं कमलिनियों से सुन्दर बनी हुई गंगा नदी में गजराज जल क्रीडा कर रहे थे। जयकुमार ने गंगा नदी के तट पर सेना सहित पड़ाव डाल दिया।

चतुर्दश सर्ग - जयकुमार, सुलोचना एवं उनके साथियों ने वहाँ पर वन की शोभा का भरपूर आनन्द उठाया। वन क्रीड़ा, जल क्रीडा एवं मधुर शब्दों से अपना मनोरंजन किया। सायंकाल गंगा जल में स्नान करने के पश्चात् सभी ने नवीन वस्त्र धारण किये।

पंचदश सर्ग - सूर्य के अस्त होने पर सन्ध्या का आगमन हुआ उसके बाद रात्रि का घोर अन्धकार चारों तरफ फैल गया। अन्धकार होने पर सब लोगों ने अपने तम्बुओं में दीपक जलाने प्रारम्भ कर दिये। चन्द्रमा का उदय होने पर स्त्री पुरुष परस्पर विहार करने लगे।

षोडश सर्ग - रात्रि के मध्य में स्त्री पुरुषों ने मान मर्यादा छोड़ दी। परस्पर हास - विलास करते हुये उन्होंने मदिरा पान प्रारम्भ कर दिया। मदिरापान से उनकी चेष्टायें विकृत हो गयी, नेत्र लाल हो गये। स्त्री पुरुष परम्पर प्रेम क्रम व्यवहार करने लगे।

सप्तदश सर्ग - सभी युगल प्रेमी एकान्त स्थान में चले गये। जयकुमार - सुलोचना एवं अन्य स्त्री पुरुषों ने सुरत क्रीडाये की। अर्द्धरात्रि में सबने निद्रा देवी की गोद में विश्राम लिया।

अष्टादश सर्ग - प्रातःकाल की मधुर बेला का आगमन हुआ। तारे विलीन हो गये, चन्द्रमा अस्त हो गया। सूर्योदय हुआ। लोग निद्रा रहित होकर अपने - अपने काम में लग गये।

एकोनविंश सर्ग - प्रातःकाल जयकुमार ने स्नानादि क्रियाएँ की। तत्पश्चात् वह जिनेन्द्रदेव की पूजा अर्चना आदि कार्य में संलग्न हो गये और बहुत समय तक श्रद्धा पूर्वक जिनेन्द्र देव की स्तुति की। जिनेन्द्र देव की स्तुति

के पश्चात् लक्ष्मी जी, सरस्वती जी, गणेश जी, की स्तुति की।

विंशतितम सर्ग - इसके बाद सम्राट भरत से मिलने की इच्छा से जयकुमार अयोध्या की और प्रस्थान किया। जयकुमार ने राज्यसभा में सिंहासन पर विराजमान सम्राट भरत को प्रणाम किया। सम्राट भरत के वात्सल्य पूर्ण वचनों से सन्तुष्ट होकर जयकुमार ने क्षमायाचना पूर्वक सुलोचना स्वयंबर का सारा वृत्तान्त सुनाया। सम्राट भरत ने जयकुमार के वचनों को सुनकर अर्ककीर्ति को ही दोषी ठहराया। काशी नरेश अकम्पन के प्रति प्रशंसात्मक वचन कहे और अक्षमाला व अर्ककीर्ति के विवाह करने हेतु उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा की। सम्राट से अनुमति लेकर जयकुमार हाथी पर सवार होकर अपनी सेना की ओर चल पड़ा। मार्ग में गंगा नदी के तट पर एक मछली ने जयकुमार का अपहरन करने की इच्छा से उनके हाथी को पकड़ लिया। यह देखकर राजा जयकुमार अत्यधिक व्याकुल हो गया। इधर सुलोचना भी अपने पति की प्रतिक्षा कर रही थी। पति को संकट में देखकर उनको बचाने के लिए गंगा नदी में उतर गयी। उन्होंने गंगा नदी से प्रार्थना की व उसके शील के तेज से गंगा का जल कम हो गया। तथा मछली से जयकुमार को छोड़ दिया। सुलोचना के सतीत्व धर्म से प्रभावित होकर गंगा देवी ने सुलोचना की दिव्यवस्त्र आभूषणों से पूजा की। यह देखकर जयकुमार अत्यधिक चकित रह गया। उसको इस प्रकार देखकर गंगा देवी ने कहा कि वह उनकी पूर्व जन्म की दासी है। सर्पिणी के काटने से देवी का जन्म प्राप्त हुआ है। यह जो मछली थी वह पूर्व जन्म में सर्पिणी थी, यही काली देवी हुई। पूर्वजन्म के क्रोध के कारण यह जयकुमार को पकडने आयी थी। जयकुमार ने गंगादेवी के प्रति आभार प्रदर्शन किया। सुलोचना ने जयकुमार की पूजा की।

एकविंशतितम सर्ग - जयकुमार की आज्ञा पाकर उत्सुकता से पूर्ण सैनिकों ने हस्तिनापुर जाने की तैयारी कर ली। जयकुमार ने रथ पर आरूढ़ होकर सुलोचना के साथ प्रस्थान किया। रास्ते भर सुलोचना का मनोरंजन करते हुए वह एक वन में पहुँचे। वहाँ भीलों के राजा ने जयकुमार को भेंट में गजमुक्ता, फल, पुष्पादि दिये। सुलोचना गोपों की बस्ती देखकर आनन्द मुख हो रही थी। गोप गोपियों ने दूध, दही व आदर सत्कार से जयकुमार व सुलोचना को प्रसन्न किया। जयकुमार ने उनसे प्रेम पूर्वक विदा ली। गोपों की बस्ती से निकलकर पुनः हस्तिनापुर की ओर यात्रा आरम्भ की। हस्तिनापुर पहुँचने पर जयकुमार और सुलोचना का मन्त्रियों ने स्वागत किया। प्रजाजनों ने भी अपने राजा - रानी का हर्ष उल्लास के साथ सम्मान किया। नगर की स्त्रियाँ नववधू का मुख देखने की तीव्र इच्छा से राजमहल में आ गयी। उन्होंने

सुलोचना के सौन्दर्य की प्रशंसा की व हर्ष का अनुभव किया। जयकुमार ने सुलोचना के मस्तक पर पट्टी बांध कर उसे प्रधान महिषी घोषित कर दिया। हेमाङ्गद आदि ने मुक्तकंठ से जयकुमार की प्रशंसा की। जयकुमार के हेमाङ्गद आदि से हास - परिहास सहित उनके साथ बहुत समय व्यतीत किया। वस्त्र आभूषण आदि देकर उन्हें विदा किया। जयकुमार को प्रणाम करके वे सब हस्तिनापुर से चल दिये। काशी पहुँच कर उन्होंने अपने पिता को नमस्कार किया तथा अपनी बहिन व बहनोई का सारा वृतान्त कहा। पुत्री के सुख समृद्धि से पूर्ण बातों को सुनकर काशी नरेश अकम्पन आत्म विभोर हो गये।

द्वाविंशतितम सर्ग - जयकुमार व सुलोचना परस्पर भोग विलास करते हुये सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। जयकुमार ने नीति युक्त तर्कों से प्रजा पालन किया व सुलोचना ने अपने व्यवहार कुशल गृहकार्य में दक्षता से सबका मन हर लिया।

त्रयोविशंतितम सर्ग - एक दिन जयकुमार सुलोचना के साथ महल की छत पर बैठा था। आकाश में जाते हुए विद्याधरों के विमान को देखकर **प्रभावती** नाम की पूर्व जन्म की प्रिया का स्मरण करके वह मूर्छित हो गया। सुलोचना ने कपोतयुगल को देखा तो वह पूर्वजन्म के प्रेमी **रतिवर** को स्मरण करके मूर्छित हो गयी। शीतलोपचार के बाद दोनों को चेतना आ गयी किन्तु स्त्रियों ने सुलोचना के चरित्र पर शंका की। जयकुमार के पूछने पर सोुलचना ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहा-

विदेह देश में पुण्डरीकिंणी नगरी में कुबेर नामक सेठ अपनी पत्नी के साथ निवास करता था। उसके घर में एक कबूतर कबूतरी रहते थे। कबूतर का नाम रतिवर और कबूतरी का नाम रतिषेणा था। एक समय की बात है कि सेठ के यहाँ दो मुनि आये। उन मुनि को देखकर कबूतर - कबूतरी को अपने पूर्वजन्म की याद आ गयी। उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। इसके पश्चात् उस रतिवर नाम के कबूतर ने आदित्य गति व शशि प्रभा के यहाँ पुत्र रुप में जन्म लिया और रतिषेण नाम की कबूतरी ने वायुरथ और स्वयंप्रभा की पुत्री प्रभावती के रुप में जन्म लिया। इस जन्म में भी हिरण्यवर्मा और प्रभावती का विवाह हो गया। अपने पूर्वजन्मों की याद आ जाने पर हिरण्यवर्मा ने तप करना प्रारम्भ कर दिया। तथा प्रभावती भी आर्यिका बन गयी।

एक दिन जब वे दोनों तप कर रहे थे, उनके पूर्वजन्म का शत्रु विद्युच्चोर ने अपने क्रोध से उन दोनों को भस्म कर दिया। उन दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति हुई। स्वर्ग में घूमते - घूमते एक दिन वे सर्प सरोवर के पास पहुँचे। वहाँ

उन्होंने देखा कि भीम नाम के मुनि राज तपस्या कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि जब वह देव सुकान्त रुप में जन्मा था तब वह उसके भवदेव नाम के शत्रु थे और हिरण्यवर्मा के जन्म के समय में विद्युच्चोर नाम के शत्रु थे। इस समय वह भीम रुप में उत्पन्न हुये हैं। सुलोचना ने कहा कि जयकुमार ही सुकान्त, रतिवर कबूतर, हिरण्य वर्मा और स्वर्ग के देव के रुप में उत्पन्न हुआ था।

सुलोचना से अपने पुनः जन्मों के बारे में जानकर जयकुमार बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद दोनों को दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हो गयी।

चतुर्विशंतिर्वितम सर्ग - विद्यायें प्राप्त करने के पश्चात् जयकुमार, सुलोचना विमान द्वारा पर्वतों और तीर्थों पर विहार करने के लिये गये। कुलाचलों की यात्रा के बाद वे दोनों हिमालय पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने जिनेन्द्र देव का मन्दिर देखा। जयकुमार ने जल चन्दन आदि आठ द्रव्यों से भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा कर भक्ति विभोर होकर स्तुति की। मन्दिर से निकलकर पर्वत पर विहार करते हुये सुलोचना जयकुमार से कुछ दूर हो गयी। सोधर्म इन्द्र की सभा में जयकुमार के शील की प्रशंसा की जा रही थी जिसे सुनकर रतिप्रभ नामक देव ने अपनी पत्नी कांचना को जयकुमार के शील की परीक्षा लेने भेजा। उसने आकर अपनी काल्पनिक जीवन कहानी सुनाकर तथा भिन्न - भिन्न काम चेष्टाओं से विचलित करना चाहा किन्तु जयकुमार के मन में उसके वचनों और चेष्टाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जयकुमार ने उसके व्यवहार की निन्दा की तथा स्त्रियोचित धर्म पालन करने की शिक्षा दी। जयकुमार के बचनों को सुनकर उसने क्रोध पूर्वक जयकुमार को उठा लिया और जाने लगी। इसी बीच सुलोचना ने उसे बहुत फटकारा। सुलोचना के शील से उसने जयकुमार को छोड़ दिया और चली गयी। रतिप्रभा ने जब अपनी पत्नी कांचना से जयकुमार की पूजा की। तीर्थों व पर्वतों पर विहार करके जयकुमार व सुलोचना अपने नगर वापिस लौट आये। किन्तु जयकुमार के मन में वैराग्य भाव की उत्पत्ति हो गयी।

पंचतिशतितम सर्ग - संसार की क्षणभंगुरता को देखकर जयकुमार के मन में वैराग्य भाव जाग उठा। वस्तुतत्व का चिन्तन करते हुये संसार परित्याग का दृढ़ निश्चय कर लिया तथा वन में रहकर जीवन यापन करने का विचार किया।

षड्विंशतितम सर्ग - जयकुमार ने समारोह पूर्वक अपने पुत्र अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक किया और उसे राजनीति का उपदेश दिया। इसके पश्चात् वह स्वयं वन में चला गया। हस्तिनापुर की प्रजा ने राजा जयकुमार के चले जाने पर शोक व अनन्तवीर्य के राजा बनने पर हर्ष का अनुभव किया। वन में

पहुँच कर जयकुमार ने भगवान ऋषभदेव के चरणों का सान्निध्य पाकर हर्ष से जयकुमार के नेत्रों मे आसूं छलक उठे। भक्ति व विनय पूर्वक भगवान की स्तुति की और कल्याण मार्ग के विषय में पूछा।

सप्तविंशतितम सर्ग – भगवान ऋषभदेव ने जयकुमार को धर्म का उपदेश दिया। भगवान के उपदेश को आत्मसात करके दृढ़ता पूर्वक आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो गया।

अष्टाविंशतितम सर्ग – जयकुमार ने बाह्य परिग्रहों का परित्याग कर दिया और घोर तपस्या करने लगा। उसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर ली। उसके दैगम्बरी दीक्षा भी धारण कर ली। अन्त मे वह गणधर पद पर प्रतिष्ठित हो गया।

पति के वियोग से व्याकुल सुलोचना ने सम्राट भरत की प्रधान महिषी सुभद्रा के समझाने पर ब्राह्मी नाम की आर्या के समीप दीक्षा धारण कर ली। और बहुत समय तक तप करने के पश्चात् स्वर्ग में अच्युतेन्द्र के रूप में पहुँच गयी।

जयोदय महाकाव्य के कथनाक का वैशिष्ट्य – आचार्य ज्ञान सागर जी ने जिनसेन प्रथम द्वारा प्रणीत महापुराण में पल्लवित ऋषभदेव – भरतकालीन जयकुमार एवं सुलोचना के पौराणिक कथानक को जयोदय महाकाव्य में पुष्पित किया है।

जयोदय महाकाव्य का नामान्तर **सुलोचना स्वयंबर महाकाव्य** भी है। **जयोदयापरसुलोचनास्वयंबर महाकाव्य एकविंशतितमः सर्गः**। इसके अन्य उपजीव्य साहित्य में उल्लेख है – महासेनवृत सुलोचना कथा (वि. सं. 800) गुणभद्रकृत महापुराण के अन्तिम पाँच पर्व तैंतालिस से लेकर सैंतालीस तक में जयकुमार और सुलोचना की रोचक कथा की गई है। (वि. सं. 900) हस्तिमल्लकृत विक्रान्त कौरव (वि. सं. 1250), वादिचन्द्रभट्टारक कृत सुलोचना चरित (वि. सं. 1671) कामराज प्रणीत जयकुमार चरित (वि. सं. 1710) तथा ब्र प्रभुराज जयकुमार चरित, महाकवि पुष्पदन्त द्वारा विरचित महापुराण भाग – 2।

महापुराण ही जयोदय की कथा का स्रोत है। जयोदय की कथा महापुराण (भाग 2) से ?अधिक मान्य है। इसके कथानक का आधार मूलतः श्री जिनसेनाचार्य गुणभद्राचार्य कृत महापुराण (आदिपुराण भाग 2) है।

आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने जयोदय महाकाव्य में नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के प्रयोग से उनमें यत्र – तत्र परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किये हैं जिससे उनका महाकाव्य का कथानक और ज्यादा रोचक व

विशिष्ट हो गया है।

जयोदय महाकाव्य को संस्कृत साहित्य के इतिहास में बृहत्त्रयी संज्ञित शिशुपालवध, किरातार्जुनीय एवं नेषधीय चरित महाकाव्य के समकक्ष पाते हैं। इसे बृहत्त्रयी संज्ञित तीनों महाकाव्यों के साथ जयोदय महाकाव्य को सम्मिलित कर बृहद्चतुष्टयी के अभिधान में संज्ञित करते हैं।

महाकाव्यों में जयोदय का अपना विशिष्ट महत्त्व है। कवि की अपनी उच्च शैली की वजह से ही जयोदय महाकाव्य को बृहद्चतुष्टयी की श्रेणी में रखते हैं।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने काव्य को रोचक बनाने के लिए मूल कथा की कुछ घटनाओं को छोड़ दिया है। जैसे महापुराण में जयकुमार के पिता - माता व चाचा व चौदह भाइयों का वर्णन किया है।[1] लेकिन ज्ञान सागर जी ने अपने महाकाव्य में जयकुमार के पिता के नाम का उल्लेख तो किया है।[2] लेकिन अन्य परिवार जनों का उल्लेख नहीं किया है। इससे वे एक तो अनावश्यक विस्तार से बचे हैं व उनका मूल उद्देश्य जयकुमार के गुणों को प्रधान रखना है।

जयकुमार ने जिन मुनिराज से कर्तव्य पथ हेतु जो धर्मोपदेश सुना है उससे उन्हें धर्मनीति और राजनीति आदि का ज्ञान प्राप्त होता है।[3] लेकिन महापुराण मे सिर्फ शीलयुक्त मुनि के द्वारा उपदेश सुनने का ही उल्लेख है।

महापुराण में लिखा है कि सर्प दम्पत्ति ने जयकुमार के साथ मुनि उपदेश सुना[4] लेकिन जयोदय में एक सर्पिणी ने जयकुमार के साथ धर्मोपदेश सुना है।[5]

महापुराण में अकम्पन की पत्नी सुप्रभा एक हजार पुत्र और सुलोचना एवं अक्षमाला नाम की दो पुत्रियों का वर्णन अकम्पन राजा के साथ किया गया है।[6] जबकि जयोदय में हमें अकम्पन उनकी पत्नी का परिचय तब होता है जब काशी नरेश का दूत जयकुमार की सभा में सुलोचना के स्वयंबर का समाचार लाता है।[7] किन्तु अन्य परिवारजनों का परिचय तो हमें संक्षिप्त में बाद में ज्ञात होता है।[8]

---

1. महापुराण आदिपुराण भाग-2, 43/77-82
2. जयोदय, 6/112, 7/34 3. वही, 2/1-137
4. महापुराण आदिपुराण भाग-2, 43/90 5. जयोदय, 2/42
6. महापुराण आदिपुराण भाग-2, 43/127-135
7. जयोदय, 3/30,37,38 8. वही. 7/87-89

इससे कथानक का विस्तार नहीं हो पाया और काव्य का प्रयोजन भी सिद्ध हो गया। कवि ने कथानक को हृदयंगम बनाने के लिए जयकुमार व सुलोचना के पूर्व जन्मों के विस्तृत वर्णन का सिर्फ उल्लेख कर कथानक को जटिल व अनावश्यक बोझ से मुक्त करके सरस बना दिया है। जिससे पाठक को कथा को समझने में आसानी हो जाती है।

कवि ने नायक के चारित्रिक उत्कर्ष के लिए कुछ घटनाओं को अपने काव्य में नहीं लिया है। जैसे महापुराण में जयकुमार एक शुष्क वृक्ष पर बैठे सूर्याभिमुख कौए को रोते देखकर अनिष्ट की सोच से अचेत हो जाते है।[1] इस घटना को कवि ने इसलिए छोड़ दिया क्योंकि इससे धीरोदात्त नायक के धैर्य की रक्षा हो सके।

महापुराण में महेन्द्रदत्त कंचुकी सुलोचना को स्वयंबर सभा में राजाओं से परिचित कराता है।[2] जबकि जयोदय में स्वर्ग से आयी हुई विद्यादेवी ने सुलोचना के सम्मुख अयोध्या, कलिंग, सिन्धु, काश्मीर, मालव आदि राजाओं का विस्तृत परिचय कराया है।[3]

यह कवि की मौलिक कल्पना है जो उन्होंने राजाओं का इतना विस्तृत व विद्यादेवी से परिचय करवाया, क्योंकि कंचुकी जैसे बूढ़े ब्राह्मण इतने सुरुचिपूर्ण ढंग से वर्णन नहीं कर सकते थे जितना विद्या देवी, बुद्धिदेवी कर सकती थी। कवि ने नारी की पथदर्शिका नारी को ही बनाये जाने से नारी की महानता, विद्वता, शालीनता के दर्शन होते हैं।

महापुराण में सुलोचना के रूप सौन्दर्य एवं विवाह का संक्षेप में वर्णन मिलता है।[4] जयोदय महाकाव्य में ज्ञानसागर जी अपनी कल्पना शक्ति से इसको और प्रभावपूर्ण बढ़ाने के लिए विस्तृत वर्णन किया है[5] तथा विवाह के एक-एक प्रसंग को बड़ी सुन्दरता के साथ काव्य में पिरोया है। श्रृंगारिक वर्णन से काव्य का कथानक रूचिकर हो गया है।

महापुराण में जयकुमार ने अपने महल की छत पर एक कृत्रिम हाथी में बैठे हुए विद्याधर दम्पत्ति को देखा।[6] जबकि कवि ने कृत्रिम हाथी की जगह आकाश विमान में विद्याधर दम्पत्ति को दिखाया है।[7]

महापुराण में जयकुमार के वैराग्य चिन्तन का संक्षेप में वर्णन मिलता है। आचार्य ज्ञानसागरजी ने जयोदय में वैराग्य का वर्णन एक सर्ग में किया है।[8] जिससे काव्य में शान्त रस की मधुर धारा प्रवाहित हो गयी और मुक्ति के

1. महापुराण भाग–2, 45/139–141, 2. वही, 43/301–308
3. जयोदय, 6/6–118 4. महापुराण भाग–2, 43/137–337
5. जयोदय, 3/30–116 6. महापुराण 46/1 7. जयोदय 23/10
8. जयोदय 25/1–87

प्रबल मार्ग के दर्शन होते हैं।

कवि का उद्देश्य है कि मोक्ष की प्राप्ति सर्वोत्तम है। इससे मनुष्य सांसरिक बंधनों से छूट जाता है।

कथानक का वैशिष्ट्य इन सभी शिक्षा परक बातों से प्रभावशाली हो जाता है। जयोदय की कथा हमें ज्ञान देने वाली तथा सन्मार्ग की ओर अग्रसर करती है।

यह ऐतिहासिक, पौराणिक महाकाव्य आचार्य ज्ञान सागरजी की अपूर्व शालीन काव्यत्व व प्रतिभा के बल से प्रख्यात कोटि में इसको गिना जाता है।

आचार्य ज्ञानसागर द्वारा उत्पादित काव्य सौन्दर्य - महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी जैन संस्कृत साहित्य जगत् में 600 साल बाद प्रथम महाकवि है जिन्होंने महाकाव्य लिखने की परम्परा को नया जीवन प्रदान किया है। इन्होंने अनेकों काव्यों की रचना की। सभी काव्य इनकी अनुपम काव्य शैली से सजाये गये हैं लेकिन **जयोदय महाकाव्य** इन सबमें अग्रणी है।

इन्होंने अपने काव्य में नवीन शैली का प्रयोग करके उसको उच्चकोटि की श्रेणी में ला दिया। इन्होंने काव्य सौन्दर्य के द्वारा आदर्श नीतियों को समाविष्ट करते हुए राष्ट्रीय चेतना, प्राचीन ऋषि मुनियों के आदर्श को प्रस्तुत करके काव्य - जगत् में कीर्ति स्तम्भ स्थापित किया है।

अलकारों व रसों से भरा हुआ यह महाकाव्य किसके मन को आकर्षित नहीं करता अर्थात् सबके चित्त को आकर्षित करता है। जयोदय महाकाव्य की कथा सम्पूर्ण पुरुषार्थों को देने वाली है।

तनोति पूते जगती विलासात्स्मृता कथा याऽथ कथं तथा सा।
स्वसेविनीमेव गिरं ममाऽऽ रात् पुनातु ना तुच्छरसाधिकारात्।।[1]

यह जयोदय महाकाव्य जगत् के काव्यों में मणियों के हार के मध्य अनर्ध्य मणि के समान सुशोभित है।

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने अपनी शब्द साधना के अलौकिक आनन्द को जयोदय महाकाव्य में चमत्कृत किया है। यह उक्ति प्रसिद्ध है कि **जहाँ न जाए रवि वहाँ जाए कवि।** कवि अपनी कल्पनाशीलता व लेखनी से असाध्य कार्य भी कर सकता है। उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

जयोदय की कथा वैसे तौ पौराणिक व महापुराण से ली गयी है लेकिन कवि ने उसे और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कुछ परिवर्तन किये है।

1. जयोदय महाकाव्यम, 1/4

महापुराण एक पौराणिक शैली पर लिखा गया है जिसमें वंश परम्परानुसार पीढ़ियों का वर्णन है जबकि आचार्य ज्ञान सागर जी ने इसे पौराणिक शैली में न लिखकर काव्य की शैली में लिखा है।

कवि का काव्य – कौशल है कि वह लौकमङ्गलकारी आदर्श विषयवस्तु की रसात्मा को समुचित भाषा के माध्यम से इस प्रकार प्रतिपादित करना कि वस्तुतत्त्व रसिक जनों के चित्त में उतर सके। साहित्य वह कृति है जो श्रोता अथवा पाठक के मनोवेगों को तरंगित करने में समर्थ होती है।

जयोदय महाकाव्य में नवीन शैली के पदे – पदे दर्शन होते हैं। विशेषकर रसों, कल्पनाओं – अलंकारविन्यास, छन्दोयोजना एवं भाषा के प्रयोग में नूतन व अनुपम मार्ग अपनाया गया है।

जयोदय महाकाव्य में प्रकृति का मनोहारी वर्णन किया गया है। कवि को प्रकृति का कुशल चितेरा माना जाता है। कवि ने जयोदय महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग में सूर्यास्तमनबेला का प्रभावशाली वर्णन किया है। सूर्य पश्चिम दिशा में पहुँचा तो कमलिनी अपनी सपत्नी के सौभाग्य को देखकर ईर्ष्या से सिगुड़ गई।

कवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा इस कल्पना का विचित्र वर्णन किया है।

सरोजिनीं कुड्मलितां दिशायाः समीक्ष्य साश्चर्यमिति स्मितायाः।
मन्ये प्रतीच्या अधुनावभातितमामुदात्ताधरबिम्बकान्तिः॥[1]

कवि ने अपने काव्य में रसों का समुचित प्रयोग किया है क्योंकि काव्य में रसध्वनि के बिना अलंकार मृतक स्त्री के अलंकार की भाँति निष्फलता की स्थिति बनाते हैं। रस रूपी आत्मा के रहने पर ही अलंकारों का महत्त्व होता है।

महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी ने चौदहवें सर्ग के द्वितीय श्लोक के माध्यम से श्रृङ्गार रस के उददीपक उद्यान के सौन्दर्य रूपी विभाग को दर्शाया है। श्रृङ्गार के प्राप्त होने पर तटोद्यान में आया शिष्टजन समूह काम श्रृङगार रस से व्याकुल हो गया। विरोधाभास अलंकार के द्वारा इसे भव्य भावभूमि पर सजाया गया है। श्लेष की सहायता से विरोध का परिहार हुआ है।

असुगतवेभवानिव तेन तत्र तथागतसमीरणेन।
समर्जान सुरतविचारविशिंष्टो दूरतो पि चायातः शिष्टः॥[2]

कवि ने श्रृंगार रस का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। श्रृंगार रस का

1. जयोदय महाकाव्यम, 15/5

चषक सम्मुख पाकर पाठक उसी में रम जाता है। अष्टम सर्ग में वीररस का सागर लहराता है। पूरा का पूरा सर्ग वीर रस से भरा पड़ा है।

उद्धूर सद्धूलिघनान्धकारे शम्पा सकम्पा स्मलसत्युदारे।
रगाङगुणे पाणिकृपाणमाला चूकूजुरेवं तु शिखण्डिमाला:॥[1]

जयोदय महाकाव्य में शान्तरस का प्रयोग प्रथम सर्ग व अन्तिम सर्ग में किया है। इस महाकाव्य में अंगी रस शान्त है। श्रृंगार, वीर एवं अन्य रस उसके पोषक है।

कवि कल्पना करता है कि नववयस्का पश्चिम दिशा वृद्ध पति सूर्य को पसन्द नहीं करती है। सूर्य प्राची दिशा का स्वामी भी है। अतः पश्चिम दिशा अन्यनायिकासक्त नायक को भी नहीं चाहती है। इसलिए वह उसे क्षण भर के लिए भी अपने पास नहीं रहने देना चाहती है। उसे अपने आकाश रुपी घर से निकाल देना चाहती है।

प्राचीनतातोऽप्यनुरागवन्तं प्रतिश्रणव्येव नवा दगस्तम्।
निष्काशयत्याशु नभोनिकायात् सहस्त्ररश्मिं चरमा दिशा या॥[2]

रात्रिवर्णन में कवि ने श्लेष आदि अलंकारों की सहायता से कल्पनाओं को साकार रुप दिया है।

न दृश्यते क्वा प्युडूपस्तथा स प्रदोषभावातरणेर्विनाशः।
नदीपरुपे तिमिरे ब्रुडन्ति चक्षूषि नृणां विकलान्त सन्ति॥[3]

यहाँ पर उडुप का अर्थ – नौका तथा चन्द्रमा, तरणेर्विनाशः नौका तथा सूर्य का तिरोभाव, नदीप – समुद्र एवं द्वीपों का अभाव, तिमिरे अन्धकार में, मगरमच्छों से भरे। इस प्रकार अर्थ हुआ है।

चन्द्रोत्सव के वर्णन में कवि ने नूतन उदभावनाओं की रत्न मंजूषा संजोदी है। वक्रोक्ति का सुन्दर उदाहरण इन पंक्तियों की रत्न में देखिए–

माडपहर कुचग्रन्थि किमपास्ता तेऽस्ति हृदग्रन्थिः॥[4]

कवि की लेखनी इतनी महान है कि उन्होंने एक साथ तीन अलंकारों का प्रयोग किया है। इस श्लोक में श्लेष, अनुप्रास और रुपक का एक साथ प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है।

सविभ्रमां योवनवारिवेगां वधूनदीं भो श्रृणुवीर! में गाम्।
उदारश्रृंडगारतरङ्गसेनां को त्येतुमीशः शुचिहासफेनाम्॥[5]

उल्लेख अलंकार पूर्वक उपमालंकार तथा अनुप्रास इन तीनों का वर्णन इस श्लोक में बड़ा स्वाभाविक किया है।

---

1. जयोदय महाकाव्यम् 14/8 2. वही 8/8 3. वही 15/18
4. वही, 15/21 5. 16/20

सिताश्रितं दुग्धमिवादरेण निपीयते संगमिनापरेण।
अयोभितां तर्कमिवात्र नक्रसंकोचतः श्रीशशिरश्मिचक्रम ॥[1]

कवि ने अलंकारों के माध्यम से काव्य में प्रभात वर्णन व अन्य वर्णनों को चारुत्व पूर्ण बना दिया है। इस श्लोक में श्लेष से अर्थान्तरन्यास का सुन्दर उदाहरण है।

विस्फूर्तिभृन्नृवर किन्नवदद्रुरेषु प्रागुत्थितो वियति शोणितकोपदेशः।
श्री सघ्नो नुभवतो मधुमेह पूर्ति भो राजसग्विजयिनस्तव भाति मूर्तिः ॥[2]

आचार्यों ने अलंकारों को काव्यशोभाकर, शोभातिशायी इत्यादि कहा है। शब्दों को सुन्दर बनाने के लिए अलंकार सहायक होते हैं। शास्त्रीय पाडित्य के बिना अलंकारों का प्रयोग करना नितान्त कठिन कार्य है। कवि लोग अलंकार की भाषा और अर्थ की सौन्दर्य वृद्धि करके उनमें चमत्कार उत्पन्न करते हैं। इतना ही नहीं वे रस भाव आदि को उत्तेजित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। आचार्य ज्ञानसागर जी अलंकार शैली के श्रेष्ठ कवि हैं। ये श्लेषालंकार का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। इन्होंने अपने काव्य में सभी अलंकारों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है।

इस महाकाव्य छन्दशास्त्र की मंजूषा है। इस महाकाव्य में वार्णिक शब्दों के प्रयोग के साथ मात्रिक छन्दों का समुचित विन्यास हुआ है। कवि ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल पर काव्य में नये – नये प्रयोग किये है। यह जयोदय महाकाव्य इस शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ काव्यकला का निदर्शन है। यह प्राचीनता के साथ नवीनता का असाधारण समन्वय प्रस्तुत करता है। **अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः** इस उक्ति को चरित्रार्थ करना है तो वह जयोदय महाकाव्य है।

आचार्य ज्ञान सागर जी का पाण्डित्य एवं वैदग्ध्य का पूर्ण परिचय काव्य की उदात्ता का परिचायक है। यह महाकाव्य अलंकारों की मंजूषा, चक्रवन्धों की वापिका, सूक्तियों और उपदेशों की सूरम्य वाटिका है।

महाकवि ने अपने काव्य में वर्णित अनेक घटनाओं को अपने जीवन अनुभवों से संवारा है। महाकवि आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने काव्यगत सौन्दर्य से जयोदय महाकाव्य को अनर्ध्य मणि के रुप में देदीप्यमान मना कर दिया है।

यह जयोदय महाकाव्य कृति भाव, भाषा काव्य सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन वैचित्र्य, अलंकार प्रयोग, छन्द-विन्यास, शास्त्रीय ज्ञान आदि सभी दृष्टियों से अनुपमेय है।

---
1. जयोदय महाकाव्यम् 16/9 2. वही 18/22

तृतीय अध्याय

"अविचारितरमणीय" और "विचार्यमाणरमणीय " चमत्कार तथा "जयोदय"

पं. भूरमाल जी ने संस्कृत महाकाव्य-धारा को पुनः प्रवाहित किया है। इनको संस्कृत भाषा का सर्जनकार कहा जाता है। पं. भूरामलजी ने क्षेमेन्द्र द्वारा प्रतिपादित अविचारितरमणीरिय और विचार्यमाणरमणीय चमत्कार की अपने जयोदय महाकाव्य में समीक्षा करके महाकाव्य की बीसवीं शताब्दी का एक आदर्श महाकाव्य बना दिया है। महाकवि की सूक्ष्म कल्पना शक्ति का दर्शन उनकी नीतियों में सहजता से हो जाता है।

अविचारितरमणीय चमत्कार की परिभाषा - अविचारितरमणीय वह चमत्कार है जिसकी बिना विचार किये ही चमत्कार की प्रतीति हो जाये तथा मस्तिष्कीय व्यायाम किये बिना ही उसका स्वरुप समझ में आ जाये, जिसको कोई भी सहृदय व्यक्ति अनायास मसझ सके उसको ही अविचारितरमणीय चमत्कार कहते हैं।

उद्धतसद्धलिधनान्धकारे शम्पा सकम्पा स्म लसत्युदारे।
रणाङगणे पाणिकृपाणमाला चुकूजुरेव तु शिखण्डिबालाः ॥[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब राजा जयकुमार तथा चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति का परस्पर युद्ध आरम्भ होता है।

उड़ी हुई धूल के कारण मेघ की भाँति अन्धकाराच्छन्न विशाल रणाङगण में योद्धाओं के हाथों में कम्पमान तलवारों की माला चमक रही थी। किन्तु मोरों के बच्चे उन्हें बिजली समझ कर केकावाणी बोलने लगे।

यहाँ पर कवि ने प्राकृतिक सत्य का बड़े सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। क्योंकि वर्षा के समय बिजली चमकती है तो मोर प्रसन्न होकर केकावाणी करने लगते हैं, किन्तु यहाँ पर कवि ने युद्ध के समय वही कल्पना कर दी है र मोर के बच्चे युद्ध में तलवारों की चमक को बिजली समझकर प्रसन्न होकर बोलने लगते हैं। इस श्लोक का विचार सौन्दर्य बिना विचार किये ही प्रतीत हो जाता है।

1. जयोदय महाकाव्य, 8/8

रविञ्च विच्छाग्य रजोऽन्धकारो मस्यभूव् प्राप्तमाधिकारः।
युध्यप्रवीरक्षततलप्रचारः सायं श्रियस्तत्र बभूव सारः॥[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब राजा जयकुमार तथा चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति का परस्पर युद्ध हो रहा है।

उस समय समराङ्गण में उठी धूल ने सूर्य को भी ढंक लिया और वह सारे आकाश पर छा गयी। ऐसी स्थिति में संग्राम कर रहे वीरों के शरीर से निकलने वाली रक्त की धाराओं ने वहाँ सन्ध्या की शोभा का सार सर्वस्व पा लिया।

कवि ने प्रातः काल में सन्ध्या की शोभा का बड़ा ही अनुपम वर्णन किया है। जिस प्रकार सन्ध्या के समय में सूर्य अस्त हो रहा होता है तथा आकाश में लालिमा दिखाई देती है ठीक उसी प्रकार युद्ध से उठी धूल ने सूर्य को ढक लिया है और वीरों के रक्त ने लालिमा का संचार किया, जिससे हमे सन्धया की प्रतीति होने लगी।

एक अन्य उदाहरण -

भरतभूमिपतेः कुलदीपक इति समडिकततेलसमीपकः।
स्वयममुद्रितशुद्धशिखा श्रयः समभवत् सहसा प्रतिभामयः॥[2]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब अर्ककीर्ति युद्ध में जयकुमार से हार जाता है। महाराज अकम्पन अपनी दूसरी पुत्री अक्षमाला के लिए अर्ककीर्ति से आग्रह करते है, तब अर्ककीर्ति सोचते है व ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है।

इस प्रकार स्नेह रूप तेल से प्रपूरित भारत महाराज का कुल दीपक तेल मिल जाने से दीपक के समान जाज्वल्यमान रुचि बुद्धिरुप शिखा से युक्त (प्रसन्न) हो सहसा स्फुर्तिशाली और द्यूतिमान हो गया (और बोला)।

इसमें कवि ने बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। जिस प्रकार तेल के बिना दीपक जाज्वल्यमान नहीं हो सकता है ठीक उसी प्रकार अर्ककीर्ति को स्नेहरुपी तेल मिलने से वह स्फुर्तिशाली व द्यूतिमान हो गया। यहाँ कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा का प्रयोग किया है।

इस श्लोक में काव्यगत सौन्दर्य बिना विचार के ही प्रतीत हो जाता है।

अविचारितरमणीय की एक और बानगी देखिए -

---

1. जयोदय महाकाव्य, 8/9
2. वही, 9/24

अभ्रान्तरमितमुपत्य वारिभरं समुद्रात् स्वघटे हारि।
स्वामिकर्णदेशेऽप्यपूरयद् गत्वा लघिममयस्तरामयम्।।[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब महाराज अकम्पन का दूत चक्रवर्ती जयकुमार के पास स्वयम्बर समारोह का प्रस्ताव लाता है और वहाँ से प्रस्थान करके वह महाराज अकम्पन को उनका सन्देश सुनाता है।

जैसे मेघ द्वारा बरसाये जल को समुद्र से घड़े में भरकर कोई ले जाय, वैसे ही मुद्राओं के अधिकारी चक्रवर्ती के द्वारा कथित भ्रम रहित मनोहर वचन समूह को अपने अंतर में धारण कर वह अत्यन्त क्षिप्रगामी दूत अपने स्वामी के पास पहुँचा और उसने उसे उनके कानों में उड़ेल दिया।

जिस प्रकार कोई समुद्र से घड़े में जल भरकर ले जाये तो वह जल समुद्र का ही रहेगा। ठीक उसी प्रकार उस दूत ने चक्रवर्ती जयकुमार के वचनों को आत्मसात करके अपने स्वामी को सुना दिया।

इस श्लोक का काव्यसौन्दर्य व विचार सौन्दर्य विना विचार के ही प्रतीत हो जाता है।

अविचारितरमणीय का सुन्दर दृष्टान्त देखिए -

शशिनस्त्वास्ये रदेषु भानां कचनिवयेऽपि च तमसो भानाम्।
समुदितभावं गता शर्वरीयं समस्ति मदैनकमञ्जरी।।[2]

इस श्लोक में सुलोचना के सौन्दर्य का अनुपम वर्णन किया गया है।

मुख में चन्द्रमा की दातों में नक्षत्रों की और केशपाश में अन्धकार की सम्मिलित शोभा को पाकर यह सुलोचना साक्षात् रात्रि है या फिर कामदेव की पुष्प कलिका है।

इस श्लोक में कवि बड़ी सुन्दर उपमाओं के साथ सुलोचना के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि ने सुलोचना को रात्रि के समान बताया है। जिस प्रकार रात्रि में चन्द्रमा नक्षत्र और अन्धकार होता है, ठीक उसी प्रकार सुलोचना का मुख चन्द्रमा की प्रतीति कराता है, दांत नक्षत्रों की, केशपाश अन्धकार की। जिससे वह रात्रि प्रतीत होती है। सुलोचना के सौन्दर्य को रात्रि की उपमा देना बड़ा ही अनुपम है।

इस श्लोक का काव्य सौन्दर्य व विचार सौन्दर्य बिना विचार के ही प्रतीत हो जाता है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 9/94, 2. वही 11/93

लि कामितदायिनी च यागावनिरित्यत्र पवित्र मध्यभागा।
तिलकायितमञ्जूदपिकासावथ रम्भारुचितोरुशर्मभासा ॥[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब जयकुमार व सुलोचना का विवाह होता है। जयकुमार सुलोचना की प्रशंसा करते हुए कहता है।

यह यज्ञभूमिरूपिका नायिका पवित्र मध्यभाग वाली और मनोवांछित सिद्ध करने वाली है। तिलक के स्थान पर इसमें दीपक जल रहा है और कदली के स्तम्भ ही जिसके उरूभाग है।

यहाँ कवि ने सुलोचना की तुलना यज्ञभूमि से की है। जिस प्रकार यज्ञभूमि मनोवांछित सिद्ध करने वाली होती है, उसी प्रकार सुलोचना भी उसी इच्छाओं की पूर्ति करने वाली है। केले के स्तम्भ से उसकी जंघाओं की तुलना की है।

इस प्रकार से वह यज्ञभूमि वनिता के समान सुशोभित हो रही है।

यह पद्य अविचारित रमणीय का है।

सदृशा सहितस्ततो हितोऽनुगतो सो नृपतेः सुतैरगात्।
अनुवासनयऽन्वितोऽनिलः सरसः सम्प्रति शीकरैरिव ॥[2]

इस पद्य में उस समय का वर्णन है जब सुलोचना व जयकुमार विदा हो रहे थे और वह ऐसे प्रतीत हो रहे थे।

इसके बाद सुलोचना - सहित तथा राजा अकम्पन के पुत्रो सहित वह जयकुमार आगे बढ़ा जैसे कि पवन सरोवर से कमलों की सुगन्धरूप वासना को लेकर कुछ जल के कणों को साथ लेकर आगे बढ़ता है।

इसमें कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य का बड़े अनुपम ढंग से चित्रण किया है। राजा जयकुमार व पवन की सुन्दर तुलना की है। यहाँ कवि ने जयकुमार को पवन, सुलोचना को सुगन्ध के साथ तथा जल के कणों की राजा अकम्पन के पुत्रों के साथ तुलना बड़ी अनुपम है।

इस पद्य में अविचारितरमणीय चमत्कार की झटिति प्रतीति हो रही है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

विततानि वनस्य भी विभो शिखिपत्राणि मनोहराण्यमुम्।
भवतो विभवं विलोकितुं नयनानीव लसन्ति भूरिशः ॥[3]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब जयकुमार व सुलोचना

1. जयोदय महाकाव्य, 12/25, 2. वही 13/19 3. वही 13/49

विवाह के पश्चात् विदा होकर जा रहे है। मार्ग में उनके सारथी ने वन की शोभा का वर्णन करते हुए कहा -

हे प्रभो! इधर देखिए, सर्वत्र फैली हुयी मयूरों की पाखें देखने में बहुत मनोहर लग रही है, मानो वे पांखे न होकर आपके वैभव को देखने की अभिलाषा से फैलाये हुए इस वन के नेत्र ही शोभित हो रहे हैं।

मयूर प्रसन्न होकर नाच रहे हैं। उनके पंख ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे वन रूपी नेत्र आपके वैभव को देख रहे हैं। कवि ने मयूर के पंखों से वन के नेत्रों की तुलना का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है।

उपर्युक्त पद्य में अविचारित रमणीय चमत्कार की प्रतीति हो रही है।

सुतनोर्मकरन्दातिशयेन स्माश्रितालिंगु जनमिति तेन।
श्रितसंसर्गसुखं वियोगसात्पूतकुरुते श्रवणोत्पलं रसात्॥[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब जयकुमार ने सेना सहित गंगा नदी के तट पर पड़ाव डाला, वहाँ पर कुछ समय रुक कर जल क्रीडा व मनोरंजन किया।

किसी स्त्री के कान पर जो नील कमल लगा हुआ था उसके ऊपर मकरन्द की तीव्र सुगन्ध के कारण भ्रमर गुंजार कर रहे थे। इससे ऐसा जान पड़ता था कि जिसने स्त्री के संसर्ग में सुख का अनुभव किया था ऐसा वह नील कमल जब जल क्रीडा के समय कान से जुदा होने का प्रसंग पाकर दु:ख से मानो रो ही रहा हो।

नील कमल की सुगन्ध के कारण भौरे गुंजार कर रहे थे, भोरों का गुंजार ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई प्रियजन से बिछुडने पर रोता है।

यह पद्य अविचारितरमणीय चमत्कार से ओतप्रोत है।

एक अन्य निदर्शन अवलोकनीय है -

विलासिनीनां प्रतिवीथि आस्यं निरीक्षमाणाः शुचिहासभाष्यम्।
करान्प्रसार्योपगवाक्षमिन्दुः सौन्दर्यभिक्षामटतीष्टविन्दुः॥[2]

इसमें कवि ने चन्द्रोदय का वर्णन किया है।

चन्द्रमा की किरणे गली गली में झरोखों के पास पहुँच रही है। उससे ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमा वेश्याओं के मुस्कराते एवं मनोभावों को स्पष्ट करने वाले मुख को देखकर किरणरुप हाथ पसारकर उनसे सौन्दर्य की भिक्षा मांगने के लिए घूम रहा है।

कवि ने चन्द्रमा के उदय की और संकेत किया है। जब चन्द्रमा उदय

---

1. जयोदय महाकाव्य, 14/61
2. वही, 15/53

होता है तो वह अपनी किरणे सर्वत्र फैला देता है। चन्द्रमा की किरणे लोगों के घरों में पहुँच रही है। वह ऐसी प्रतीत हो रही है कि जैसे वह किरणे वेश्याओं से सौन्दर्य की भिक्षा मांग रही है।

उक्त पद्य अविचारित रमणीयता का अपूर्व निदर्शन है।

स्नाता सुधाकररुचां निचयैर्दिगेषा, प्राची स्वमूर्ध्नि खलु हिङगुलुलेखलेशा।
भास्वत्सुवर्णकलशं तु गृहीतुकामा त्वन्मङगलाय परिभाति विभो ललामा॥[1]

इसमें उस समय का वर्णन है जब चन्द्रमा अस्त हो रहा होता है तथा सूर्य उदय होने वाला होता है।

हे स्वामिन! जिसने चन्द्रमा की किरणों के समूह से स्नान किया है तथा ललाट पर सिन्दूर का तिलक लगा रखा है ऐसी आभूषण स्वरुप यह पूर्व दिशा आपके मङ्गल के लिए अपने मस्तक पर सूर्यरुप कलश को रखने के लिए उत्सुक जान पड़ती है।

कवि ने प्रात:काल का कितना सुन्दर वर्णन किया है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति प्रात: स्नान करके तिलक लगाकर मङ्गल कामना के लिए कलश स्थापित करता है, ठीक उसी प्रकार पूर्व दिशा ने भी अपने मंगल कामना के लिए सूर्य रुप कलश को धारण कर लिया।

उपर्युक्त पद्य में बिना विचार किये ही सौन्दर्य की प्रतीति हो रही है।

अविचारितरमणीय का मंजुल दृष्टान्त देखिए -

श्रीहरिरुरसि शर्मापश्यत [सार्द्धभाव उभयापि भृङगस्य।
सातमाय सरिदम्बुधितुल्य तत्वमत्र खलु जीवनमूल्यम्॥[2]

जयकुमार व सुलोचना हस्तिनापुर में सुख पूर्वक अपने वैवाहिक जीवन का आनन्द लेने लगे।

लक्ष्मी ने श्री कृष्ण के वक्ष:स्थल पर निवासकर सुख का अुभव किया था और पार्वती ने शङकर के अर्द्धाङगभाग को प्राप्त किया था। सुलोचना ने जयकुमार को उस प्रकार प्राप्त किया था जिस प्रकार नदी समुद्र को प्राप्त करती है।

सुलोचना ने अपना जीवन जयकुमार के साथ एक रुप कर लिया था जिस प्रकार नदी अपने जीवन जल को समुद्र में तन्मयी भाव से अर्पित कर देती है, उसी प्रकार सुलोचना ने भी अपना सबकुछ जयकुमार को अर्पित कर दिया।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 18/35
2. वही, 22/55

मुखारविन्दे शुचिहासकेशरे – ऽलिवव स मुग्धो मधुरे मृगीदृशः।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोर्दृशं निधाय पद्मापि जयस्य सम्बभो॥[1]

कवि ने इस श्लोक में उस समय का वर्णन किया है जब राजा जयकुमार ने राज्य कार्य अपने छोटे भाई विजय को देकर अपना ध्यान प्रजा के हित में लगा लिया था। सुलोचना व जयकुमार सुख पूर्वक अपना वैवाहिक जीवन यापन कर रहे थे।

वह जयकुमार मृगनयनी सुलोचना के उज्जवल हासरुपी केशर से युक्त सुन्दर मुखकमल पर भ्रमर के समान मुग्ध होते हुए सुशोभित हो रहे थे और सुलोचना उनके प्रसन्न चरण कमलों में अपनी दृष्टि लगाकर शोभायमान हो रही थी।

जिस प्रकार भौरें कमल पर आसक्त कहते हैं उसी प्रकार जयकुमार भी सुलोचना के ऊपर आसक्त था।

इस पद्य में बिना विचार किये ही स्वतः अपूर्व कल्पना सौन्दर्य का दर्शन होता है। यहाँ रमणीयता की सहज और झटिति प्रतीति हो रही है। अतः यह अविचारितरमणीयता का सुन्दर निदर्शन है।

मन इयान् प्रतिहारक एतकप्रतिरतेर्नटताद्वशंगः स कः।
भुवि जनाभ्यनुरञ्जनतत्परः भवति वानर इत्यथवा नरः॥[2]

एक दिन राजा जयकुमार को सांसरिक भोग – विलासों की निस्सारता को देखकर उनके मन में वैराग्य भाव जागता है।

मन इतना क्रीड़ा करने वाला है कि इसके प्रपंच के वश में हुआ मनुष्य पृथ्वी पर सदा दूसरों को आनन्दित करने में तत्पर रहता है। ऐसा मनुष्य वानर है या नर, कौन जाने।

जिस प्रकार मदारी के द्वारा नया जाने वाला वानर दूसरों का मनोरंजन करता है, उसी प्रकार मन रूप मदारी द्वारा प्रेरित हुआ मनुष्य स्त्री–पुत्र आदि दूसरों को प्रसन्न करने में तत्पर रहता है।

यह पद्य अविचारितरमणीयत्व का मञ्जुल दृष्टान्त है। श्लोकस्थ विचार–सौन्दर्य का सद्यः भान हो जाता है।

न खलु कञ्चुकमुञ्चनतः क्षतिरिहिवरस्य भत्यपि सन्मतिः।
स च सुखेशमखण्डसुखी – वहेत्तदिव विग्रहभारविनिग्रहे॥[3]

इस श्लोक में कवि आत्मा की महत्ता का वर्णन करते हैं।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 23/5 2. वही, 25/15 3. वही, 25/53

जिस प्रकार कांचली के छोड़ने से सर्पराज की कोई हानि नहीं होती, उसी प्रकार जो सद्‌बुद्धि, विचारवान् मनुष्य हैं वह शरीर का विनाश होने पर अखण्ड सुख का धारक रहता हुआ आत्मा को स्वीकृत करता है।

जिस प्रकार कांचली के छोड़ने पर सांप दुःख का अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार जो सद्‌बुद्धि, विचारवान् मनुष्य है वह शरीर का विनाश होने पर अखण्ड सु का धारक रहता हुआ आत्मा को स्वीकृत करता है।

जिस प्रकार कांचली के छोड़ने पर साँप दुःख का अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार ज्ञानीजन शरीर के छूटने पर दुःख का अनुभव नहीं करते, क्योंकि वे सुख से तन्मय आत्मा को शरीर से पृथक अनुभव करते हैं।

इस पद्य में दार्शनिक सौन्दर्य है। अतः इसमें भी अविचारितरमणीयता दिखाई देती है।

अविचारित रमणीय चमत्कार -

संक्षालनप्रोञ्छनयोः प्रवृतस्तनोर्जनोऽयं प्रतिभाँति हृतः।
यति सदात्मेकमतिः शरीरसेवायु रेवां न समेति धीरः॥[1]

कवि ने संसार में मानव की स्थिति व मुनिराज की स्थिति की तुलना की है।

यह संसारी जन हृदय से धोने और पोंछने में संलग्न जान पड़ता है जबकि एक आत्मा में लीन रहने वाले धीरवीर मुनिराज शरीर की सेवाओं में रूचि को प्राप्त नहीं होते।

संसारी मनुष्य भोग-विालस में लिप्त हैं। उसे आत्मा का ज्ञन नहीं है जबकि मुनि लोग अपने शरीर का ध्यान नहीं रखते है जबकि वह तो आत्मा में ही लीन रहते हैं।

इसमें विना विचार किये ही रमणीयता की प्रतीति हो रही है। अतः यह अविचारित रमणीय का उदाहरम है।

एक अन्य उदाहरम द्रष्टव्य है -

नहि विषादमियादशुभोदये - नहि शुभे सुभगो मुदमानयेत्।
जगति सम्प्रति सव्यतदन्यतोः कियदिवान्तरमस्ति च जन्ययोः॥[1]

ज्ञानी मनुष्य सभी अवस्था में एकसा आचरण करते है। वह सुख-दुःख में समभाव से रहते हैं।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 27/9
2. वही, 25/64

उत्तम मनुष्य पापकर्म के उदय में विषाद को तथा पुण्यकर्म के उदय में हर्ष को प्राप्त नहीं होते। संसार में जैसे बांये और दाहिने भाग से उत्पन्न होने वाले पदार्थों में कुछ भी अन्तर नहीं होता है।

शुभ और अशुभ कर्म मोक्ष प्राप्ति में बाधक है लेकिन जो ज्ञानी मनुष्य है वह अपने अनुरुप आचरण करते हुए श्रद्धा में उसे मोक्ष का कारण नहीं मानते हैं।

इस पद्य में अविचारितरमणीयत्व है।

रजक एष गुणी स्वगुणाम्बरं समरसेन रसेन सता वरम।
धहिति धावति नावति कश्मलं ननु विवेकमुपेत्य सुफेनिलम्।।[1]

गुणी मनुष्य एक धोबी है, जो समताभावरुपी पवित्र जल में अपने गुणरुपी वस्त्र को शीघ्र ही धोता है। वह मेल की रक्षा नहीं करता और विवेकरुपी उत्तम साबनि को लेकर गुणरुपी वस्त्र धोता है।

जिस प्रकार धोबी वस्त्र के कालुष्य को दूर करके उसे स्वच्छ निर्मल बनाता है उसी प्रकार गुणवान मनुष्य अपने विवेक से अपनी आत्मा को निर्मल व स्वच्छ करते है।

कवि ने धोबी व गुणवान मनुष्य की बड़ी सुन्दर तुलना की है।

इस पद्य का काव्य - सौन्दर्य अनायास प्रतीत हो जाता है।

एक अन्य निदर्शन अवलोकनीय है -

सदुक्तिमपि गृहणाति प्राज्ञो नाज्ञो जनः पुनः।
किमकूपारवत् वर्द्धयेविधुदीधितिः।।[2]

समीचीन उक्ति को भी बुद्धिमान मनुष्य ही ग्रहण करता है। अज्ञानी नहीं। क्या चन्द्रमा की किरण समुद्र की तरह कूप को भी बढ़ाती है ? अंर्थात् नहीं।

जिस प्रकार चन्द्रमा की किरण कूप को नहीं बढा सकती है उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य की बातें भी अज्ञानी मनुष्य नहीं समझ सकता है, क्योंकि उसकी बुद्धि अल्प होती है। वह सारगर्भित बातों को ग्रहण नहीं कर सकता है।

यह अविचारित रमणीय का सुन्दर उदाहरण है। अविचारित रमणीय का एक अन्य निदर्शन अवलोकनीय है -

---

1. जयोदय महाकाव्य, 25/66 2. वही, 28/86

सविभ्रमां च विटपेरुपश्लिष्टपयोधराम।
तत्याज तरसा भूपः स्निग्धच्छायां वनावनिम्॥[1]

राजा जयकुमार काशी में आयोजित स्वयंबर समारोह में उपस्थित होने के लिए जाते हैं तो वह वन भूमि को पार करके काशी में पहुँचते हैं। उसी का चित्रण किया गया है।

जयकुमार ने वनभूमि को बड़े वेग से पार कर त्याग दिया। वह वनभूमि पक्षियों की घूमने से विलासयुक्त थी। वहाँ के वृक्ष मेघों को छेते थे। वहाँ बड़ी घनी छाया थी।

बनावनी की कोई सुन्दर नायिका मानें तो सुलोचना में अत्यन्त अनुरक्त होने से राजा ने उसे भी तेजी से दुतकार दिया। यह वनावनीरुपा नायिका भी स्त्री विलासों से युक्त थी। उसके पयोधर कामुकों द्वारा आश्लिष्ट थे तथा उसकी कान्ति भी अत्यन्त स्निग्ध कोमल रही।

इस श्लोक में विना विचार किये ही स्वतः वन सौन्दर्य का दर्शन होता है। अतः यह अविचारितरमणीय का सुन्दर निदर्शन है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

प्राचीनतातोऽप्यनुरागवन्तं प्रतिश्रणत्येव नवादृगन्तम्।
निष्काशयत्याशु नभोनिकायात्सहस्त्ररश्मिं चरमा दिशा या॥[2]

जयकुमार व सुलोचना सेना सहित जब हस्तिनापुर प्रयाण करते है तब वे मार्ग में गङ्गा तट पर स्थित एक वन में ठहरते हैं। वहाँ सूर्यास्त का कवि ने बड़ा ही सचित्र वर्णन किया है।

जो पश्चिम दिशा रुपी नवीन वय वाली स्त्री है वह लालिमा से सहित (पक्ष में प्रेम सहित) भी सूर्य को पूर्व दिशा का स्वामित्व होने (पक्ष में वृद्धत्व) के कारण प्रेमपूर्वक अवलोकन क्या देती है ? उसकी ओर नेत्र खोलकर देखती भी है क्या ? अर्थात् नहीं देखती। उसे वह अपने आकाशरुपी घर से निकाल रही है।

सूर्यास्त होता देख कवि कल्पना करता है कि पश्चिम दिशा रुपी नववयस्का स्त्री वृद्धत्व के कारण उसे पसन्द नहीं करती है। उसे क्षमभर के लिए भी अपने पास नहीं रहने देना चाहती और उसको अपने आकाशरुपी घर से निकाल देना चाहती है। जबकि सूर्य पश्चिम दिशा रुपी स्त्री के प्रति प्रेम

---

1. जयोदय महाकाव्य, 3/113
2. वही, 15/18

रखता है। पश्चिम दिशा रुपी स्त्री इसलिए बाहर निकालना चाहती है क्योंकि उसको पता है कि उसके ऊपर तो पूर्व दिशा का स्वामित्व है, यह उसके अधीन है अतः इस पर हमारा स्वामित्व स्थापित नहीं हो सकता। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार नववयस्या स्त्री वृद्धपति को पसन्द नहीं करती, उसी प्रकार स्त्री में आसक्त पति को भी पसन्द नहीं करती।

यहाँ अविचारितरमणीयता की सहज और झटिति प्रतीति हो रही है। अतः यह अविचारितरमणीय का सुन्दर उदाहरण है।

एक और बानगी देखिए -

इति प्रोढसम्भषणोपातपाणिर्मृदुप्रायपच्छी कुमारस्य वाणी।
विभीरुः शनैरुद्ययो हे नुमानिन् महीभृत्पतेःपाददेशे तदानीम्।।[1]

स्वयम्बर के पश्चात् जयकुमार अयोध्या भरत चक्रवर्ती से मिलने के लिए जाते हैं तब -

जिस प्रकार कोमल चकणों वाली कोई भक्ति स्त्री किसी के हाथ का सहारा पाकर धीरे धीरे किसी विशाल पर्वत के शाखा पर्वत पर चढ़ती है, उसी प्रकार सुवन्त-तिडन्त रुप कोमल पदों से सहित जयकुमार की संकोचशील वाणी चक्रवर्ती के सम्भाषण रुप हाथ का आलम्बन प्राप्त कर धीरे-धीरे राजाधिराज (पक्ष में विशाल पर्वत) के चरणं के समीप (पक्ष में शाखापर्वत) पहुँची।

अविचारितरमणीय का मंजुल 'उदाहरण है। श्लोकस्थ विचार सौन्दर्य का सद्यः भान हो जाता है।

एक अन्य निदर्शन अवलोकनीय है -

जयः प्रचक्राम जिनेश्वरालयं - नयप्रधानः सुदृशा समन्वितः।
महाप्रभावच्छविमुन्नतावधिं - यथा सुमेरुं प्रभयान्वितोरविः।।[2]

जब जयकुमार व सुलोचना कैलास पर्वत पर जाते हैं तो मार्ग में जिन मन्दिर देखते हैं। और पूजा, अर्चना, परिक्रमा के लिए जिन मन्दिर जाते हैं। कवि ने अविचारित रमणीय के द्वारा प्रदक्षिणा की बड़ी सुन्दर कल्पना की है।

जिस प्रकार प्रभा से सहित सूर्य बहुत भारी प्रभायुक्त छवि वाले उत्तुङ्ग सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है, उसी प्रकार नीति प्रधान एवं सुलोचना से सहित जयकुमार ने कान्तिशाली उस जिनमन्दिर की परिक्रमा की।

इस पद्य में दार्शनिक सौन्दर्य है तथा विना विचार किये ही रमणीयता दिखाई देती है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 20/20 2. वही 24/56

एक अन्य मनोहारी उदाहरण दृष्टव्य है –

वेला बभूव व्यवधानहेतुः सुलोचनातद्भवयोर्द्वये तु।
सन्ध्या निशावासरयोरिवाथा नुगच्छतोर्निम्ननिबद्धगाथा।[1]

जिस प्रकार आगे – पीछे चलते हुए रात्रि और दिन के बीच सन्ध्या व्यवधान का कारण होती है, उसी प्रकार सुलोचना और जयकुमार इन दोनों के बीच निम्नांकित परिचय से युक्त बेला व्यवधान का कारण हुई थी।

यहाँ अविचारित रमणीयता की झटिति प्रतीति हो जाती है। अतः अविचारितरमणीयत्व का यह मंजुल उदाहरण है।

एक अन्य मंजुल दृष्टान्त देखिए –

बहिरमीष्वसमेषु विकारतः परिचयं रचयन्नविचारतः।
न परमात्मप्दये रतिमेत्ययं रस इयान् रसितःकिमपिस्वयम्॥[2]

जयकुमार को कांचना नामक देवी के अभद्र व्यवहार से वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ और संसार की निःसारता का ज्ञान हुआ।

इस जीव ने इतना रस का आस्वादन किया है कि तज्जनित विकार से यह उचित और अनुचित का विचार भूल गया है। फलस्वरुप इन बाह्य विलक्षण विषयों में स्वयं परिचय करता हुआ राग को करता है और आत्महितकारी मार्ग में प्रीति नहीं करता है।

मनुष्य अपनी आत्मा के सुख को नहीं प्राप्त करता है ैर सांसरिक सुखों से दुःखी होता है।

विना विचार किये ही चमत्कार की प्रतीति हो रही है अतः यह अविचारितरमणीय का उदाहरण है।

एक अन्य उदाहरण देखिए –

समाःसमात्तं किमु विस्मरन्तु भुक्तस्य युक्तं न विवेचनं तु।
भविष्यते स्फातिमितस्य कालः फलत्यनल्पं किमु नो नृपालः॥[3]

जयकुमार ने जब संसार परित्याग का निश्चय करके आदिनाथ के समवसण में जाते हैं तो जिनेन्द्रदेव उनको धर्मोपदेश देते हैं –

हे राजन! सम्माननीय मनुष्य अच्छी तरह प्राप्त हुई वस्तु को क्या विस्मृत कर दें ? अर्थात् नहीं, वे उसका सदुपयोग करें। जो बीत चुका है उसका विवेचन करना उचित नहीं है। भविष्यत् के लिए विचार करने वाले

1. जयोदय महाकाव्य, 24/100
2. वही, 25/62, 3. वही, 27/4

मनुष्य का काल क्या बहुत भारी फल नहीं देता है ? अवश्य यहाँ दार्शनिक सौन्दर्य की प्रतीति विचार्यमाणरमणीयता से प्रतीत हो रही है।

अविचारितरमणीयता के अनेक सुन्दर दृष्टान्त पङ्क्तियों में दृष्टव्य हैं-

1. *भवादभवान् भेदमवाथ चङ्गं भवः स गोरीं निजमर्धभङ्गम्।*
चकार चादो जगदेव तेन गोरीकृतं किन्तु यशोमयेन॥[1]

2. *सुमना मनुजो यस्या महिला सारसालया।*
श्रीधरोऽधीश्वरो यस्याः सा काशी रूचिरापुरी॥[2]

3. *हृदये जयस्य विमले प्रतिष्ठिता चानुबिम्बिता माला।*
भग्नाभग्नतयाऽ भात् स्मरशरसन्ततिरिव विशाला॥[3]

4. *द्विजराजतिरस्क्रियार्थमेतल्लप नश्रीरितिशिसणाय वेतः।*
द्रुतभक्षतमुष्टिनाथ यागगुरराडेनमता यद्विरानः॥[4]

5. *सुधाकरं श्री कलशं दयानाम्बरं वरं क्षालयतीव भानात्।*
तमोमलं हन्तुमथं क्षपेयं सायस्फुरत्फेनिलनामधेयम्॥[5]

6. *विषयरसाय दशा सकषाया शोच्या स्याद् विवशा या।*
गजस्येव कपटाभ्रमुकायां मनसो बहुलायापाया॥[6]

7. *तृणवदुत्पणमेव पुरः पुर समुपदर्श्य च मादृग्यं नरः।*
छगलवद्विपदे कविकृष्णाया सपजि दूरमनायि च तृष्णाया॥[7]

8. *समभूत समभूतरक्षणः स्वसमुत्सर्गविसर्गलक्षणः।*
शिवमा नवमा नवक्षणः नृपतेरुतपवदुरस वलक्षणः॥[8]

9. *सुचिरं शुचिरद्य कुम्भनी स्थितिरस्यां न मयावलिम्बनी।*
इतिधूपद्याढास्य धूमकच्छलतश्चोच्चलदेव मस्त्यकमू॥[9]

विचार्यमाणरमणीय चमत्कार की परिभाषा - विचार्यमाणरमणीय वह चमत्कार है, जिसका विचार करने पर कल्पना व चमत्कार की प्रतीति हो जाये तथा मस्तिष्कीय व्यायाम के द्वारा जिसका स्वरुप समझ में आ जाये उसको विचार्यमाणरमणीय चमत्कार कहते हैं। यह चमत्कार विलम्ब से प्रतीत होता है।

विचार्यमाणरमणीयता का सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है -

असो कुमुदबन्धुश्चेद्वितेषी सुगृशो ग्रतः।
मुखमेव सखीकृत्य बिन्दुमित्यत्र गच्छतु॥[10]

---

1. जयोदय महाकाव्य, 1/15 2. वही, 3/30, 3. वही, 6/126
4. वही, 12/27 5. वही, 15/71 6. वही, 23/66
7. वही, 25/12 8. वही, 26/1 9. वही, 26/54
10. वही, 3/51

कवि ने इस श्लोक में उस समय का वर्णन किया है, जब महाराज अकम्पन ने अपना दूत हस्तिनापुर के राजा जयकुमार के पास सुलोचना के अनुपम रुप, सौन्दर्य आदि गुणों की प्रशंसा करता हुआ कहता है।

यह कुमुदगबन्धु (कुमुद नामक कमल का विकासक चन्द्रमा) यदि सुलोचना के सम्मुख में भला चाहता है, तो यहाँ इसके मुख को मित्र बनाकर उससे कुछ भी विन्दु अर्थात् सारभूत काति प्राप्त कर ले।

कवि का अभिप्राय है कि चन्द्र अपने **कुमुदवन्धु** नाम से **भु** को हटाकर उसके स्थान पर विन्दु को स्वीकार कर ले। अर्थात् **मुंदवन्धु** बन जाय तभी कुशल है। अन्यथा सुलोचना के मुन्दकुसुमवत् मुख के सामने चन्द्रमा बिल्कुल फीका पड़ जायेगा।

भाव यह है कि सुलोचना का मुख अनुपम काति से युक्त है। उसके आगे चन्द्रमा की कांति फीकी है।

यह पद्य विचार्यमाणरमणी है।

तुडहा गभीरहत्वात् समुद्रवत् सज्जनक्रमकरत्वात्।
लावण्यखचितदेहो नदीनतालम्बनस्तेऽहो॥[1]

इसमें उस समय का वर्णन है, जब विद्यादेवी सुलोचना से कुरु देश के राजा से परिचय कराती है तथा उसके गुणों का व्याख्यान करती हुई कहती है -

आश्चर्य की बात है कि यह राजा गम्भीर हृदयवाला है, सज्जनों का क्रम स्वीकार करने वाला है, लावण्युक्त शरीरवाला है, दीनता से रहित है। अतः समुद्र के समान यह तेरी प्यास बुझा देगा। क्योंकि समुद्र भी गम्भीर होता है, वह नर्क-मकरादि जलजन्तुओं से युक्त खारे जल वाला और नदियों का स्वामी होता है। समुद्र नदी की स्वामिता धारण करता है, यह दीनता का अभाव धारण करता है।

कवि ने राजा व समुद्र की तुलना बड़ी ही मनोहारी की है। यह श्लोक विचार्यमाणरमणीय का है।

विराजमाना हयमुा मुखेन सुधाकरेणापि तथा नखेन।
अवर्णनीयोत्तमभास्करा वा निशा यथा शस्यतमस्वभावा॥[2]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब सुलोचना विवाह मण्डप में

1. जयोदय महाकाव्य, 6/81

2. जयोदय महाकाव्य, 11/71

उपस्थित होती है तो राजा जयकुमार उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कहता है -

इस चन्द्रमा की भाँति मनोहर मुख तथा नख से भी सुशोभित वचनागोचर कान्ति से तथा अत्यन्त प्रशंसनीय स्वभाव से युक्त होने से यह सुलोचना रात्रि के समान है, जो चन्द्रमा से अलङ्कृत होती है, वर्णनीय उत्तम सूर्य से युक्त रहती है और कामियों के द्वारा प्रशंसनीय तमस्वभाव से युक्त होती है।

यहाँ कवि ने सुलोचना की तुलना रात्रि से की है। जिस प्रकार रात्रि की सुन्दरता चन्द्रमा से होती है उसी प्रकार सुलोचना की सुन्दरता मुख तथा नख से अदभुत हो जाती है।

यह श्लोक विचार्यमाणरमणीय का सुन्दर उदाहरण है।

जयोदय महाकाव्य से विचार्यमाणरणीयत्व का एक अन्य रुचिर दृष्टान्त दृष्टव्य है -

लग्नाङगेषु च शुशुभे तेषां तावत्पुष्पप्रक रादेशाः।
जगज्जिगीषोः स्मरस्य बाणोदिता लक्षवलना न तदा नो॥[1]

यह उस समय का वर्णन है जब स्वयंबर के पश्चात् ये ोग विदा होकर हस्तिनापुर जाते हैं तब बीच में गंगा तट पर स्थित एक वन में ठहरते है। इसमें युवक-यवतियों की वनक्रीड़ा का वर्णन है।

उस समय नर नारियों के शरीर पर पर्याप्त मात्रा में पुष्प समूह ही जिसमें आदेश रुप था ऐसी जगत को जीतने के इच्छुक कामदेव के बाणों की लक्ष्य परम्परा अवश्य ही सुशोभित हो रही थी। पुष्प समूह से सुशोभित नर नारी ऐसे जान पड़ते थे मानो जगद्विजयी कामदेव ने उन्हें अपने बाणों का निशाना ही बना रखा हो।

पृथुलहरितया मुरारिरुपं कमिति जना आत्मनः स्वरुपम्।
संदिग्धादिग्धतया तद देवमयं चानुययुः ख्याततम्॥[2]

इस श्लोक में नदी के जल में स्त्री-पुरुषों की जल क्रीडा का सरस वणज्ञन किया गया है। इसमें नदी के जल किस प्रकार के हैं अनुमान किया है।

यह बड़ी-बड़ी लहरों से युक्त होने के कारण जल है अथवा स्थूल पुष्ट हरि विष्णु रुप होने के कारण मुरारि कृष्ण रुप है। अथवा **क** इस नाम सादृश्य के कारण आत्मस्वरुप है, इस प्रकार से देवरुप है मेघरुप है ऐसा समझकर

1. जयोदय महाकाव्य, 14/31
2. वही, 14/66

लोग उसका अनुमान कर रहे थे उसका सेवन कर रहे थे।

वह लोग यह सन्देह कर रहे थे कि जल किस रुप का है। वह नदी का जल अनेक रुप वाला था। विचार करने पर जल का रुप समझ आता है। अतः यह श्लोक विचार्यमाणरमणीय का है।

विचार्यमाणरमणीयत्व का रुचिर दृष्टान्त देखिए -

शाटीमिता कुसुमितामसको विभात-सन्ध्याप्यवन्ध्यभवनाय सुभावितातः।
मुञ्च क्षणं खंलु विचक्षणदृक्तयात-स्तामीश्वरः सफलयेदिति तं कृपातः॥[1]

इसमें प्रभात वर्णन किया है।

यह प्रभात सन्ध्या भी सहज स्वभाव से सार्थकता प्राप्त करने के लिए कुसुमानीरंग की रंगी हुई लाल साड़ी को धारण कर चुकी है, इसलिए ईश्वर (राजा जयकुमार) अपने संयोग समीचीन योगदान से उस प्रभात सन्ध्या को सफल कर सकें। अतः अपनी विचारशील दृष्टि के कारण क्षण भर के लिए उन्हें छोड़ दें।

जिस प्रकार स्त्री चतुर्थ स्नान के अनन्तर बांझपन का दोष नष्ट करने के लिए सहज स्वभाव से लाल साड़ी पहनती है, उसी प्रकार सन्ध्या ने भी अपनी निरर्थकता को नष्ट करने के लिए छाई हुई लाली के बहाने लाल साड़ी पहन रखी है। अतः उसे सार्थक करने के लिए वल्लभ - जयकुमार को छोड़े।

लेखीभवत्यत्र सदाक्षलानां - समाश्रयायवमथाखलानाम्।
यामो वयं ते खलु पत्रभाव-महो दयास्मासु महोदया वः॥[2]

इस पद्य में जयकुमार के द्वारा गंगा देवी को आभार प्रदर्शन किया गया है।

अहो!हम लोगों के बीच आप महोदया है, आपकी जो दया है वह सज्जन मानवों के लिये देवता रुप है। इसलिए हम आपकी पगत्राणता को प्राप्त है, अर्थात् आपके चरणों में संलग्न है। अक्षरों के आश्रय के लिए आपकी दया लेखरुपता को और हम पत्ररुपता को प्राप्त है।

आश्रय यह है कि हम लोगों पर आपकी जो दया है, वह अमिट अक्षरों के समान है। वह कभी भी न भूलने वाली ताम्रपत्र पर अङ्कित स्वर्णाक्षरों के समान है।

यह श्लोक विचार्यमाणरमणीय का उदाहरण है। विचार करने पर हमें गंगा देवी की दया की प्रतीति होती है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 18/14   2. वही, 20/75

विचार्यमाणरमणीयता का एक अन्य सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है -

वेणूदितसम्पदोऽबलाया गुणमाप्तवाभूच्चापलतायाः।
सरलं तरलं मनोवरस्य यदानङ्गमदहानिकरस्य॥[1]

इस श्लोक में जयकुमार और सुलोचना के दाम्पत्य प्रेम का वर्णन है।

स्वकीय सौन्दर्य से कामदेव के अहंकार को नष्ट करने वाला राजा जयकुमार सरल मन मुरली के समान मधुर स्वर वाली अथवा वंश परम्परा से प्राप्त सम्पदा से युक्त सुलोचना के सौन्ददर्यादि गुणरुप डोरी को प्राप्त कर जो चंचलता रुप चपलता धनुर्यष्टि निर्मित हुई थी, उसका लक्ष्यस्थान बन गया था।

विचार करने से पता चलता है कि कुलरुपी बॉस से धनुर्यष्टिका निर्माण हुआ था, उसमें सुलोचना के गुणों ने प्रत्यंचा का काम किया था और इसका निशाना जयकुमार का सरल मन हुआ था।

एक अन्य उदाहरण -

निवारिता तापतया घनाघना - घना वनान्ते सूरतश्रमोदिभदः।
भिंदस्तु किं वा निशि संगतात्मनां मनागपि प्रेमवतामुताहिनवा॥[2]

जयकुमार ने कैलाश पर्वत की प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है।

जिस पर्वत के वन प्रान्त में सघन मेघ सूर्य के प्रभाव को दूर करने के कारण रतिक्रीड़ा सम्बन्धी श्रम को नष्ट करते रहते हैं। अतः परस्पर मिलित प्रेमी जनों के लिए रात और दिन में थोड़ा भी भेद है ? अर्थात् नहीं है।

कहने का तात्पर्य यह है कि वह वन इतना सघन है कि वहाँ सूर्य व चन्द्रमा की रोशनी आती ही नहीं है। सूर्य का ताप प्रेमी मनुष्यों के उपभोग में बाधक नहीं है। सूर्य की उष्णता का वहाँ पता ही नहीं लगता।

यह विचार्यमाणरमणीय का उदाहरण है।

सुनिर्मले मुष्य तटे क्वचित क्वचिन्नपत्यगुंजा भृशमुत्पतन्तिः।
विभान्ति भव्यस्य किलान्तरात्मनि समुदगतारागरूषोरिवाशंकाः॥[3]

कैलाश पर्वत के सौन्दर्य का निरुपण किया गया है।

इस पर्वत के अत्यन्त निर्मल तट पर कहीं - कहीं जो गुमचियां बार - बार उछलती है, वे भव्यजीव की अन्तरात्मा उछलते हुए रागद्वेष के अंशों के समान सुशोभित होती है।

क्योंकि गुमची लाल रंग की होती है और उसका मुख काला होता है।

---

1. जयोदय महाकाव्य, 22/28 2. वही, 24/19 3. वही, 24/25

यहाँ कवि ने उसके लाल भाग में राग का और कृष्ण मुख़ में द्वेष का आरोप किया है। निर्मल तट में भव्य जन के अन्तरात्म का आरोप हुआ है।

अधिक विचार करने पर इस श्लोक की रमणीयता प्रतीति होती है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

व्यमुञ्चदेकार्थतयेकतां गतौ - स रागरोषविह दीपदम्भतः।
निजक्रियासम्भ्रमदर्शिनो - पूनर्जवाज्जयः स्वस्कवर्णलक्षणौ ।।[1]

इसमें उस समय का वर्णन है जब जयकुमार जिन मन्दिर में जाकर भगवान् की स्तुति कर रहे हैं।

जयकुमार ने शीघ्र ही दीपक के छल से एक प्रयोजनता को प्राप्त रागद्वेष को छोड़ दिया था, क्योंकि रागद्वेष और गीपक दोनों ही अपनी संभ्रमण रुप क्रिया को दिखा रहे थे तथा दोनों ही अपने वर्णरुप लक्षण को धारण करने वाले थे।

जिस प्रकार दीपक प्रकाश और कज्जल रुप होते हैं वायु के वेग से सम्भ्रमिरुप हलन चलन रुप होते हैं उसी प्रकार रागद्वेष भी शुभ अशुभ रुप होते है और यह संसार परिभ्रमण के कारण कहलाते हैं।

कवि ने रागद्वेष व दीपक की बड़ी ही मार्मिक तुलना की है। विचार करने पर रमणीयता प्रतीत होती है।

इसी श्रृंखला का एक अन्य उदाहरण अवलोकनीय है -

अयि सुवराज! वशमहीरुहि - स्वगतवातवशेन मिथोद्रुहि।
अपरमत्र न किञ्चिदये फलं, कलहवहिनमुपेमि तु केवलम् ।।[2]

जयकुमार को संसार की निःसारता जानकर वैराग्य उत्पन्न होना।

हे सुवंशज! मैं स्वकीय सन्तान से परिपालन की बुद्धिरुप वायु से परस्पर द्रोह करने वाले कुलरुपी वृक्ष अथवा बॉस के वृक्ष पर मात्र कलहरुप अग्नि को प्राप्त करता है। इसके सिवाय कुछ भी फल नहीं प्राप्त करता।

जिस प्रकार बॉस के वृक्ष पर कुछ भी फल नहीं लगता वे परस्पर के संघर्ष से अग्नि ही उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार कुटुम्बरुपी वृक्ष में परस्पर के विवादास्पद संवाद से कलहरुप अग्नि ही उत्पन्न होती है, उसमें आत्मा का हित करने वाला कोई फल प्राप्त नहीं होता है।

गृहस्थ धर्म से मनुष्य कुछ भी फल नहीं प्राप्त कर सकता है।

इस पद्य में सुष्ठु रमणीयत्व है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 24/78   2. वही, 25/30

इस चमत्कार का एकं अन्य सुन्दर निर्देशन द्रष्टव्य है -

अपि केन न वीक्ष्यते रविः शशिनीत्थं वशिनिन्दितो भवी।
जनतावनतानसिन्दशो वयसेतदद्वयमेचकाः शिशो॥[1]

इस श्लोक में जयकुमार अपने पुत्र अनन्तवीर्य को यह बताते हैं कि राज्य को किस प्रकार का आचरण करना चाहिए।

हे वत्स! सूर्य किसी के द्वारा नहीं देखा जाता क्योंकि उसमें इतनी तेजस्विता होती है कि कोई उसकी ओर नहीं देखता तथा शान्तावस्था में रहने वाले चन्द्रमा के विषय में मनुष्य घृणित आचरण वाला हो जाता है। अतः जनता की रक्षा का सन्देश देने वाले हम लोग चन्द्रमा और सूर्य के सम्मिश्रण भाव को प्राप्त हैं।

जो राजा सूर्य के समान तेजस्वी रहता है प्रजा उससे भयभीत रहने के कारण अपनी बात उससे नहीं कह पाती है ओर जो राजा चन्द्रमा के समान शान्त रहता है उसकी ओर से प्रजा स्वचछन्द होकर अपनी मनमानी करती है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह न तो सर्वथा उग्र रुप अपनाये और न अत्यन्त शान्त नीति को अपनाये। इन दोनों के सम्मिश्रित रुप को ही राजा को अपनाना चाहिए।

अपने पुत्र अनन्तवीर्य के प्रति कहे गये राजा जयकुमार के उक्त वचन पर भलीभाँति विचार करने पर ही रमणीयता दिखाई पड़ती है।

एक न्य उदाहरण देखिए -

जनलोचनशुक्तिसन्ततो विदिते स्वातिहिते महीपतो।
श्रुतयाऽश्रुतया किलाभवदिह मुक्ताफलतास्त्रवो नवः॥[2]

इस श्लोक में राजा जयकुमार के गृहस्थ धर्म का त्याग करने पर प्रजाजनों की मानसिक दशा तथा शारीरिक दशा का वर्णन किया गया है।

राजा जयकुमार जब आत्मसाधना रुप हित (स्वाति नक्षत्र) रुप से प्रसिद्ध हुए तब तन समूह के लोचनरुपी सीपों के समूह के लोचनरुपी वीपों के समूह से जो अश्रु समूह निकल रहा था, उससे मोतियों का नवीन निःसरण हो रहा था।

राजा जयकुमार के गृह त्यागने पर लोगों के नेत्रों से जो आँसू टपक रहे थे, वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सीपों से मोती निकल रहे हों, क्योंकि स्वाति नक्षत्र में पानी की जो बूँद सीप में पड़ती है वह मोती बन जाती है।

1. जयोदयमहाकाव्य, 26/23 2. वही, 26/40

राजा जयकुमार स्वयं स्वातिहित थे, मनुष्यों के नेत्र सीप थे और उनसे निकलने वाली आँसुओं की बूँदे मोती थी। रमणीयता गम्भीरता पूर्वक विचार करने से प्रतीत होती है।

इसी क्रम में एक अन्य उदाहरण अवलोकनीय है -

जिनतोऽभिमतः पराजयः स्वयमस्मान्नयमञ्दुला लयः।
कुसुमानि सुमायुधस्य तत्करतश्चाम्बरतः पतन्त्यतः ॥[1]

राजा जयकुमार वृषभदेव के समवसरण के अवलोकन मात्र से प्रसन्न हो गये। जिनराज की महत्ता दर्शायी गयी है।

समवसरण में पुष्पवर्षा हो रही थी जिससे जान पड़ता था कि कामदेव जिनराज से पराजित होकर अदृश्य हो गया है। जब मानों उसके हाथ से उसके शस्त्र रुप पुष्पों की वर्षा हो रही है।

समवसरण में आकाश से पुष्प वर्षा हो रही थी पर यह नहीं पता चल रहा था कि कौन पुष्प वर्षा कर रहा है। कवि ने संभावना की है कि कामदेव जिनराज से पराजित होकर लज्जा के कारण छिप गया और छिपकर आकाश से अपने शस्त्र - पुष्पों को जिनेन्द्र के आगे छोड़ रहा है।

यह बात सर्व सम्मत है कि शत्रु पराजित होकर अपने हथियार विजयी मनषुय के आगे डालदेता है।

यहाँ उत्प्रेक्षा की सहायता से यह रमणीय भाव अभिव्यक्त किया गया है कि पराजित शत्रु विजेता के आगे अपने हथियार डाल देता है।

जयदेव महाकाव्य में अनेकविध रमणीयत्व का प्राचर्य है। विचार्यमाण रमणीयत्व की एक और बानकी देखिए -

इतस्ततो भो परिमार्जनीवाऽविदधनुः सावगुणार्जिनी वाक्।
वेश्येव विज्ञस्व पुनर्मनुष्यान् सम्मोहयन्ती भृतिकामनु स्यात् ॥[2]

भगवान् जिनेन्द्रदेव के द्वारा धर्मोपदेश का वर्णन किया गया है।

हे भव्य! अनभिज्ञ मनुष्य की जो वाणी होती है वह इधर - उधर झाड़ने वाली बुहारी के समान दुर्गुणों का संग्रह करने वाली होती है, पर विवेकी मनुष्य की वाणी वेश्या के समान मनुष्यों को मोहित करती हुई प्रयोजन के अनुसार ही प्रवृत्त होती है। निष्प्रयोजन नहीं होती।

कवि ने अज्ञानी मनुष्य की उपमा झाड़ने वाली बुहारी से दी है। जिस प्रकार झाडू से हम कूड़ा - कचा इकट्ठा करते है उसी प्रकार अज्ञानी मुष्य

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 26/45   2. वही, 27/29

दुर्गुणों का संग्रह करता है। ज्ञानवान् मनुष्य की वाणी से वचन तभी निकलते हैं जब उसका प्रयोजन हो।

यह विचार्यमाण रमणीय का सुन्दर उदाहरण है।

विचार्यमान रमणीयत्व का एक अन्य रुचिर दृष्टान्त दृष्टव्य है -

विकारवर्ज्यं वपुराविभाति महामुनेर्हेममिवाभिजाती।

यज्जतुषं चेन्मणिकारवारे रज्जयेत किमोक्तिकमप्युदारेः॥[1]

इस श्लोक में महामुनियों की विशेषता बतायी गयी है।

महामुनि का विकार रहित शरीर स्वर्णनिर्मित उच्चकोटि के आभूषण के समान सुशोभित होता है। जिस तरह लाख से निर्मित वस्तु कलाकार के विविध प्रकारों से रंग दी जाती है, उसी प्रकार क्या मोतियों से निर्मित वस्तु भी रंगी जाती है अर्थात नहीं।

लाख के आभूषण पर रंग किया जाता है लेकिन मोतियों पर रंग नहीं होता है। उसी प्रकार गृहस्थ के शरीर पर विविध प्रकार की सजावट की जाती है। मुनि राज के शरीर पर नहीं।

गृहस्थ मनुष्य को भोग - विलास की लालसा होती है। मुनिराज पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

नानात्मवर्तनोऽप्यासीद बहुलोहमयत्वतः।

समुज्ज्वलगुणस्थानग्रहोऽ भूत् तन्तुवायवत्॥[2]

जब राजा जयकुमार ने मुनि व्रत धर्म का पालन किया तो वह गुण स्थानों में प्रवृत्ति करने वाले हो गये थे।

वे जयकुमार मुनि अनेक प्रकार से उहापोह से सहित होकर भी आत्मा को छोड़ अन्य पदार्थों में प्रवृत्त करने वाले नहीं थे। अपना उपयोग आत्मा में अथवा अत्यधिक लोह धातु रूप होकर अनेक प्रकार के भजनों से सहित थे तथा जुलाहे के समान अपना गुणस्थान को ग्रहण करने वाले थे, विरत गुणस्थानों में प्रवृत्ति करने वाले थे।

गुणस्थान चौदह होते हैं। छठवें गुण स्थान से लेकर आगे के सब गुणस्थान मुनियों के ही होते हैं।

विचार करने पर प्रतीत होने वाले रमणीयत्व के कारण यह विचार्यमाण रमणीय का उदाहरण है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 27/38, 2. वही 28/14

विचार्यमाण रमणीयत्व का एक रुचिर दृष्टान्त दृष्टव्य है –

गवाभाधारभूतास्ते यद्यपीहद्द सद्ङकुराः।
खलं लब्ध्वा भवन्तीमा रससंक्षरणक्षमाः॥[1]

यद्यपि इस लोक में सज्जनों के कृपाकटाक्ष वाणी के आधारभूत है, तथापि ये गोरुप वाणी दुर्जन खली को पाकर रसोत्पादन में समर्थ होती है।

घास के अंकुर खाकर ही गायक जीवित रहती है, परन्तु खली के खाने से ज्यादा दूध देती है। इसी प्रकार सज्जनों की कृपा से कविगण काव्य की रचना करते हैं। उनकी प्रेरणा से ही कवि काव्य रचना में संलग्न होते है। परन्तु दुर्जन मनुष्य दोष प्रदर्शित कर उस रचना को निर्दोष कर देते हैं। अतः सरसता उन्हीं से प्राप्त होती है।

विचार्यमाण रमणीयत्व का एक रुचिर दृष्टान्त है –

पाणिनीयकुलकोक्तिसुवस्तु पूज्यपादविहितां सुदृशस्तु।
सर्वतोऽपि चतुरङगतताभिः काशिकां ययुरमी घिषणाभिः॥[2]

भरत चक्रवर्ती का पुत्र अर्ककीर्ति सुलोचना के स्वयंबर सभा में जाने के लिए काशी पहुँचते हैं। उसी का वर्णन कवि ने किया है।

ये लोग अपने घोड़ो की पक्ति द्वारा सर्वत्र चार तरह से विस्तार को प्राप्त होने वाली अपनी बुद्धि से सुलोचना के आदरणीय चरणों से युक्त काशिका – नगरी को हाथ के संकेत मात्र में शीघ्र पहुँच गये।

समासोक्ति से इसका अर्थ इस प्रकार है कि अध्ययन, बोध, आचरण और प्रचारण इन चार रुपों से सर्वत्र फैलने वाली अपनी बुद्धि द्वारा पूज्यपादाचार्य की पाणिनीय – व्याकरण पर बनायी **काशिका** वृत्ति को इन लोगों ने प्राप्त किया।

यह श्लोक विचार्यमाणरमणीय का है।

एक अन्य उदाहरण –

अस्मदत्र तु भवान्मृगनेत्रीं प्राप्य गच्छतु परम्पराभावम्।
प्राह सोऽपि गदतीत्यपरस्मिन्नास्मि किन्तु भवतः सुहृदेव॥[3]

स्वयंबर के पश्चात् जब जयकुमार हेमाङगद आदि सालों के साथ हस्तिनापुर में हास्य विनोद करते हैं। तब कोई जयकुमार से कहता है कि यहाँ आप हमसे मृगनेत्री मृगों की नायिका हरिणी (पक्ष में मृगनयनी सुलोचना) को प्राप्त कर परम्परभाव पुत्रपौत्रादिकी वृद्धि की होओ। इस प्रकार किसी के कहने

1. जयोदयमहाकाव्य, 28/95, 2. वही 4/16, 3. वही, 21/86

पर जयकुमार ने कहा कि फिर भी मैं आपका सुहृद मित्र हूँ अर्थात् आपने मृगनेत्री मृगनयनी न देकर मृगनेत्री हरिणी दी, इससे मुझे रोष नहीं है इससे आप मेरे शत्रु नहीं है किन्तु आप लोगों के प्रति सुहृद भाव ही है।

विचार करने पर रमणीयता प्रतीत होती है।

विचार्यमाणरमणीय का मनोहारी उदाहरण देखिए -

शर्वरीति मृदुचलना सालंचक्रे विस्तृतकरं नृपालम्।
भास्वन्तं भुवि वेशश्चायं ज्येष्ठो जडतापकरणाय॥[1]

मृदुचलना कोमल चरणों वाली शर्वरी सुलोचना युवती ने विस्तृतकर दीर्घबाहु और भास्वन्तं दीप्तियुक्त राजा जयकुमार को विभूषित किया। पृथ्वी पर जड़ता मूर्खता के अपकरण दूर करने के लिये ज्येष्ठ श्रेष्ठ प्रकार माना जाता है, अर्थात् स्त्री पति के अनुकूल रहे, इससे जड़ता धृष्टता नष्ट होती ही है।

सुलोचना ग्रीष्म ऋतु के समान थी, क्योंकि जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में रात्रि मृदुचला - स्वल्प परिणाम होती है, उसी प्रकार सुलोचना भी मृदुचलना कोमल पैर वाली थी। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु विस्तृतकर विस्तृत किरणों वाले भास्वन्तं सूर्य को अलंकृत करती है उसी प्रकार सुलोचना भी विस्तृतकरं भास्वन्तं नृपालं दीर्घबाहु एवं देदीप्यमान राजा को अलंकृत करती थी और ग्रीष्म ऋतु में जेठ का महीना जिस प्रकार जडताप के कारण जल के गर्म होने का कारण है, अथवा जल स्वभाव को नष्ट करने वाला है, उसी प्रकार सुलोचना भी जडतापकरणाय मूर्खता को दूर करने वाली थी।

सुलोचना की ग्रीष्म ऋतु से तुलना बड़ी ही सुन्दर कल्पना है। विचार करने पर सौन्दर्य विगलित हो रहा है। एक और बानगी दृष्टव्य है

अथेममभ्यडगरूचिः पुनः शुचिः पयोधरोदारघटा बभाज सा।
विधूयमानार्हमुखा सुखाशिका समाप्तवश्रीर्वर्णशासिका॥[2]

जब जयकुमार व सुलोचना कैलाश पर्वत पर चढ़ते है तो मार्ग में जिन मन्दिर देखते है। उन दोनों की शोभा अनुपम थी। उस स्नान लक्ष्मी ने जयकुमार की सेवा की, जो अभ्यडरुचि उबटन अथवा तेल - मर्दन में रूचि रखती थी, शुचि स्वभाव से उज्जवल थी, पयोधरोदारघटा - जल को धारण करने वाले बडे-बड़े कलशो से सहित थी, विधुपमानार्हमुखा - कपूर की उपमा के योग्य प्रारम्भ से सहित थी, सुखाशिका - सुख प्रदान करने वाली थी और वर्णशासिका - उत्तम रुप को प्रदान करने वाली थी।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 22/17, 2. वही, 24/57

स्नान लक्ष्मी रुपी स्त्री ने जयकुमार को स्वीकार किया। इस पक्ष में विशेषणों की अर्थ योजना इस प्रकार है -

अभ्यक्षरुचि - पति के शरीर में जिसकी रुचि है, शुचि स्वभाव से जो उज्जवल रुप को धारण करने वाली है। पयोधरोदारघटाघट के समान जिसके बड़े-बड़े स्तन है, विधूपमानार्हमुखा जिसका मुख चन्द्रमा की उपमा के योग्य है, सुखाशिका जो मुख की आशा करती और वरवर्णशासिका पति के रुप अथवा यश का वर्णन करने वाली है।

रमणीयता गूढ है जो विचार करने पर ही प्रतीत होती है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

तवावतारो ह्रदिमे प्रशस्य क्षुद्रेऽ वादशे इव द्विपस्य।
गुणांस्तु सूक्ष्मानपि सालसंज्ञा सूची न गृहणाति कुतरसज्ञा।।[1]

जयकुमार जिन मन्दिर में जाकर भगवान् की स्तुति करता हुआ कहता है कि - हे प्रशस्य! हे स्तुत्य! मेरे संकीर्ण ह्रदय में आपका अवतीर्ण होना ऐसा है जैसे दर्पण में हाथी का अवतार होता है। यह एक उल्लेखनीय प्रसङ्ग है परन्तु सुई के समान जो मेरी रसज्ञा जिह्वा है वह अलसज्ञा - रसज्ञा न रहकर अलासज्ञा हो गई है अर्थात् आलस्य को प्राप्त हो गई। यद्यपि सुई आपके सूक्ष्म गुण - महीन सूत को ग्रहम कर लेती है परन्तु मेरी जिह्वा रुपी सुई आपके सूक्ष्म गुणों को ग्रहण नहीं कर पाती। इसलिए वह अलसज्ञा हो गई है। तात्पर्य यह है कि आपकी महिमा हमारे ह्रदय में अवतीर्ण हुई है परन्तु जिह्वा में उसे कहने की सामर्थ्य नहीं है। वह आपके गुणों का व्याख्यान नहीं कर सकती है।

विचार्यमाणरमणीय का ललित उदाहरण देखिए -

रसहितं नवनीतमगान्मनो वचनचक्रमभूत कटुतक्रवत।
किलिकिलाटवदङ्गगतं नु ते किमु न पश्यसिगोरससारिके।।[2]

रविप्रभ नामक देव ने जब कांचना देवी को जयकुमार के शील की परीक्षा लेने के लिए भेजा, तब वह अपने हाव - भाव आदि से जयकुमार को विचलित नहीं कर पायी तब जयकुमार ने उससे कहा! हे गोरससारिके! वचन सम्बन्धी आनन्द का अनुभव करने वाली ! हे गोपिके! श्रृङ्गारसहित तुम्हारा मनरुपी नवनीत तो अग्नि से सहित हो पिघलकर बह गया, वचन समूह छाछ के समान कटुक हो गया और शरीरगत जो चेष्टा है वह छोक के समान नि:सार है, यह क्या तुम देख नहीं रही हो ?

1. जयोदयमहाकाव्य, 24/87 2. वही, 24/137

तुम्हारे मानसिक, वाचनिक और शरीरिक विकार मुझे विचसित नहीं कर सकते। तुम अपने प्रयोजन में निष्फल रही।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

अयि सुवशंज! वंशमहीरुहि स्वगतवातवशेन मिथोद्रहि।
अपरमत्र न किञ्चिदये फलं कलहवह्निमुपेमि तु केवलम्॥[1]

श्रेष्ठवंश में उत्पन्न आत्मन! मैं स्वीकय सन्तान के परिपालन की बुद्धिरुप वायु से परस्पर द्रोह करने वाले कुल रुपी वृक्ष अथवा बॉस के वृक्ष पर मात्र कलहरुप अग्नि को प्राप्त करता हूँ, इसके सिवाय अन्य कुछ भी फल नहीं प्राप्त करता।

जिस प्रकार बॉस के फल पर कोई फल नहीं आता, वे परस्पर के संघर्ष से अग्नि ही उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार कुटुम्बरुपी वृक्ष में परस्पर के विसंवाद से कलहरुप अग्नि ही उत्पन्न होती है। उसमें आत्मा का हित करने वाला कोई फल प्राप्त नहीं होता।

जब जयकुमार का वैराग्य भाव जाग उठता है तब उनको सांसरिक जीवन बॉस के समान प्रतीत होता है।

विचार करने पर चमत्कार प्रदर्शित होता है।

विचार्यमाण रमणीय का मंजुल निदर्शन देखिए -

न सत् सदैकं गुणसंग्रहत्वाद घृतादयो मोदकमस्तु तत्वात्।
अनैक्यमेवास्य तथेतु किञ्चिदेकैकतोऽनैक्यमुपेति किञ्चित्॥[2]

जय कुमार जब भगवान् आदिनाथ के समवसरण में जाते हैं, तो वे आदिनाथ के चरणों का सान्निध्य पाकर इस प्रकार भगवान् की स्तुति करते हैं।

सत् सर्वथा एक नहीं है, क्योंकि वह अनेक गुणों का संग्रह रुप है। घृत शक्कर और आटा आदि को मिलाकर लड्डू बनाया जाता है, अतः वह देखने में एक प्रतीत होता है। कई पदार्थों के संग्रह से बना है उनकी और दृष्टि देने से वह अनेकरुप हो जाता है। परन्तु जीवादि द्रव्यरुप सत् अनेक गुणों के संग्रह रुप होने से लड्डू की तरह अनेकरुता को नहीं प्राप्त होता, क्योंकि घृत, शर्करा आदि पदार्थ अपना पृथक पृथक अस्तित्व लिये हुए लड्डू में संगृहीत होकर एकरुप दिखते हैं, इस प्रकार जीवादि द्रव्यों में रहने वाले ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि गुण अपनी अपनी पृथक सत्ता नहीं रखते और न

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 25/30
2. जयोगयमहाकाव्य, 26/84

कभी जीवादि द्रव्यों से पृथक थे। इसलिये सत् में जो अनेकत्व है वह उसमें अनेक गुणों के साथ तादात्म्य होने से है, संग्रह रुप होने से नहीं। अनेक गुणों की ओर दृष्टि देने से जीवादि सत् अनेक रुप जान पड़ते हैं, परन्तु उन सब में प्रदेश भेद न होने से परमार्थ से एकरुपता है।

गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर रमणीयता की प्रतीति होती है।

एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है –

ज्ञानार्णवोदयायासीदमुष्य शुभचन्द्रता।
योगत्तवसमग्रत्व भागजायतसर्वतः॥[1]

जयकुमार ने मुनि अवस्था धारण करने के पश्चात् तपस्या करना आरम्भ कर दिया तथा अपने ज्ञानवर्द्धन कार्य में लग गये।

जयकुमार सब ओर से गतत्व और समग्रत्व को प्राप्त थे अर्थात् अतीत – अनागत पदार्थो में उनका ज्ञान व्याप्त था और पूर्णत्व को प्राप्त था, जिस प्रकार चन्द्रमा समुद्र को वृद्धिगत करता है, उसी प्रकार जयकुमार अपने ज्ञानरुप समुद्र को वृद्धिगत कर रहे थे।

जयकुमार सब ओर से ध्यानरुप वस्तु की पूर्णता को प्राप्त थे तथा ज्ञानार्णव नामक ग्रन्थ के उदय के लिये इनमें शुभचन्द्रपना था अर्थात् शुभचन्द्राचार्य ने जिस प्रकार ज्ञानार्णव नामक योगशास्त्र को रचकर ध्यान को विस्तृत किया है उसी प्रकार जयकुमार ने भी शुक्ल ध्यान के माध्यम से घातिया कर्मो का क्षयकर अपने ज्ञानरुप सागर को विस्तृत किया था।

यह विचार्यमाण रमणीय का उदाहरण है। विचार करने पर जयकुमार के विशाल ज्ञान का पता चलता है।

पं. भुरामल जी शास्त्री कहीं अपने वाग्व्यवहार के चातुर्य से अनायास विषय बोध कराने के दक्ष है, तो कही वे काव्य भाषा के प्रयोग सोष्ठव में ऐसी विदग्धता ला देते हैं कि बहुत विचार करने के बाद ही विषय का बोध हो पाता है। शब्दों के क्रम स्थापन में निपुण या कुशलता से ही काव्य में भाषा के सौन्दर्य का निवेश होता है।

कहना न होगा कि महाकवि भूरामल जी की काव्य भाषा में शब्दों के क्रम स्थापन की पटुता अथवा कला लालित्य, पदशय्या की इच्छा से ही उससे भी अधिक सौन्दर्य का आधान हुआ है। यही कारण है कि पूरा जयोदय महाकाव्य काव्य रस की आपातरमणीय अनुभूति से सातिशय मनोरम बन गया है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 28/48

सौन्दर्य – रुचिरता, मनोहरता, मनोज्ञता, तरलता, सुकुमारता, लावण्य और लालित्य, स्फूर्ति और ओज ये सबके सब जयोदय महाकाव्य की रमणीय बनाये हुये हैं।

रससिद्ध कवीश्वर भूरामल जी इस महाकाव्य में सम्यक् प्रभाव, सृष्टि के लिए व्यंजक विशेषणों और सादृश्य विधान या अप्रस्तुत योजना के प्रति अधिक सचेष्ट रहे है। साहित्य शास्त्र में मर्मज्ञ भूरामल जी माधुर्य और प्रसाद गुण व्यंजक वर्णवाली शब्दावली से अपने काव्य में प्रचुर रमणीयता ला दी है। उनकी रमणीयता में वाच्यार्थ के साथ ही लक्ष्यार्थ व व्याग्यार्थ की प्रधानता है। व्यग्य वाले स्थलों पर सुष्ठु किन्तु गरिष्ट प्रयोगों के दर्शन होते हैं फिर भी अर्थ बोध हो जाने पर काव्य-सोष्ठव की आवर्जकता हृदय को अभिभूत कर लेती है।

इस तरह जयदेव महाकाव्य कवि के सफल काव्य-सौन्दर्य का भाषिक प्रतीत है।

विचार्यमाण रमणीयता के अन्य सुन्दर दृष्टान्त वक्ष्यमाण पंक्तियों में दृष्टव्य हैं –

नटी मुदा मन्दपदाममैयं लास्यं रसा सभ्यजना नुमेयम्।
प्रसिद्धवंशेस्य गुणोधवश्यमुपैतु भूमण्डलमण्डस्य॥[1]

सव्रजदव्रजस मुत्थरजस्तामीश्वरो ज्झनिदशश्च दिशंस्ताः।
पीतिमा नमिमता ननदेशेऽवापुराप्य जगतीह सुवेश॥[2]

निमज्जितं तेन जलैकपूरे श्रुतश्रियां वैभवतोऽप्यदूरे।
श्रीसर्वतोभदूतया मनोज्ञे भलापहेऽस्मिन् कविकल्पभोम्ये॥[3]

राजते हि जगती रजस्वलाऽमी ततोऽथ तुरगाः सुपेशलाः।
रूमास्पृशन्त इति यान्ति कश्मलादभीतिमन्तइव तावदुत्कलाः॥[4]

गोप्रतिर्जनतयासि भाषितोऽस्माकमाशु गुणवदवृशस्त्वकम्।
आह सोऽथ वदतीतरे जयः किन्न गोत्रिगुण एवभो भवान्॥[5]

उच्चैस्तनमौदकायसिद्धा निःस्वेदया रुचा जगतीद्धा।
हेमन्तश्री रिवाभिरामा महीपतेः साबभूव रामा॥[6]

भियेव भव्यो भवभावितच्छलात् स्वयं महोद्यानचतुष्टयच्छलात्।
सुवृत्त एताः परिवर्तिताकृतीर्विभर्ति धर्मार्थनिका मनिवृतीः॥[7]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 1/32 2. वही, 5/8 3. वही, 19/9
4. वही, 21/9 5. वही, 21/85 6. वही, 22/14 7. वही, 24/11

पयोधरा भोगसुयोगमंजुलां तटी समन्ताद्धरिचन्दकाचिताम्।
गिरीश्वरः सेवत एव सतमां निजार्द्धदेहा नुमितां तु पार्वतीम्॥[1]
नाङ्कंटङ्कमिवाशनिप्रतिकृतो लेभे वचस्तद्धृदि।
हावादोहमनाङ्न तत्परिणतिं प्रापोषरे बीजवत्।
तस्याः किंच मनोरथोन्नतगिरिं भेत्तु ववोवज्रराद्-
श्रीस्तम्बेरमपत्तनेश्वर मुखादेवं पुनर्निर्ययो॥[2]
जनतां च नतो समाश्वसेः स्वमनस्यम! नेव विश्वसेः।
नटवत् तटवर्तिदृक्तया रहितो हष4विमर्षसृक्तया॥[3]
तुलान्तवत्तद् द्वयमस्तु वस्तु प्रतिष्ठित विज्ञहृदीह वस्तुम्।
न पश्चिमाशेन विना बिभर्ति समग्रमंशं खलु यास्ति भितिः॥[4]
येषां मतेनाथ गुणः स्वधाम्ना सम्बध्यते वे समवायनामना।
तेषां तदैक्यात्किल संकृतिर्व नलस्थितिः पक्षपरिच्युतिर्वा॥[5]
नितम्बिनीषुं स्विदनीदृशीषु भासा समासाद्विजितोर्वशीषु।
अङ्गेन रङ्गे नरश नन्यभाव प्रतिप्सुः प्रभवेत् सजन्यः॥[6]
गरेयेवेरया व्याप्त भोगिनामधिनायकः।
अहीनः सर्पवत् तावत् कंचुकं परिमुक्तवान्॥[7]
प्रत्याहारमुपेतो वा यमिताद्युपयोगवान्।
तवान्तराय मासाद्य धारणाख्यातिमादधो॥[8]
तपसाधिंगतामेव कांचनस्थितिमादधत्।
मुद्रोचितं प्रयोगेण कंकणं कृतवानमो॥[9]
अहो काव्यरसः श्रीमान् यदस्य पृषता व्रजेत्।
दुर्वर्णता दुर्जनस्य मुखं साधोः सुवर्णताम्॥[10]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 24/6
2. वही, 24/136
3. वही, 26/24
4. वही, 26/78
5. वही, 26/82
6. वही, 27/24
7. वही, 28/6
8. वही, 28/31
9. वही, 28/28
10. वही, 28/73

चतुर्थ अध्याय

समस्तसूक्तव्यापी तथा सूक्तैकदेशंदृश्य चमत्कार तथा जयोद

समस्तसूक्तव्यापी चमत्कार की परिभाषा – समस्तसूक्तव्यापी वह चमत्कार है जिसमें पूरी सूक्ति अपने भाव लावण्य से चमत्कार उत्पन्न करे। जहाँ समस्त सूक्ति में चमत्कार होगा वहीं समस्त सूक्तव्यापी चमत्कार कहलायेगा।

जयोदय महाकाव्य में कुछ पद्य द्रष्टव्य है –

वृद्धिंगतत्वात्पलितोज्ज्वलाद्य कीर्तिर्भुजडगस्य गृहं प्रसाद्य।
हत्वाम्बरं नन्दनमेति चारमहो जरायां तु कुतोविचारः॥[1]

इसमें स्वच्छन्द औरत बूढी हो से सफेद बालों वाली होकर भी कामी पुरुष के घर जाती रहती है और वस्त्ररहित हो अपने पुत्र तक को आलिंगन करती है। ठीक ही है, बुढापे में मनुष्य प्रायः विचाररहित हो ही जाता है। सिी तरह राजा जयकुमार की कीर्ति वृद्धि को प्राप्त होने के कारण पलित के समान सफेद होती हुई नीचे नागलोक में जाकर और उपर आकाश को पारकर इ्द्र के नन्दन वन तक पहुँच गयी। अर्थात् तीनों लोकों में फैल गयी।

यहाँ पूरा पद्य ही सुक्तिमय है इसलिए यह समस्तसूक्तव्यापी का सुन्दर उदाहरण है।

समस्तसूक्तव्यापी का मजुल दृष्टान्त दृष्टव्य है –

स्वीकृते परमसारवत्तया जायते पुरनसारतारयात्।
तक्रतो हि नवनीतमाप्य.ते तः पुनर्धृतकृते विधाप्यते॥[2]

प्रारम्भ में परमसारवान होने से जो बात स्वीकर की जाती है वही कुछ समय बाद आसार हो जाती है। जैसे छाछ से जो मक्खन निक़ाला जाता है वही बाद में शीघ्र तपाकर घी बना लिया जाता है।

जिस प्रकार छाछ से घी बनता है उसी प्रकार सारवान् बात का महत्तव है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, (पूर्वार्द्ध) 1/36
2. वही, 2/14

यह समस्त सूक्ति ही भावलावण्यरुप अमृत की मानो वर्षा कर रही है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

शक्यमेव सकलैविधीयते को नु नागमणिमाप्तुमुत्पतेत्।
कूपके च रसको प्यूपेक्षते पादुका तु पतिता स्थितिः क्षतेः॥[1]

सभी लोगों के द्वारा शक्य कार्य ही किया जाता है। नागमणि प्राप्त करने के लिए भला कौन प्रयत्न करेगा ? कुँए में पड़े चरस की सभी उपेक्षा करते है पर यदि जूती गिर जाय तो वह किसी से भी सहय नहीं होती अर्थात् सभी उससे घृणा करते हैं।

जूते के गिरने से उसका जल अपवित्र हो गया। अपवित्र वस्तु से सभी घृणा करते हैं क्योंकि वह सम्पूर्ण वातावरण को दूर्षित करती है। सभी लोग अच्छा कार्य करना चाहते हैं।

यह श्लोक समस्त सूक्तव्यापी का सुन्दर दृष्टान्त है।

सम्मता हि महतां महान्वयाः संस्मरन्तु नियतिं दृढाशयाः।
तात्रिकोष्टिनिरता पुनर्वा नानन्तो हि परिपोषण गवाम्॥[2]

महापुरुषों से मान्य और उत्तम विचार वाले दृढचित्त लोग देव का स्मरण किया करें किन्तु गृहस्थ व्यावहारिक नीति ही स्वीकार करते हैं। क्योंकि गाय का पोषण केवल अन्नमात्र से नहीं हो सकता। उसको घास की भी आवश्यकता होती है।

कवि ने गृहस्थ और गाय की बड़ी सुन्दर तुलना की है। गाय का पोषण घास के बिना नहीं हो सकता है उसी प्रकार् गृहस्थ धर्म का पालन भी केवल व्यावहारिक नीति से नहीं हो सकता है।

समस्त सूक्ति में चमत्कार विद्यमान है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

सुस्थितिं समयरीतिमात्मनः सडगतिं परिणतिं तथा जनः।
द्रष्टुमाशु करणश्रुतं श्रयेत् स्वर्णक हि निकषे परीक्ष्यते॥[3]

मनुष्य सभी अवस्था, काल के नियम, अपनी संगति, शुभाशुभ परिवर्तन का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिए करणानुयोग शास्त्रों का अध्ययन करे। क्योंकि सुवर्ण के खरे - खोटे की परीक्षा कसौटी पर ही की जाती है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 2/16

2. वही, 2/11 3. वही, 2/47

प्रत्येक मनुष्य को करणानुयोग शास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए जिससे वह सुभ अशुभ परिवर्तन का ठीक से ज्ञान प्राप्त कर सके। क्योंकि जिस प्रकार सुवर्ण के खरे खोटे की परीक्षा कसौटी पर होती है उसी प्रकार करणानुयोग शास्त्र से ही काल आदि का ज्ञान होता है।

पार्थिवं समनुकूलयेत्पुमान् यस्य राज्यविषये नियुक्तिमान्।
शल्यवद्व्रजति यद्विरोधितो नाम्बुधो मकरतोऽरिता हिता।।[1]

मनुष्य को चाहिए कि जिस राजा के राज्य में निवास करता है उसको वह प्रसन्न बनाये रखने की चेष्टा करे। उनके विरुद्ध कोई काम न करे, क्योंकि उसके विरुद्ध चलना शल्य के समान हर समय दु:ख देता रहता है। समुद्र में रहकर मगरमच्छ से विरोध करना हितावह नहीं होता। क्योंकि अगर मनुष्य उसके विरुद्ध चलता है तो उसका ही नुकसान है। वह उसे कभी भी नष्ट कर सकता है क्योंकि उसके पास शक्ति होती है।

यह पूरा श्लोक ही सूक्तिमय है।

एक अन्य निदर्शन देखिए -

अन्तरङगबहिरङगशुद्धिमान् धर्म्यकर्माणिं रतोऽस्तु बुद्धिमान्।
श्रीर्यतोऽस्तु नियमेन संवशा मूलमस्ति विनयो हि धर्मसात्।।[2]

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि अंतरङग और बहिरङग शुद्धि को संभालते हुए धर्म कार्य में सदैव संलग्न रहे, जिससे लक्ष्मी सदा वश में बनी रहे, क्योंकि धर्म का मूल विनय ही है।

मनुष्य को चाहिए कि वह धर्म-कार्य में तत्पर रहे, क्योंकि धर्म का मूल विनय है। विनय नहीं है तो धर्म नहीं, धर्म नहीं तो लक्ष्मी नहीं, इसलिए मनुष्य को लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए धार्मिक कार्यों में लगे रहना चाहिए।

समस्त सूक्ति की ज्ञान वर्धक चमत्कार की वर्षा कर रही है।

एक अन्य श्लोक देखिए -

धेनुरस्ति महतीह देवता तच्छकृत्त्प्रस्त्रवणे निषेवता।
प्राप्यते सुशुचितेति भक्षण हा तयोस्तदिति मोयलक्षणम।।[3]

भारत वर्ष में गाय को माता के समान पूजा जाता है। गाय बहुत उत्तम देवता है, इसलिए उसके गोमय और गोमूत्र का सेवन करने वाला पुरुष

1. जयोदयमहाकाव्य, 2/70
2. वही, 2/73   3. वही, 2/87

पवित्रता को प्राप्त होता है। किन्तु यदि कोई ऐसा मानकर गोमय और गोमूत्र का भक्षम करता है तो खेद है कि वह अविचारिता का लक्षण है।

गाय के गौमूत्र को शुद्ध बताया है। लेकिन इसका यह आशय नहीं कि कोई बिना विचार के ही लालच में आकर उसका सेवन करे, यह अनुचित है।

समस्त सूक्ति में उपदेश के द्वारा उचित-अनुचित का भेद बताया है। इसलिए यहाँ समस्तसूक्तव्यापी चमत्कार है।

एक और उदाहरम दृष्टव्य है -

कार्यपात्रमवताद्ययोचितं वस्तु वास्तुमुखमर्पयन् हितम्।
येन सम्यगिह मार्गभावना का गतिर्निशि हि दीपकं विना।।[1]

गृहस्थ का कर्तव्य है कि यथायोग्य मकान आदि उपयोगी वस्तुएँ देकर नौकर चाकर आदि की भी देखभाल करता रहे, जिससे जीवन निर्वाह में सुविधा बनी रहे। कारण रात्रि में दीपक के बिना निर्वाह कठिन होता है। हम उसके प्रकाश के बिना कुछ भी कार्य करने में असमथ4 रहते हैं ठीक उसी प्रकार नौकर के बिना गृहस्थ जीवन में कठिनाई होती है। अकेले कार्य करना किसी के वश में नहीं है। जो हमारे कार्य में उपयोगी हो उसको कुछ देना हमारे लिए ही हितकर है।

यह समस्त सूक्ति ही भावलावण्यमयी है।

प्रियोऽप्रियोऽथवा स्त्रीणां कश्चनापि न विद्यते।
गावस्तृणभिवारण्यऽभिसरन्ति नवं नवम्।।[2]

स्त्रियों के लिए न तो कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। वे वनों में नयी - नयी घास करने वाली गायों की तरह नवीन पुरुषों की और अभिसरण किया करती है।

जिस प्रकार से गाय को किसी एक प्रकार की घास से लगाव नहीं होता है उसे तो तृप्ति चाहिए उसी प्रकार स्त्री को भी कोई एक ही पुरुष प्रिय नहीं होता है। वह सदा नवीन पुरुषों का अभिसरण किया करती है। कवि ने गाय व स्त्री की बड़ी मनोहारी तुलना की है। अतः यहाँ समग्र सूक्ति में चमत्कार है।

इस चमत्कार की एक और बानगी देखिए -

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 2/97

2. वही, 2/147

तदधीशाज्ञयाऽऽयातः कुशलं वः पदाब्जयोः।
विसारस्ततैः किं स्थाज्जीवन जीवनं विना॥[1]

काशी नरेश अकम्पन का दूत जयकुमार की प्रसंशा करते हुए कहा है कि –

उस नगरी के स्वामी की आज्ञा से में यहाँ आया हूँ। मेरा कुशल तो आपके चरमों में है क्योंकि जल के बिना मछली का जीवन कैसे ? जिस प्रकार जल के बिना मछली का जीवन नहीं, उसी प्रकार आपके चरणों के बिना मेरा जीवन सारहीन है। मैं सर्वथा आपके ऊपर ही आश्रित हूँ।

इस श्लोक में समस्तसूक्तव्यापी चमत्कार देखने योग्य है।

आस्तदा सूललितं चलितव्यं तन्मयाऽवसरणं बहु भव्यम्।
श्री चतुष्पथक उत्कलिताय कस्यचिद् व्रजति चिन्न हिताय॥[2]

सुलोचना के स्वयंबर की बात सुनकर प्रत्येक व्यक्ति उसको पाने के लिए लालायित है। यदि ऐसी बात है तो फिर मुझे भी चलना ही चाहिए। अर्थात् में भी चलूगा। कारण यह असवर तो बहुत सुन्दर है। चौराहे पर रखे हुए रत्न को लेने के लिए किसका मन नहीं चाहता ?

सुलोचना को रत्नों की भांति सभी पाना चाहते हैं। सभी के मन में विचार है शायद स्वयंबर में हमारा भाग्योदय हो जाये। प्रत्येक व्यक्ति मूल्यवान रत्न को पाने की इच्छा रखता है।

समस्त सूक्ति में चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। एक और मनोहारी उदाहरण देखिए –

दीपस्तमोमये गेहे यावन्नोदेति भास्करः।
स्नेहेन दीप्यतां तावत् का दशा स्यात्पुनःप्रगे॥[3]

अन्धकारमय घर में रखा दीपक तेल के द्वारा तब तक चमकता रहे जब तक सूर्य का उदय न हो। किन्तु सबेरे सूर्य का उदय हो जाने पर उसकी क्या दशा होगी ?

जब घर में अन्धकार होता है तब तो (दीपक) की आवश्यकता होती है। सूर्य का प्रकाश फैलता है तो दीपक का प्रकाश नगण्य हो जाता है। सूर्य अपने प्रकाश में दीपक का प्रकाश आत्मशात कर लेता है, फिर दीपक की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 3/31 2. वही, 4/7 3. वही, 7/30

यहाँ समस्तसूक्ति ही भावलावण्य की मानो वर्षा कर रही हो।

एक और ललित उदाहरण देखने योग्य है -

हस्तावलम्बनबलेन किलोपलम्य
स्त्रागालिलिङग गलतः प्रणतं स सभ्यः।
सर्वस्वमूल्यमिति तुल्यतया निजस्य
कुर्याच्छितं लघुमयीह जनः प्रशस्यः॥[1]

इस संसार में उत्तम मनुष्य शरण में आये हुए साधारण मनुष्य को भी स्वयं अपने समान कर लेता है। ऐसा विचार कर सभी में विद्यमान भरत चक्रवर्ती ने अत्यन्त प्रिय विनम्र जयकुमार को बूमि से उठाकर छाती से लगाया। उसके पश्चात् गले से आलिङ्गन किया।

यहाँ राजा भरत की महत्ता बतायी गयी है कि उन्होंने अपने सेनापति जयकुमार को गले से आलिङ्गित करके उसे अपने समान बना लिया।

यहाँ समस्त सूक्तव्यापी चमत्कार है।

इस चमत्कार की एक और बानगी देखिए -

ननु जनो भुवि सम्पदुपार्जने प्रयततां विपदामुत वर्जने।
मिलति लाङगलिकाफलवारिवद् व्रजति यद्गजमुक्तकापित्थवत्॥[2]

पृथ्वी पर मनुष्य सम्पत्तियों का संचय करने पर और विपत्तियों का निराकरण करने में प्रयत्व भले ही करे, परन्तु शूभोदय होने पर नारियल के भीतर स्थित पानी के समान संपत्ति स्वयं मिलती है। पाप का उदय होने पर हाथी के द्वारा खाये हुये कैथा के सार के समान स्वयं चली जाती है।

जब मनुष्य का भाग्योदय होता है तो बिना प्रयत्न किये ही सम्पत्ति मिल जाती है। अगर भाग्य में नहीं लिखा है तो लाख प्रयत्न करले कि सम्पत्ति हमारे पास रहे लेकिन वह नहीं रहती। सम्पत्ति-विपत्ति का आना-जाना सब भाग्य पर निर्भर करता है।

यह श्लोक समस्तसुक्तव्यापी का सुन्दर उदाहरण है।

गणयतीतित्तणो विपदां भरं न विषयी विषयैषितया नरः।
असृहतिष्वपि दीपशिखास्वरं शलभ आनिपतत्यपसम्बरम्॥[3]

विषयी मनुष्य विषयाभिलाषी होने के कारण विपत्ति के सहन करने में

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 20/15 (उत्तरार्द्ध)

2. वही, 25/11 3. वही, 25/24

समथ4 होता हुआ विपदाओं के समूह को कुछ नहीं गिनता। उसकी उपेक्षा कर देता है। जैसे पतंग प्राणघात करने वाली दीप शिखाओं पर बिना किसी प्रतिबंध के शीघ्र ही आ पड़ता है।

विषयी मनुष्य विषय वासनाओं में इतना लिप्त हो जाता है कि उसे अपने भले - बुरे का ध्यान नहीं रहता है। जिससे उसे अपने प्राणों का संकट होता है। उसी के आगे आ जाता है। जैसे पतंग दीप शिखा के आगे ही बिना रोक-टोक के आ जाता है।

इस पूरे श्लोक में रमणीयता है। इसलिए यहाँ समस्तसूक्तव्यापी चमत्कार है।

एक अन्य मञ्जुल दृष्टान्त दृष्टव्य है -

जनता च नतां समाश्वसैः स्वमनस्यम! नेव विश्वसेः।
नटवत् तटवर्तिदृक्तया रहितो हर्षविमर्षसक्तया ॥[1]

हर्ष और विषाद को रचने वली दृष्टि से रहित हो तटस्थ वृत्ति से विनीत जनता को सदा उत्साहित करना चाहिए। परन्तु विश्वास करते समय अपने हृदय का भी विश्वास नहीं करना चाहिए। फिर अन्य मनुष्य की तो बात ही क्या है। विश्वास के विषय में नट के समान चेष्टा करनी चाहिए।

जिस प्रकार नृत्य करने वाला सबकी और देखता है दर्शक समझता है कि वह हमारी और देख रहा है, लेकिन वह वास्तव में किसी एक की और नहीं देखता है। इस प्रकार से राजा को नट के समान व्यवहार करना चाहिए। जिससे प्रजाजन समझे कि राजा मुझसे प्रसन्न है। लेकिन उसकी प्रसन्नता किसी एक की और नहीं होनी चाहिए।

तुलान्तवतद् द्वयमस्तु वस्तु प्रतिष्ठित विज्ञहृदीह वस्तुम्।
न पश्चिमाशेन विना बिभर्ति समग्रमंशं खलु यास्ति भितिः ॥[2]

जिस प्रकार तराजू के दोनों पलड़े परस्पर बद्ध होते हैं। एक पलड़े से तराजू नहीं बनती है, उसी प्रकार वस्तु भी अस्ति-नास्ति दोनों रुप होकर ही ज्ञानी मनुष्यों के हृदय में प्रतिभासित होने के लिए प्रतिष्ठित है।

जिस प्रकार जो दीवाल है वह अपने पिछले भाग के बिना पूर्णता को धारण नहीं करती, उसी प्रकार कोई भी वस्तु अपने से विरुद्ध धर्म के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं होती।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 26/24
2. वही, 26/77

जो अस्ति रुप है वह नास्ति रुप भी है। जो नित्य है वह अनित्य भी है, जो एक है वह अनेक भी है, जो तद् है वह अतद् भी है।

इस प्रकार से वस्तु का भेद और अभेद दोनों रुप से कहा जाता है।

इस सूक्ति में भावलावण्य का सद्भाव है।

एक अन्य रूचिर उदाहरण देखिए -

संक्षालनप्रोञ्छनयोः प्रवृत्तस्तनोर्जनोऽयं प्रतिभाति हृत्तः।
यतिः सदात्मेकमतिः शरीरसेवास रेवा न समेति धीरः॥[1]

यह संसारी मनुष्य हृदय से शरीर के धोने और पोंछने में संलग्न जान पड़ता है। जबकि निरन्तर एक आत्मा में लीन रहने वाले धीरवीर मुनिराज शरीर की सेवाओं में रुचि को प्राप्त नहीं होते हैं।

संसारी मनुष्य अपनी शरीर सेवा में लगा रहता है। उसे इस नश्वर शरीर से प्यार होता है। मुनिराज इस शरीर को नश्वर जानकर उसमें सेवारत नहीं रहते हैं, तथा आत्म ध्यान में ही अपना जीवन अर्पण करते हैं।

यह समस्त सूक्तव्यापी का सुन्दर दृष्टान्त है।

इतस्ततो भो परिमार्जनीवाऽविदग्धनुः सावगुणार्जिनी वाक्।
वेश्येव विज्ञस्व पुनर्मनुष्यान् सम्मोहयन्ती भृतिकामनु स्यात्॥[2]

इस संसार में अज्ञानी मनुष्य की जो वाणी है, वह इधर - उधर झाखने वाली बुहारी के समान दुर्गुणों का संग्रह करने वाली होती है, पर विवेकी मनुष्य की वाणी वेश्या के समान मनुष्यों को मोहित करती हुई प्रयोजन के अनुसार ही प्रवृत्त होती है। अर्थात् निष्प्रयोजन नहीं होती है।

जो अज्ञानी मनुष्य है वे तो गलत बातें आत्मसात करते हैं। जैसे झाड़ु से कूड़ा कचरा इकट्ठा करते हैं। वही काम अज्ञानी मनुष्य अपनी वाणी से करता है। जो ज्ञानवान् मनुष्य हैं वे निष्प्रयोजन कुछ नहीं कहते तथा उनकी बातें मूल्यवान होती है। उसी के द्वारा दूसरों को मोहित करते हैं।

यह सूक्ति भावलावण्य को प्रदर्शित करती है।

समस्तसूक्तव्यापी का मनोहारी उदाहरण -

कवितायाः कविः कर्त्ता रसिकः कोविदः पुनः।
रमणी रमणीयत्वं पतिर्जानाति नो मिता॥[3]

---

1. जयोदयमहाकाव्य 27/9
2. वही, 27/29 3. वही, 28/82

कवि कविता का रचयिता होता है, पर उसका रसानुभव विद्वान ही करता है। जैसे स्त्री के सौन्दर्य को पति जानता है पिता नहीं।

कविता के रसों का पान सहृदय जन ही करते हैं। साधारण व्यक्ति कविता के महत्व को नहीं समझ सकता है। जिस प्रकार स्त्री के सौन्दर्य को पति जानता है पिता नहीं।

यह समस्तसूक्तव्यापी का सुन्दर उदाहरण है।

काव्य में शब्दयुक्तियों से लालित्य आ जाता है। इसमें कवि अपने जीवन के अनुभवों को सार्वजनिक और सार्वलौकिक बनाकर प्रस्तुत करता है। अनुभव कवि के लोक दर्शन और व्यक्तिगत अनुभूतियों पर आधारित होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर कवि अपने काव्य में सामान्य तथ्यों से विशेष का औरक विशेष तथ्यों से सामान्य का समर्थन करता है।

किसी प्रसंग में जयोदय महाकाव्य के प्रणेता ने अपने जयोदय महाकाव्य में मनोरम सूक्तियों को निदृष्ट किया है। इन सूक्तियों को निदृष्ट किया है। इन सूक्तियों से जहाँ इस काव्य में रमणीयता आ गयी है, वहीं इनसे कवि के जीवन दर्शन पर भी प्रकाश पड़ता है। इस सदुयक्तियों की सूची इस शोध प्रबन्ध के परिशिष्ट संख्या 2 में दी गयी है, जिनके पर्यालोचन से कवि का विशाल लोकानुभव पर प्रकाश पड़ता है।

सूक्तैकदेशदृश्यः चमत्कार

सूक्तैकदेशदृश्यः चमत्कार की परिभाषा – सूक्ति के पद्य में एक अंश में रहने वाले चमत्कार को सूक्तैकदेशदृश्यः चमत्कार कहते हैं। जहाँ श्लोक के एक अंश में ही चमत्कार उत्पन्न हो जाये तथा श्लोक का भाव अपने एक अंश से ही चमत्कृत हो उठे वहाँ सूक्तैकदेशदृश्यः चमत्कार होगा।

सूक्ति के एक अंश में रहने वाला चमत्कार जयोदय महाकाव्य के इस श्लोक में द्रष्टव्य है।

आत्मने हितमुशन्ति निश्चयंव्यावहारिकमुताहितं नयम्।
विद्धि तं पुनरदः पुरस्सरं धान्यमस्ति नविना तृणोत्करम्॥[1]

यद्यपि महात्मा लोग निश्चय नय को अपना हितकर अथवा व्यवहार नय को अहितकर कहते हैं। फिर भी हे शिष्य! यह समझ लें कि निश्चय नय व्यवहार – नय पूर्वक ही होता है। क्योंकि धान्य भूसे के बिना नहीं होता। अगर मनुष्य चाहे कि वह खाली धान्य को उत्पन्न कर ले तो वह नहीं हो

1. जयोदयमहाकाव्य 2/3 (पूर्वार्ध)

सकता क्योंकि भूसे के बिना धआन्य नहीं उपजता है। उसी प्रकार निश्चय नय को करने के लिए व्यवहार नय होना जरूरी है।

इस श्लोक के चौथे पाद से श्लोकार्थ चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

किट्टिमादिपरिशोधने नलं संवेददधिपदं समुज्जवलम्।
शेमुषी श्रुतरसिन् सुराज ते स्वर्णमग्निकलितं हि राजते।।[1]

हे शास्त्र अध्ययन में रस लेने वाले भव्य पुरुष! तुम्हारी बुद्धि कीट आदि के हटाने के लिए उज्जवल अग्नि को समुचित स्वीकार करेगी। कारण अग्नि के द्वारा तपाया गया स्वर्ण ही चमकदार बनता है।

जिस प्रकार से स्वर्ण जब तक अग्नि में नहीं तपता है तब तक वह मूल्यवान नहीं होता। तपा-तपा कर ही उसको निखारा जाता है और उसकी मलिनता को दूर किया जाता है। उसी प्रकार से हे पुरुष, अपनी बुद्धि को पवित्र करने के लिए उज्जवल रुपी अग्नि में अपनी बुद्धि को परिमार्जित करो, तभी वह सारवान् होगी।

इस श्लोक के चौथे पाद से काव्य सौन्दर्य प्रवाहित हो रहा है।

इस चमत्कार की एक और बानगी देखिए -

नयवर्त्मेदं निर्णयवेदं प्राप्तुमखेदं स्पष्टनिवेदम्।
सुमतिसुधादं विगतविषादं शमितविवादं जयतु सुनादम्।।[2]

मुनिराज कहते है कि मैंने जो नीति मार्ग बतलाया है वह खेद से रहित, प्रमाणभूत ज्ञान प्राप्त करने के लिए असन्दिग्ध कथन है। सदबुद्धिरुपी सुधा को देता और विषाद को मिटाता है। यह विसंवाद को हटाता है। शोभन ध्वनियुक्त इस कथन का जय जयकार हो।

यह नीति मार्ग का सबसे उत्तम मार्ग है। इस पर चलने वाला सम्पूर्ण दु:खों से उबर जाता है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

स सर्पिणीं वीक्ष्य सहश्रुतशुरतामथेकदाऽन्येन बताहिना रताम्।
प्रतर्जयामास करस्थाकञ्तः सहेत विद्वानपदे कुतो रतम्।।[3]

उस राजा जयकुमार ने एक सर्पिणी को जिसने उसके साथ धर्मश्रवण किया था, किसी अन्य जाति के सर्प के साथ रति क्रीड़ा करते देखकर हाथ में

---

1. जयोदयमहाकाव्य 2/81
2. वही, 2/137
3. वही, 2/140

स्थित क्रीडा कमल से उसे डराया। ठीक ही है, विद्वान पुरुष अयोग्य स्थान में की जाने वाली रति-क्रीड़ा कैसे सहन कर सकता है ?

विद्वान पुरुष सदैव सत्मार्ग का ही अनुसरण करता है। उसके लिए कुत्सित मार्ग गर्हित है। वह किसी को अयोग्य कर्म करते हुए नहीं देख सकता है।

इस श्लोक के एक अंश से ही सम्पूर्ण श्लोक में चमत्कार उत्पन्न हो गया है।

एक अन्य श्लोक देखिए -

मतिं क्व कुर्यान्नरनाथपुत्री भवेदभवान्नेवमखर्वसूत्री।
इष्टे प्रेमेय प्रयतेत विद्वान विधेर्मनःसम्प्रति को नु विद्वान्॥[1]

वह सुलोचना न जाने किसे वर ले, आप ऐसी दीर्घ विचारधारा में सोच-विचार में मत पड़िये। क्योंकि विद्वान का कार्य है कि वह अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयत्न करता रहे। इसके बाद दैव का रूख क्या है ? इसे कौन जानता है।

दूत जयकुमार से कहता है कि सुलोचना आपको ही वर रुप में पसन्द करेगी क्योंकि स्त्रियाँ सौन्दर्यर्थिनी होती है। आप यंह न सोचे कि वह आपको वरण करेगी या नहीं। आप तो स्वयंबर में आने की कृपा करें क्योंकि विद्वान का कार्य है वह अपनी अभीष्ट सिद्धि पर्यन्त प्रयत्न करता रहे। विजय-पराजय पर ध्यान न दें।

श्लोक की दूसरी पंक्ति में चमत्कार है। यहाँ सूक्तेकदेशदृश्य चमत्कार है।

एक और भावपूर्ण चमत्कार देखिए -

सज्जीकृतं स्वीचकार परं परकिरं नृपः।
शोभते शोचिषां सार्थैस्तेजस्वी तपनोऽपि चेत्॥[2]

इसमें उस समय का वर्णन है जब राजा जयकुमार स्वयंबर के लिए अपने दल-बल के साथ काशी प्रस्थान करते हैं।

प्रस्थान करते समय जयकुमार ने अपने साथ उच्चकोटि के कुछ आवश्यक नौकर चाकर भी ले लिये थे क्योंकि यद्यपि सूर्य स्वयं तेजस्वी है फिर भी किरणों के बिना उसकी शोभा नहीं होती।

1. जयोदयमहाकाव्य 3/85 2. वही, 3/102

कवि ने जयकुमार व सूर्य की किरणों व नौकर की बहुत ही मनौहारी तुलना की है।

जिस प्रकार से किरणों के बिना सूर्य की तेजस्विता कम हो जाती है उसी प्रकार अगर राजा के साथ उसका सेना दल न हो तो उसकी शोभा भी अल्प हो जाती है। सेना से राजा का महत्व बढ़ जाता है। इसमें सूमतेकदेशदृश्य चमत्कार है।

दत्तमस्त्यपि निमन्त्रणपत्रमत्र चन च भवान् गिरमत्र।
दुग्धतो हि नवनीतमुदेति गौस्तृणानि हि समादरणेऽति॥[1]

दुमति काशी नरेश से कहता है कि हे राजन् आप आग्रह तो करते हैं किन्तु क्या आपने हमें निमंत्रण पत्र भी दिया था जिससे आप ऐसा कहने के अधिकारी हो ? सोचिये तो सही कि मक्खन गाय के दूध से निकलता है और बिना आदर के गाय भी घास नहीं खाती।

मक्खन जैसी मूल्यवान वस्तु साधारण गाय के दूध से बनता है। गाय इतनी उपयोगी है। इसलिए हमें उसका आदर करना चाहिए। गाय को भी अगर आदर से घास नहीं खिलाते है तो वह घास नहीं खाती है।

हम तो राजा ठहरे ैर आपने हमारे राजा अर्ककीर्ति को निमंत्रण भी नहीं दिया।

श्लोक की दूसरी पंक्ति से काव्य सौन्दर्य विगलित एक और मनोहारी उदाहरण देखिए -

राजकीयसदन मतिभद्भयः प्राह सत्तनृपिताऽथभवद् भयः।
संविहाय हृदयं न गुणभ्यः स्थानमन्यदुचितं खलु तेभ्यः॥[2]

सुलोचना के पिता ने उन बुद्धिमानों के निवासर्थ अपना राजभवन ही बता दिया। ठीक ही है, क्षमादि गुणों के लिए हृदय को छोड़ दूसरा कौन सा स्थान उचित हो सकता है ?

काशी नरेश ने अर्ककीर्ति को अपने राजभवन में ठहराया क्योंकि उनसे जो भूल हो गयी थी उसका प्रायश्चित करने का अच्छा अवसर था। इससे उनके हृदय में काशी नरेश के प्रति दया भाव उत्पन्न हो गया।

इस श्लोक की सूक्ति के एक अंश से समूचे पद्य में चमत्कार उत्पन्न हो रहा है।

---

1. जयोदयमहाकाव्यम 4/21
2. जयोदयमाहाकव्य, 4/26

एक अन्य उदाहरण देखिये -

तत्करोमि किल सा सहजेना रीपयेद्विमुगले तदनेनाः।
चिन्तयेत पुरुमित्याभिराध्यं धीमतामपि धिया किमसाध्यम्॥[1]

दुमर्ति कहता है कि आप लोग भगवान् पुरुदेव को याद करें। में वह उपाय करुंगा कि सुलोचना स्वयं ही स्वामी के गले में वरमाला डाल दे, ठीक ही है बुद्धिमान् के लिए कौन सा कार्य कठिन है।

बुद्धिमान पुरुष सभी असंभव कार्य में चतुर होता है। उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं है। वह हर कार्य सरलता से कर सकता है।

इस श्लोक के चतुर्थ पाद से चमत्कार उत्पन्न हो रहा है। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

ईदृशे युवगणेऽथ विदग्धे का क्षती रतिपतावपि दग्धे।
नानूवर्तिनि रवो प्रतियाते दीपके मतिरूदेति विभाते॥[2]

यदि कहा जाय कि कामदेव तो कभी का जल गया तो जहाँ इस प्रकार के सुन्दर राजा लौग विद्यमान है, वहाँ कामदेव की आवश्यकता की क्या है ? जैसे प्रातः काल के समय सूर्य के उदित होने पर दीपक को कौन याद करता है।

अन्धकार में भी दीपक की आवश्यकता होती है। उसी समय उसकी उपयोगिता पता चलती है। प्रातः काल सूर्य के उदित होने पर वह नगण्य हो जाता है। उसी प्रकार सौन्दर्यवान राजा के होते हुए कामदेव को कोई नहीं याद कर रहा है। वैसे सौन्दर्य का देवता कामदेव को ही मानते हैं।

इस श्लोक की दूसरी पंक्ति में चमत्कार है।

इस चमत्कार की एक और बानगी देखिए -

चकृषुर्जगत्प्रदीपात्तश्च तामुदयिनी सुवंशासाः।
भानोरिव सोमकलां कुमुद्वतीकन्दसुकृताशाः॥[3]

उदय को प्राप्त होने वाली इस सुलोचना को वे शिविकावाहक लोग जगत के प्रदीप रुप उस राजा के पास से खींच कर ले गये जैसे कुमुद्वती के पुण्यांश चन्द्रमा की कला को सूर्य से खींच लेते हैं।

स्वयंबर में शिविकावाहक सुलोचना को एक राजा से दूसरे राजा के

---

1. जयोदयमहाकाव्य 4/33
2. वही, 5/25 3. वही, 6/56

पास उसी प्रकार ले जाते हैं जिस प्रकार कुमुद्वती के पुण्यांश चन्द्रमा की कला को सूर्य से खींच लेते हैं। क्योंकि चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुद खिलते हैं।

इस श्लोक की दूसारी पंक्ति में चमत्कार विगलित हो रहा है।

एक अन्य उदाहरण देखिये -

निभृते गुणेरमुष्मिन् नाबनअधमवाप सापगुणदस्युः।
किमु देवे विपरीते परुषाण्यपि पौरुषाणि स्युः॥[1]

दुर्गुणों का हरण करने वाली, गुणों की भण्डार इस सुन्दरी ने इस राजा से भी प्रेम नहीं किया अर्थात् इसको वर रुप में चयन नहीं किया, जब देव विपरीत हो जाता है तो क्या पुरुषार्थ भी कठोर अर्थात् व्यर्थ हो जाते हैं।

मालवदेश के राजा इतने गुण सम्पन्न थे कि सुलोचना ने उनका वरण नहीं किया, वह राजा सोचता है कि जब देव विपरीत हो जाता है तो क्या पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम) भी कठोर अर्थात् व्यर्थ हो जाते हैं।

यहाँ तृतीय और चतुर्थ चरण में मनोरम लालित्य का दर्शन होता है। अतः यहाँ सूक्तैकदेशदृश्यः चमत्कार का मंजुल सन्निवेश है।

एक और उदाहरण दृष्टव्य है -

अहो मायाविनां सा या मायातु सुखतः स्फुटम्।
निजाहङकारतो व्याजोऽकम्पनेनायमूर्जितः॥[2]

अकम्पन ने अपने अहंकार में आकर यह छल किया है। बड़े आश्चर्य की बात है कि मायावियों की माया सरलता से साधारण लोगों की समझ में नहीं आती।

मायावी लोग अपनी माया का जाल इस तरह फैलाते है कि साधारण मनुष्य उनकी चतुरता को नहीं जन पाते हैं। जिस प्रकार अकम्पंन की माया को कोई नहीं पहचान पाया है।

प्रथम पंक्ति में काव्य-सौन्दर्य रुपी चमत्कार प्रगट हो रहा है।

एक और मनोहारी उदाहरम देखिये -

अन्यथाऽनुपपत्त्थाऽहं गतवांस्त्वदनुज्ञया।
स्वातन्त्रयेण हि को रत्नं त्यक्त्वा काचं समेष्यति॥[3]

आप की दया से मैंने यह बात अर्थापत्ति प्रमाण द्वारा ताड़ ली। कारण

1. जयोदयमहाकाव्य 6/97

2. वही, 7/4 3. वही, 7/15

कौन ऐसा होगा ? जो स्वतन्त्रतापूर्वक रत्न छोड़कर काँच ग्रहम करेगा, सभी चाहे वह उसके योग्य हो या न हो सभी रत्न की अभिलाषा करते हैं।

इस सूक्ति के एक अंश से चमत्कार उत्पन्न हो रहा है। अतः यहाँ सूक्तेकदेशदृश्य चमत्कार है।

एक और ललित उदाहरण देखिये -

सद्योऽपि कृतविद्योऽहमुद्योगेन जयश्रियम्।
मालाञ्चोपैमि बाहां हि नीतिविद्योऽभिनन्दति।।[1]

अर्ककीर्ति कहता है कि मैं सब तरह से कुशल हूँ। अतः शीघ्र ही अपने उद्योग से विजय लक्ष्मी और वरमाला दोनों को प्राप्त कर लूंगा। क्योंकि नीतिमान् व्यक्ति अपनी भुजाओं का भरोसा करता है।

अर्ककीर्ति सुलोचना को पाने की इच्छा से सोचता है कि वह अरने बल से सुलोचना को प्राप्त कर लेगा क्योंकि कीर्तिमान् मनुष्य अपनी भुजाओं के बल से सब समर्थ होता है। उसके लिए कुछ भी असम्भ नहीं होता है क्योंकि वह बलवान् है।

इस श्लोक के दूसरे चरण में काव्य-सौन्दर्य प्रवाहित हो रहा है।

एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है -

साधारण धराधीशात्र जित्वाऽपि स जयः कुतः।
द्विपेन्द्रो नु मृगेन्द्रस्य सुतेन तुलनामियात्।।[2]

यह जयकुमार साधारण राजाओं को जीतकर भी क्या वास्तव में पूर्ण विजयी कहा जा सकता है ? हाथी यद्यपि औरों से बड़ा है फिर भी क्या वह सिंह के बच्चे की बराबरी कर सकता है।

हाथी यद्यपि कलेवर की दृष्टि से अन्य पशुओं से बड़ा है। लेकिन वह सिंह के बच्चे से छोटा ही है औरों से युद्ध में वह जीत सकता है लेकिन वह छोटे से सिंह शावक से हार जाता है। उसी प्रकार अर्ककीर्ति अपने को सिंह का बच्चा तथा जयकुमार को हाथी मानता है।

क्या ही सुन्दर अभिव्यक्ति है ? एक रमणीय दृष्टान्त द्वारा उपर्युक्त श्लोक में सौन्दर्याधान पारित किया गया है। एक अन्य उदाहरण देखिए-

---

1. जयोदयमहाकाव्य 7/31
2. वही, 7/49

नीतिरेव हि बलादबलीयसी विक्रमोऽलुलनपखस्य को वशिन।
केसरी करिपरीतिकद्रयाद्धन्यते स शबरेण हेलया॥[1]

जयकुमार अकम्पन से कहते हैं कि आप शायद यह सोचते हो कि मेरे पास सेनाबल नहीं है किन्तु आपको यह याद रखना चाहिए कि बल की अपेक्षा नीति ही बलवान होती है। देखिये-हाथियों की घटा को नष्ट करने वाला सिंह भी नीति के बलपर अष्टापद द्वारा बात की बात में मार डाला जाता है।

जयकुमार कहते हैं कि नीति ही बलवान् होती है। अगर कोई मनुष्य अपनी बुद्धिमता से कार्य करे तो वह अपने शत्रु को आसानी से पराजित कर सकता है। अगर उसके पास बल है नीति नहीं है तो वह मनुष्य पराजित हो जायेगा।

सूक्ति के प्रथम पाद से चमत्कार उत्पन्न हो रहा है। एक अन्य श्लोक दृष्टव्य है -

परेण विद्याबलयोः स्वपक्षमपूज्जयः संतुलयन् विलक्षः।
स्थानं चकम्पेऽहिचरस्य तावद्भव्यस्य दैवं लभते प्रभावः॥[2]

जयकुमार ने विपक्ष के साथ विद्या और बल दोनों में ही तुलना करते हुए अपने पक्ष को निर्बल पाया तो कुछ उदास हो गया। उसी समय नागचर देव का आसन काँप उठा और वह दौड़ा हुआ आ पहुँचा। सच है कि भव्य पुरुष का प्रभाव अनायास ही भाग्य को अनकूल कर लेता है।

अच्छे पुरुष के कर्म अपने कर्मों की वजह से भाग्य को अनपे अनुकूल बना लेते हैं। उनके कर्मो का प्रभाव ही उनके भाग्य को बदल देता है।

सूक्ति के एक अंश में चमत्कार दृष्टव्य है।

एक और ललित उदाहरण देखने योग्य है -

सूरः समागत्यतमां स भद्रं सनागपाशं शरमर्धचन्द्रम्।
ददौ यतश्चावसरेऽङगवत्ता निगद्यते सा सहकारिसत्ता॥[3]

उस देव ने जयकुमार को एक तो नागपाश दिया और दूसरा अर्धचन्द्र नामक बाण दिया। ठीक ही है मौके पर हाथ बटाना ही सहकारीपन कहा जाता है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 7/78
2. वही, 8/76 3. वही, 8/77

जब मनुष्य दुःखी हो अथवा किसी व्सुत की आवश्यकता हो तो तब उसकी सहायता की जाये तो सहकारीपन कहा जाता है। विपत्ति में साथ देना ही महानता है। सुख में सभी साथ देते हैं। दुःख मं महान् लोग ही सहायता करते हैं।

सुक्ति की दूसरी पंक्ति में चमत्कार है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

हृदि तमोपगमात् प्रतिभाऽविशगित तदालपितेन जयद्विषः।
यादिव कोकरुपतेन दिनश्रियः समुदयः कृतनक्तलयक्रियः॥[1]

अकम्पन के कहने पर जयकुमार के विरोधी अर्ककीर्ति का रोष दूर हो गया। उसके मन में स्फूर्ति आ गयी। जैसे चकवे के विलाप से रात्रि चली जाती है और दिनश्री का समुदय हो जाता है।

जिस प्रकार रात्रि में चकवे का अपनी प्रिया से वियोग होता है तो वह विलाप करता है। विलाप करते-करते दिन श्री का उदय हो जाता है और वह प्रिया का संसर्द प्राप्त कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार अर्ककीर्ति के मन में भी दिन श्री का उदय हो गया और वह सारा मन का मैल दूर करके प्रसन्नचित्त हो गया।

उपर्युक्त श्लोक के उत्तरार्धगत मंजुल दृष्टान्त के द्वारा सुन्दरभाव का उपस्थापन किया गया है।

एक और उदाहरण देखिए -

शुचिरिहास्मदधीड् धरणीधर सति पुनस्त्वयि कोऽयमुद्रवः।
तपति भूमितले तपने तमः परिहतो किमु दीपपरिश्रमः॥[2]

दूत ने कहा है चक्रवर्तिन! इस लोक में हमारे पवित्र महाराज परम विवेकशील स्वस्थ एवं प्राजपालन कार्य में तत्पर है। ऐसे आपके रहते हमें कोई उपद्रव, कोई कष्ट क्या हो सकता है ? पृथ्वी पर सूर्य के अपने पूर्ण तेज से तपते रहते अन्धकार मिटाने के लिए क्या दीपक को थोड़े ही श्रम करना पड़ता है।

सूर्य अपने आप को तपाते हुए सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है। दीपक को कुछ भी नहीं करना पड़ता है। उसी प्रकार आपके होते हुए हमें कैसा कष्ट।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 9/20

2. वही, 9/73

कवि ने सूर्य व राजा को दीपक व प्रजा की बड़ी सुन्दर तुलना की है। पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश फैलने पर अन्धकार की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। सच है, एक महान राजा के प्रजा का पालन करते समय अन्यों को उस कार्य के लिए कष्ट नहीं करना पड़ता। दूत के इस भावभरित कथन में रमणीयता विद्यमान है जिससे चमत्कार आ गया है। सूक्ति की दूसरी पंक्ति में काव्य सौन्दर्य विगलित हो रहा है।

सुजना नु मनाक् समर्थनं च रवये दीप इवात्र नार्थमञ्चत्।
उररीक्रियते न किं पिकाय कलिकामस्य शुचिस्तु सम्प्रदायः ॥[1]

हम आपकी बात का थोड़ा सा भी समर्थन क्या करें ? क्योंकि वह तो रवि को दीपक के समान कोई भी प्रयोजन रखने वाला नहीं है। जिस प्रकार आम की मंजरी कोयल के लिए भी अंगीकार की जाती है उसी प्रकार यह सुलोचना जयकुमार के लिए ही मान्य है। यह निर्दोष सम्प्रदाय सदा से ही चला आया है।

सुन्दर भाव की संयोजना है। यहां पर भी इस श्लोक के एक अंश में चमत्कार है।

सुचतैकदेशदृश्य चमत्कार

कुसुमेषोः शरजर्जीरितापि या जनता स्ययमितस्तयापि।
स्फुटं कुसुमसंधारणरीतिर्विषमगदं विषस्य भवतीति ॥[2]

काम के बाणों के जर्जरित होने पर भी जनता ने उस समय स्पष्ट रुप से काम के बांणों को धारण करने की रीति अपनाई थी। ठीक ही है क्योंकि विष की औषधि विष ही होती है।

सभी स्त्री पुरुषों को काम ने अपने बांणों से जर्जरित कर दिया। सभी लोगों पर काम प्रभाव हो गया, सभी प्रसन्नचित्त होकर काम क्रीड़ा करने लगे। यह सर्वसम्मत है कि विष ही विष का नाश करता है।

चतुर्थ पाद में सूक्तैकदेशदृश्य चमत्कार है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

वाग्मिता हि येषा रूचिहेतुः सम्विदिता मनस्विनिवहे तु।
यदत्र तृष्णी नृपुरैः स्थितं जडप्रसडगेमौनं हि हितम् ॥[3]

---

1. जयोदयमहाकाव्य 12/31
2. वही, 14/39 3. वही, 14/77

विचारवान मनुष्यों के समूह में थोड़ा बोलना रुचिकर होता है। यह सोचकर स्त्रियों के नूपुर उस समय चुप हो गये थे क्योंकि मूर्खों के प्रसङग में मौन रह जाना ही हितकर होता है।

जब विद्वानों के समक्ष थोड़ा बोलना अच्छा है तब जलों-जड़ो के समक्ष तो बिल्कुल नहीं ही श्रेष्ठ होगा। यह विचार कर नूपुर की रुनझुन बंद हो गयी थी।

कवि ने बड़ी ही सुन्दर कल्पना की है। सूक्ति के चतुर्थपाद से काव्य सौन्दर्य विगलित हो रहा है।

एक अन्य निदर्शन अवलोकनीय है -

यथोदयेऽहयस्तनमयेऽपि रक्तः श्रीमान् विवस्वन्विभ कमक्तः।
विपत्सु सम्पत्स्वीप तुल्यतेवमहो तटस्था महतां सदैव॥[1]

श्रीमान् तथा ऐश्वर्य का एक भक्त अथवा पक्षियों के सद्भाव का प्रमुख भक्त सूर्य जिस प्रकार उदय काल में लाल होता है उसी प्रकार अस्त काल में भी लाल रहता है। बड़ा आश्चर्य है कि महापुरुषों की प्रवृत्ति संपत्ति और विपत्ति में सदा एक समान रहती है। महापुरुष न सम्पत्ति में अनुरक्त होते हैं और न विपत्ति में उद्विग्न।

महापुरुषों व सूर्य की कवि ने बड़ी अनुपम तुलना की है।

सूक्ति की दूसरी पंक्ति में चमत्कार दृष्टव्य है।

एक अन्य श्लोक देखिए -

लयं तु भर्त्रैय समं समेति दिनं दिनेशेन महीयसेति।
कृतज्ञतां ते खलु निर्वहन्ति तमामसुभ्योऽप्यमलास्तु सन्ति॥[2]

दिन, अपने पूज्य एवं स्वामी सूर्य के साथ ही नष्ट हो जाता है। ठीक ही है क्योंकि जो शुद्ध स्वभाव वाले होते हैं वे प्राणों से भी अर्थात् प्राणों को देकर भी कृतज्ञता का अत्यन्त निर्वाह करते हैं।

जिस प्रकार से दिन सूर्य का साथ निभाता है जो सदाचारी मनुष्य हैं वह अपने प्राणों की चिन्ता नहीं करते। वह प्राणों की बाजी लगाकर कृतज्ञता का निर्वाह करते हैं।

दूसरी पंक्ति में सूक्तैकदेशदृश्य चमत्कार उत्पन्न हो रहा है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 15/2

2. वही, 15/3

एक और उदाहरण दृष्टव्य है -

जगाम मैरेयभृते त्वमत्र आघ्रातुमात्तप्रतिमेऽरिलव।
वध्वा स वध्वानयनेऽब्जबुद्धिं स्या ल्लोलुपानां तु कुतः प्रबुद्धिः॥[1]

मदिरा से भरे पात्र में स्त्री के नेत्र का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। उसे कमल समझ कर भ्रमर सूंघने के लिये गया, क्योंकि लोभी जीवों को विवेक कहाँ होता है।

लोभी मनुष्य इतना मदमस्त हो जाता है कि उसे अच्छे बुरे का पता ही नहीं चलता है। भैरें हमेशा कमल पर ही मड़राते रहते हैं। स्त्री का नेत्र कमल के समान प्रतीत हो रहा था। लोभी मनुष्य लोभ में आकर अपना विवेक खो बैठते हैं।

चतुर्थ पाद से चमत्कार विगलित हो रहा है।

इस चमत्कार की एक और बानगी देखिए -

जगतां जीवनेनापि किमित्यत्र नवारिता।
समश्च विषमः सूक्तिरित्येषास्ति न वारिता॥[2]

जो जल जगत् के समस्त जीवों का जीवन है। उसने यहाँ नवीन शत्रुता किस कारण प्राप्त कर ली। सत्पुरुषों की जो वाणी है कि कभी मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

जिस प्रकार जल सबके प्राणों की रक्षा करता है और यही जल आज जयकुमार के लिए मृत्यु का कारण बन रहा है। जैसे की कभी मित्र भी कारणवश शत्रु हो जाते हैं।

इस श्लोक की सूक्ति के एक अंश में चमत्कार है।

एक और उदाहरण देखिए -

हृदयस्थितकामपावक कलयन्नञ्चलकैः किलावृतम्।
वनिताजन एकतस्तरां तनुते वाततर्ति स्म साम्प्रतम्॥[3]

एक और स्थित स्त्री समूह हृदय में स्थित कामाग्नि को उत्तरीय वस्त्र के अंचल से सुगुप्त जानता हुआ इस समय अत्यधिक हवा कर रहा था। स्त्रियाँ भोलेपन से यह नहीं समझ सकी कि हवा करने से छिपी अग्नि प्रज्वलित ही होगी, न कि शान्त।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 16/48
2. वही, 20/52 3. वही, 21/70

स्त्रियाँ कामाग्नि से पीड़ित थी, जिस प्रकार अगर दबी हुयी अग्नि को हवा करेंगे तो वह प्रज्वलित हो जाती है। स्त्रियाँ अपनी कामदशा को बताना नहीं चाहती थी। इसलिए वह नासमझ स्त्रियाँ अपनी कामदशा को कम करने की जगह और अधिक कामाग्नि से पीड़ित हो गयी।

अभूत सभाया मनसोऽतिकम्पकृत्तदत्र कष्टेऽप्यतिकष्टमिष्टहृत्।
यथैव कुष्ठे खलु पामयाऽजनि अहो दुरन्ता भवसंभवा वनिः ।।[1]

अभीष्ट का हरण करने वाला यह प्रकाश प्रजाजन के मन को कम्पित करता हुआ कष्ट में भारी कष्ट के समान हुआ। ऐसा लगा जैसे कोढ़ में खाज हो गई हो। वास्तव में जन्म से सहित यह पृथ्वी दुःरुप परिणाम से सहित है। जिसका जन्म होता है उसका वियोग भी होता है।

यह पृथ्वी दुःखों से भरी हुयी है। इस पृथ्वी पर दुःख सुख दोनों ही हैं। यह पृथ्वी दुरन्त है।

चतुर्थ पाद से चमत्कार उत्पन्न हो रहा है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

तदेकसन्देशमुपाहरत् परमुपेत्य बोधोऽवधिनामकश्चरः।
अहो जगत्यां सुकृतैकसन्ततेरभीष्टसिद्धिःस्वयमेव जायते।।[2]

राजा जयकुमार ऐसा विचार कर ही रहे थे कि अवधि ज्ञान रुपी दूत ने आकर उनकी आकांक्षा को अच्छी तरह पूर्ण कर दिया सो ठीक ही है क्योंकि पृथ्वी पर पुण्य की अद्वितीय परम्परा से वांछित अर्थ की सिद्धि स्वमेव हो जाती है।

पृथ्वी पर पुण्य का फल अपने आप मिल जाता हैं। अपने संचित कर्मों के द्वारा मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है। वह जैसे कर्म करता है वैसे ही फल भोगता है।

दूसरी पंक्ति से काव्य सौन्दर्य रुपी चमत्कार विगलित हो रहा है।

एक और ललित उदाहरण देखने योग्य है -

अतानि तेनावधिना स संक्रमस्त्वनन्य एवाथ यतोऽव्रजदभ्रमः।
यथाङकुरोत्पादनकृद् घनागमः फलत्यहो किन्तु शरत्समागमः।।[3]

उस अवधि - ज्ञान ने वह शक्ति प्रकट की कि जिससे सब भ्रम दूर हो

1. जयोदयमहाकाव्य 23/19
2. वही, 23/35 3. वही, 23/36

गया। जैसे वर्षा ऋतु अंकुर उत्पन्न करती है, परन्तु फल देता है शरद ऋतु का आगमन।

जब बीज बोते हैं, बीज में अंकुर तब उत्पन्न होता है जब वर्षा का जल उसमें पड़ता है और वह बीज शरद ऋतु में पक कर फल बनता है। शरद ऋतु का आगमन हमें फल प्रदान करता है। उसी प्रकार अपने पिछले जन्म के कर्मो का फल इस जन्म में मिलता है।

सूक्ति की दूसरी पंक्ति में चमत्कार है -

एक और उदाहरण देखिए -

एतादृगिद्धविभवेऽपि भवेऽध्रुवत्व
मत्वाऽऽपतुर्न च मनाङ् मनसा ममत्वम्।
धर्मे दृढावत सुतत्वमवाप्य सत्त्वं
स्थाने मनः प्रणयनं हि भवेन्महत्तवम्॥[1]

इस प्रकार प्रसिद्ध वैभवशाली भव राजपर्याय में भी अनित्यता मान कर वे दोनों कुछ भी ममत्व भाव को प्राप्त नहीं हुए। किन्तु वास्तविक तत्व सम्यग्दर्शन प्राप्त कर धर्म में दृढ़ हो गये। यही ठीक है, क्योंकि समुचित स्थान में मन का जाना ही महत्तपूर्ण होता है।

धर्म में प्रवृत्त होना ही महानता है। हमें उसी का अनुसरण करना चाहिए।

चतुर्थ पाद में सूक्ति गत चमत्कार है।

एक अन्य उदाहरण देखिए -

त्वदीपादाम्बुजराजभायां भुवां भवन्तीह महः समाजाः।
सुमानि सम्प्राप्य सुगन्धिमन्ति सौगन्ध्यमारान्नृशयं नयन्ति॥[2]

हे भगवान्! आपके चरणरूपी श्रेष्ठ कमलों की सेवा करने वाली पृथ्वी के इस लोक में बहुत भारी उत्सवों के समूह उद्भूत होते हैं। यह ठीक है, क्योंकि सुगन्धि युक्त पुष्प अपने संपर्क से मनुष्य के हाथ को सुगन्धि प्राप्त करा ही देते हैं।

जिनेन्द्र भगवान् के चरणों के स्पर्श से यह पृथ्वी पवित्र हो गयी है। जिस प्रकार से पुष्प अपनी सुगन्धि को मनुष्य के हाथ में संक्रान्त कर देता है। उसी प्रकार जिनेन्द्र देव के प्रभाव से उत्सव हो रहे हैं।

1. जयोदयमहाकाव्य 23/84 2. वही, 24/95

यहाँ उत्तरार्द्धगत भाव ललित है। इससे समूचे पद्य में सौन्दर्य आ गया है।

एक और उदाहरण दृष्टव्य है -

विषयमस्तमतिः प्रति मुह्यति नहि बिपन्न इतो पि विमु चति।
मुहरहो स्वदिते ज्वलिताधरः स्विदभिलाषमपरो मरिचीं नरः ॥[1]

निबुद्धि मनुष्य विषय से विपत्ति में पड़ता हुआ भी उसके प्रति मोह करता है। उसे छोड़ता नहीं। जैसे चटपटा खाने का अभिलाषी मनुष्य ओठ के जलते रहने पर भी बार-बार मिर्च का स्वाद लेता है।

यह मनुष्य विषय वासनाओं में इतना लिप्त है कि वह उसके कारण विपत्ति में पड़ता है। लेकिन फिर भी वह उससे विरक्त नहीं होता है। जैसे मनुष्य होठ के जलते रहने पर भी मिर्च को बार-बार खाता रहता है।

सूक्ति की दूसरी पंक्ति में चमत्कार है।

शुद्धात्मसवित्तिरिहाभिरामा तवाथ में रागरुषोः सदा मा।
नामासकौ सम्प्रति वाक्प्रवृत्तिरेकस्य लब्धिनं युगस्य दत्तिः ॥[2]

राजा जयकुमार जिनेन्द्र भगवान् का कीर्तिगान करता हुआ कहता है -

हे प्रभो! आपके दो कल्याण की आधारभूत एक शुद्धात्मा की ही अनुभूति है, परन्तु मेरे रागद्वेष की अन्धकारपूर्ण अमावस्या है न मुखे एक शुद्धात्मा की अनुभूति हो सकती है और न रागद्वेष का देना देना हो सकता है। इसलिए लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि लेना एक न देना दो।

चतुर्थ पाद से काव्य सौन्दर्य उत्पन्न हो रहा है।

एक ौर मनोहारी उदाहरण देखिए -

निरीहमाराध्य सुसिद्धसाध्यस्तवामस्तु भक्तो विगुणं विराध्य।
चिन्तामणिं प्राप्य नरः कृतार्थःकिमेष न स्याद्विदिताखिलार्थ ॥[3]

हे समस्त पदार्थों के ज्ञाता जिनेन्द्र! भक्तजन अन्य गुणहीन देवों को छोड़कर इच्छारहित आपकी आराधना कर अपना मनोरथ सिद्ध कर लेते हैं। सो ठीक ही है, क्योंकि चिन्तामणि रत्न को प्राप्त कर क्या मनुष्य कृतार्थ नहीं होता है ? अर्थात् अवश्य होता है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य 25/23
2. वही, 24/88
3. वही, 24/94

चिन्तामणि रत्न को प्राप्त कर मनुष्य कृकृत्य हो जाता है। उसको सबसे अमूल्य वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। उसी प्रकार है जिनेन्द्र भगवान् आपकी पूजा करके भक्त जन सब कुछ पा लेते हैं। वे अपने सभी मनोरथों को पूरा कर लेते हैं।

उत्तरार्द्ध में चमत्कार विगलित हो रहा है।

एक और उदाहरण देखिए -

पादुकेवसति कण्टकाततेऽप्यस्ति चिज्जगति गुप्तये यतेः।
अङ्गिनः स्वतलसादभासिनी दीपिकेव जगते प्रकाशिनी॥[1]

जगत् के कण्टकों से व्यपात रहते हे मुनि की वृत्ति पादुका के समान रक्षा के लिए है। जिस प्रकार कण्टकाकीर्ण भूमि पर चलते समय पादुका रक्षा करती है, उसी प्रकार मुनि की बुद्धि रागरङ्ग से भरे हुए जगत् में उनकी रक्षा करती है और संसारी मनुष्य की बुद्धि दीपक के समान यद्यपि जगत् के लिए प्रकाशित करती है, परन्तु अपने आपको प्रकाशित नहीं करती। दिया तले अंधेरा इस उक्ति को सत्य करती है।

संसारी मनुष्य की बुद्धि की दीपक से तुलना बड़ी ही मनोहारी है।

दूसरी पंक्ति में चमत्कार उत्पन्न हो रहा है।

कवि अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अपने वाक् वैदग्ध से पद के किसी एक देश में सूक्तियों की संयोजना करके उसमें अद्भुत रमणीयता का निदर्शन कर देता है। यह तथ्य इस महाकाव्य के अनेक श्लोकों में प्राप्त सूक्तैदेशदृश्य चमत्कार से प्रमाणित होता है।

------

1. जयोदयमहाकाव्य 27/62

पञ्चम अध्याय

शब्दगत, अर्थगत, और शब्दार्थगत चमत्कार तथा जयोदय

शब्दगत् चमत्कार की परिभाषा - जयोदय महाकाव्य में शब्दगत चमत्कार का बहुत प्रयोग मिलता है। शब्दगत चमत्कार वहाँ होता है जहाँ शब्दों में चमत्कृति हो तथा वह अपने शब्दों से लावण्य उत्पन्न करें, और जहाँ शब्दों में चारुता हो वहाँ शब्दगत चमत्कार होता है। शब्दों का समूह ही इसमें चमत्कार उत्पन्न करता है तथा वह ही प्रभावपूर्ण होता है।

आचार्य ज्ञान सागर जी ने **जयोदय महाकाव्य** में शब्दगत चमत्कार के माध्यम से काव्य में जान डाल दी है। जिससे उनका काव्य सशक्त बन पड़ा है।

शब्दगत् का सुन्दर उदाहरण देखिए -

यशो विशिष्टं पयसोऽपि शिष्टं बिभर्ति वर्णौघमहो कनिष्टम्।

तरां धराङ्के तव नामकामगवी च विद्वद्वर संवदामः॥[1]

काशी नरेश अकम्पन का दूत जयकुमार को स्वयंबर के लिए आमंत्रित करने के लिए आता है। जब जयकुमार उससे उसका परिचय पूछते हैं कि हे विद्वद्वर! हम आपसे पूछना चाहते हैं कि आपको नामरुपी कामधेनु इस धरातल पर कौन से आश्चर्य जनक अभीष्ट वर्ण समूह को धारण करती है, जो यथोविशिष्ट अर्थात् प्रख्यात तथा दूध से भी स्वादिष्ट है अर्थात् आपका सुन्दर नाम क्या है ?

कवि की वचनभङ्गी उक्त श्लोक से स्पष्ट शब्दों की वारुता अवलोकनीय है।

सुकृतेपयोराशेराशेव सुरता तया।
पदमो पि चेज्जितः पदभयां पल्लवे पत्रता कुतः॥[1]

काशी नरेश का दूत जयकुमार से सुलोचना के रुप सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि -

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/23

राजन् वह बाला सुलोचना रसपूर्ण है इसलिए वह पुण्यरुप समुद्र की बेला की तरह सुन्दर है। उसने अपने चरणों से कमलों को जीत लिया। तब पल्लव में पात्रता कहाँ हो सकती है ?

उसके पैरों की शबोभा इतनी अनुपम है कि उसने कमलों को भी जीत लिया है। पल्लव तो पैरों के अंशमात्र होने से उनमें पैरों की बराबरी करने की बात सम्भव ही कहाँ ?

कवि ने श्लेष व अनुप्रास की अनुपम छटा से शब्दों में रञ्जकता ला दी है। इसलिए यहाँ शब्दगत चमत्कार है। शब्दगत की और बानगी–

सातिसडकटतया नररांजां लङ्घनाशयविलम्बनभाजाम्।
सन्ददो विचलदञ्चलपाकाऽऽहवाननं तु नृपसोधपताका॥[1]

काशी नरेश ने अपनी पुत्र सुलोचना के लिए स्वयंबर का आयोजन किया। उसमें जगत् के सभी स्वयंबर के लिए काशी आ गये, ऐसा लगता था कि कोई राजा शेष नहीं रहा है।

उस समय मार्ग खचाखच भर गया था। अतः चलने की इच्छा रखकर भी आगे चल न पाने वाले राजाओं को राजमहल पर लगी पताका अपने अंचल से बला रही थी कि शीघ्र आओ।

सुलोचना को पाने की इच्छा से सभी राजाओं को स्वयंबर में जाने की शीघ्रता थी। कवि ने शब्दों के माध्यम से बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है।

एक और उदाहरण –

वयोभियुक्तेयमहो नवा लता कराधराङ्घ्रिष्वधुना प्रवालता।
उरोजयोः कुड्मलकल्पकालता रदेषु मुक्ताफलताऽथ वागता॥[2]

जब सुलोचना स्वयंबर मण्डप में आती है तो राजाओं के मन में सुलोचना के प्रति अनेक विचार उत्पन्न होते हैं –

यह सुलोचना नवीन लता है और बाल्यावस्था से रहित है, अतः यविावस्थारुपी पक्षी से युक्त है। इसके हाथ, होठ और चरमों में प्रवालता है, अर्थात् मूंगे की कान्ति के होकर कोपलों की याद दिलाते हैं। दोनों स्तन कुडमल सरीखे हैं और दाँत मुक्त फल अर्थात् मोती सरीखे चमकते हैं।

कवि ने विशिष्ट शब्दमैत्री के माध्यम से सुलोचना के शारीरिक सौन्दर्य

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/44
2. वही, 5/15 3. वही, 5/88

का वर्णन किया है। जिससे शब्दों में चमत्कृति उत्पन्न हो गयी है।

शब्दगत का ललित उदाहरण देखिए –

प्रमाणितेयं सुदृशामघोनिका किलालयोऽप्यप्सरसामथाधिकाः।
पुरन्दरेणोदयिना समुत्तरमकम्पनेऽलम्बि पुलोममादरः॥[1]

यह बाला सुलोचना सुनयना सुन्दरियों के बीच पाप के विषय में कम है। इसलिए यह सुन्दर दृष्टि होने से इन्द्राणी की तरह है। इसकी सखियाँ भी निश्चय ही जल की तरह सरस हैं इसलिए चन्द्र से मिलने वाले रसण या आप्यायन से भी अधिक गुण वाली हैं। अतः अप्सराओं के बीच अधिक गुणवती हैं। उसने अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को जीतकक पीड़ा से पीड़ित कर दिया है। उदित होने वाले जन समूह से यह नदर भी युक्त है। अतएव उदयशील इन्द्र से भी ्धिक आनन्दित है। अतएव लोगों ने इस अकम्पन राजा के विषय में पुलोम यानी इन्द्र के श्वशुर से भी अधिक आदर भाव धारण किया।

शब्दों में चमत्कृति होने से शब्दगत चमत्कार है। शब्दगत का मनोहारी उदाहरण –

अर्कतापरिणतावतर्कता – संयुतेन दधता यथार्थताम्।
मेघमानितऋतो विनश्यता भातु तूलफलता त्वयोदृता॥[2]

जब स्वयंबर सबा में सुलोचना जयकुमार को स्वयंबर माला डालती है तो अर्ककीर्ति इससे भड़क उठता है और युद्ध को तैयार हो जाता है। जब अकम्पन यह सुनते हैं तो वे झगड़ा शान्त करने के लिए अपना दूत अर्ककीर्ति के पास भेजते हैं लेकिन उसका अर्ककीर्ति पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, तब दूत कहता है –

मैं तो समझता हूँ कि आप वास्तव में अर्ककीर्ति (सूर्य के समान है) जैसे आक मेघमानित वर्षा ऋतु में नष्ट हो जाता है और उसका जीवन फलरहित होता है वैसे ही आप भी मेघ कुमारादि द्वारा सम्मानित जयकुमार की ऋतु अर्थात् तेज में पड़कर नष्ट हो जायेंगे।

शब्दों की विचित्रता से चमत्कार उत्पन्न होता है।

शब्दगत की एक और बानगी द्रष्टव्य है –

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 5/88
2. वही, 7/69

रणश्रियः केलिसरः सवर्णाः करीशकर्णात्ततया सपर्णा।
वक्त्रैर्भटानां कमलावकीर्णा श्रीकुन्तलैः शेवलसावतीर्णा॥
अजस्रमाजिस्त्वसृजा प्रपूर्णा किलोल्लसत्कुङ्कुमवारिपूर्णा।
यशः समा रब्धपरागचूर्णा स्म राजते सा समुदङ्गघूर्णा॥[1]

जब जयकुमार व अर्ककीर्ति की सेना का आपस में युद्ध हो रहा था तब वह रणभूमि बावड़ी के समान लग रही थी।

वह रणभूमि, रमश्री के केलिसरोवर सी बन गयी थी क्योंकि उसमें हाथियों के कटे पड़े कान पत्र के समान दीखते थे। योद्धाओं के मुखों सरीखे कमलों से वह भरी थी। यत्र तत्र बिखरे पड़े बाल से वार का काम कर रहे थे। उसमें जो रक्त भरा था, वह केशर के जल के समान था और जो शूरता दिखलाने वाले वीरों का यश फैल रहा था वह परागसदृश था। इस प्रकार इन सब सामग्रियों से पूर्ण वह युद्धभूमि प्रसन्नता से इठलाती बावड़ी लग रही थी।

रुपक अलंकार के द्वारा कवि ने शब्दों में बड़ा ही मनोहारी व हृदयावर्जक वर्णन किया है। शब्द-सौष्ठव अनुपम है।

अङगीचकाराध्वकलङ्कलोपी हयरिञ्जयं नाम रथं जयोऽपि।
खरोऽध्वना गच्छति येन सूर्यस्तेनैब सोमोऽपि सुधोधधुर्यः॥[2]

जयकुमार व अर्ककीर्ति के बीच युद्ध का वर्णन है -

नीतिमार्ग के दोषों को नष्ट करने वाले जयकुमार ने भी अरिञ्जय नामक रथ स्वीकार किया। कारण जिस रास्ते से तीक्ष्ण सूर्य जाया करता है, उसी रास्ते से अमृतवृष्टि कर्त्ता चन्द्रमा भी जाया करता है।

शब्दों के चमत्कार से यह श्लोक चमत्कृति को प्राप्त होता है।

शब्दगत का एक और उदाहरण -

त्वदपरो जलबिन्दुरहं जनो जलनिधे मिलनाय पुनर्मनः।
यदगमं भवतो भुवि भिन्नतां तदुपयामि सदैव हि खिन्नताम्॥[3]

जब अर्ककीर्ति जयकुमार से पराजित हो जाता है तो उसको युद्ध करने पर गहरा दुःख होता है और वह लज्जित होता है। महाराज अकम्पन ने दोनों में सुलह करा दी। जयकुमार जीतकर भी अर्ककीर्ति से इस प्रकार कहता है कि हे जलनिधे! आप समुद्र के समान और मैं उसकी मात्र एक बूंद हूँ जो

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/41-42
2. वही, 8/69 3. वही, 9/41

तेरा ही अंगभूत जन है, किसी कारण भूमण्डल पर तुमसे जो अलग हो गया, निश्चय ही इसका मुझे अत्यन्त खेद है। अतः आपसे फिर मिलना चाह रहा हूँ।

शब्दों के माध्यम से जयकुमार की उदारता, महानता का परिचय मिलता है।

शब्दमय चमत्कार देखिये -

हे छिन्नमोह जनमोदनमोदनाय -
तुभ्यं नमोऽशमनृसंशमनोदमाय।
निर्वृत्यपेक्षितनिवेदनवेदनाय -
सूर्याय में हृदरविन्दविनोदनाय॥[1]

जयकुमार जब विवाह मण्डप में आते है तो उनकी दृष्टि वेदी पर पड़ी तब वह जिन सूर्य को नमस्कार करते हुए कहते हैं -

हे मोह रहित! लोकों को आनन्द प्रदान करने वाले प्रभो! शान्ति के शमन के लिए प्रेरक, स्वयं आनन्द स्वरुप, मुक्ति के लिए आवश्यक निवेदन के ज्ञाता, तथा मेरे हृत् कमल के विनोद हेतु सूर्य रुप आपको नमस्कार है।

विशिष्ट शब्दों के द्वारा जयकुमार जिन सूर्य की स्तुति करते हैं। शब्दों में चमत्कृति अवलोकनीय है।

शब्दगत का एक और निदर्शन देखिये -

सम्पूततामतति तां वरराजपादे -
स्तस्मिन् सदम्बरावितान इतः प्रसादैः।
तत्कालकार्यपरदारतरङगचारः
शुद्धान्तसिन्धुरभवत्समुदीर्णसारः॥[2]

विवाह काल में अन्तःपुर की शोभा दर्शनीय थी। वह समुदर के समान प्रतीत हो रहा था।

श्री जयकुमार के चरणों से पवित्रता को प्राप्त, सुन्दर वस्त्रों वाले मण्डप प्रान्त के हो जाने पर इधर प्रसादों से तत्काल कार्य में तल्लीन स्त्री रुपिणी तरङगों का प्रसार भीतरी भाग में उदवेलित हुआ अन्तःपुर ही समुद्र जैसा प्रतीत होता था।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 10/96
2. वही, 10/102

जिस प्रकार समुद्र में तरगें उठती है, उसी प्रकार से अन्तःपुर में स्त्री रुपी तरंगे प्रसार कर रही थीं। विशिष्ट शब्दों में शाब्दिक सौन्दर्य दर्शाया गया है।

शब्दगत की एक और बानगी द्रष्टव्य है -

सर्पिरर्पितमुख्प्रतिमानं सेन्दुकेन्दुदयितप्रणिधानम्।
पाणिपद्म मृदु सद्म सुवेशाऽपूर्वमाप्य कुमुदे मुमुदे सा॥[1]

प्रसाद में स्त्री की मनोहारी कल्पना की है।

सुन्दर वैषवाली किसी स्त्री ने जिसमें अपने मुख की प्रतिभा दीख रही है ऐसे घृतपात्र को, चन्द्रसहित समुद्र की कल्पना कर और हस्तकमलरुपी गृह मं रखकर अपूर्व आनन्द को प्राप्त किया।

शब्दों की चारुता से शब्दों में विशेष सौन्दर्य उद्गलित हो रहा है। स्त्रियों को काल्पनिक अनुभूति विशिष्ट है। शब्दगत चमत्कार विशिष्ट है।

शब्दगत का ललित उदाहरण -

दन्तावलीमधरशोणिमसंभृदङ्का -
ताम्बूलरागपरिणामधियाप्यपङ्काम्।
या स्म प्रमाष्टिमुहुरादृतदर्पणापि
लज्जा तयालिषु तु हास्यसमर्पणापि॥[2]

जब स्वयंबर के पश्चात् जयकुमार, सुलोचना व सेना के साथ हस्तिनापुर की और प्रयाण करते हैं तथा रास्ते में एक वन में ठहरते हैं। वहाँ की क्रीड़ाओं का वर्णन हमें स्त्रियों की मनोदशा के माध्यम से पता चलता है।

जो अधरोष्ठ की लालिमा से चिह्नित दन्तपक्ति को पान की लाली से युक्त समक्ष दर्पण ले बार बार साफ कर रही थी, इससे सखियों के बीच उसे लज्जित तथा हास्य का पात्र होना पड़ा।

शब्दों के द्वारा शब्दगत चमत्कार अद्वितीय है। शब्दगत का एक और चमत्कार -

अनेकधान्यार्थकृतप्रवृत्तिर्जडाशयस्योद्धततां समत्ति।
हे शारदे! शारदवत्तवायः समस्तु मेघस्य विनाशनाय॥[3]

जयकुमार वन में प्रातःकालीन कृत्य करके पूजा - अर्चना करता है तथा सरस्वती जी की वन्दना करता हुआ कहता है कि -

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 10/106 2. वही, 18/102 3.वही, 19/29

हे सरस्वति! तुम्हारा यह मार्ग कार्यकलाप शरद ऋतु के समान है, क्योंकि जिस प्रकार शरद ऋतु अनेकधान्यार्थकृत प्रवृत्ति अनेक प्रकार के अनाजों के उत्पन्न करने में प्रवृत्त रहती है उसी प्रकार आपका मार्ग भी अनेकधान्यअर्थकृतप्रवृत्ति – अनेक प्रकार के अर्थ – अभिधेय – व्यङ्ग्य और ध्वन्य अथवा अनेक मनुष्यों के प्रयोजन सिद्ध करने में प्रवृत्त है और जिस प्रकार शरद ऋतु जडाशय – जलाशयों की उद्धतता – उद्वेलावस्था – मूर्ख मनुष्यों के अभिप्राय सम्बन्धी उद्दण्डता को नष्ट करती है। इस तरह जिस प्रकार शरद ऋतु मेघ जलाद का नाश करने के लिए है उसी प्रकार आपका मार्ग भी अद्य मेरे पापों का नाश करने के लिए हो। विशेष शब्द योजना के माध्यम से चमत्कृति के दर्शन होते है। शब्दगत की एक और बानगी दृष्टव्य है –

सापत्रपता यत्र तदेना जगतां कल्पतरुश्च निरेनाः।
नवप्रवालोपादानाय शिशिरश्रियमनुबभूव चायस॥[1]

सुलोचना व जयकुमार के दाम्पत्य जीवन का वर्णन इन पंक्तियों से पता चलता है कि पापरहित तथा दानशील होने से जगत के जीवों के लिए कल्पवृक्ष स्वयं स्वरुप राजा जयकुमार ने नवीन सुन्दर बालक प्राप्त करने के लिए उस समय सुलोचना का उपभोग किया, जिसमें आपत्ति से रक्षा करने की शक्ति विद्यमान थी और शिशिर ऋतु के समान जिसकी शोभा थी।

सुलोचना मानो शिशिर ऋतु रुप थी, क्योंकि जिस प्रकार शिशिर ऋतु में नवीन किसलयों की प्राप्ति के लिए पत्ररहितता होती है अर्थात् पतझड़ आ जाती है, उसी प्रकार सुलोचना में भी आपत्ति से रक्षा करने की शक्ति विद्यमान थी।

शब्दगत चमत्कार दर्शनीय है।

सुलोचना कान्तिसुधासरोवरी रसैरमुष्याः परिणाकोमलैः।
वहन् बभावङ्कुरितां वपुर्लतां सदैव मुक्तफलतान्वितां जयः॥[2]

सुलोचना कान्तिरुपी अमृत की सरोवरी थी। उसके सहज कोमल रस से अङ्कुरित पुलकित अथवा स्वेदबिन्दुओं से सहित होने के कारण मुक्ताफलों से रहित के समान दिखनेवाली शरीर लता को धारण करते हुए जयकुमार सुशोभित हो रहे थे।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 22/9
2. वही, 23/7

सुलोचना का सौन्दर्य देखकर जयकुमार के शरीर में सात्विक भाव के कारण रोमांच अथवा स्वेद बिन्दुएँ झलकने लगती थी। उससे ऐसा प्रतीत होता था कि उसने असफलता - निष्फलता को छोड़कर सार्थकता प्राप्त की है अथवा मोती ही धारण किये हैं।

शब्द सौष्ठव से चमत्कार की छटा अनुपम है।

शब्दगत चमत्कार एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

विहृत्य चान्या अपि तीर्थभूमिकाः सुसकुचदुष्कृतकर्मकूर्मिकाः।
मनः पुनस्तस्य बभूव भूपतेर्महामतेः श्रीपुरुपर्वतार्चने॥[1]

सुलोचना व जयकुमार को जब अपने पूर्व भावों का स्मरण होता है व विद्याओं की प्राप्ति होती है, उसके पश्चात् वे दोनों सभी पर्वतों पर होते हुए कैलाश पर्वत पर पहुँचते हैं।

जिनमें पाप कर्मरुपी कछुए, अत्यन्त संकोच को प्राप्त हो जाते हैं, ऐसी अन्य तीर्थ भूमियों में भी गमन करने के बाद बुद्धिमान राजा जयकुमार का मन कैलाश पर्वत की पूजा करने में तत्पर हुआ।

शब्दों के माध्यम से जयकुमार की मनोदशा का वर्णन बहुत ही प्रभावपूर्ण है।

शब्दगत की अनुपम छटा देखिए -

त्वदीयपादाम्बुजराजभाजां भुवां भवन्तीह महः समाजाः।
सुमानि सम्प्राप्य सुगन्धिमन्ति सोगन्ध्यमारान्नृशयं नयन्ति॥[2]

जयकुमार व सुलोचना ने कैलास पर्वत पर विचरण किया, व उसके पश्चात् स्नान करके जयकुमार जिनन्द्र देव के मन्दिर में भगवान् की स्तुति करते हैं -

हे भगवान् ! आपके चरणरुपी श्रेष्ठ कमलों की सेवा करने वाली पृथ्वी के इस लोक में बहुत भारी उत्सवों के समूह उद्भूत होते हैं। यह ठीक है क्योंकि सुगन्धियुक्त पुष्प अपने संपर्क से मनुष्य के हाथ की सुगन्ध प्राप्त करा ही देते हैं।

जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प को हाथ में लेने से हाथ सुगन्धमय हो जाता है उसी प्रकार आपकी सेवा से पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवों का उद्धार हो जाता है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 24/16 2. वही, 24/95

एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है -

नाङ्कं टङ्कमिवाशनिप्रतिकृतौ लेभे वचस्तद्धृदि
हावादीहमनाङ्न तत्परिणतिं प्रापोषरे बीजवत्।
तस्याः किञ्च मनोरथोन्नतगिरिं भेत्तुं वचोवज्रराट्
श्रीस्तम्बेरमपत्तनेश्वरमुखादेव पुनर्निर्ययौ॥[1]

जयकुमार के शील की परीक्षा लेने के लिए रविप्रभ नामक देव ने अपनी कांचना नामक देवी को जयकुमार के पास भेजा।

जिस प्रकार वज्र की प्रतिमा पर पत्थर तोड़ने वाली टांकी स्थान नहीं पाती है उसी प्रकार देवता के वचन जयकुमार के हृदय में स्थान नहीं प्रपा्त कर सके और जिस प्रकार भूमि में बीज अंकुरादि रुप परिणति को प्राप्त नहीं होते उसी प्रकार उसके हाव-भाव आदि भी जयकुमार के हृदय में कुछ भी परिणमन नहीं कर सके। उसके मनोरथरुपी उन्नत पर्वत को भेदने के लिए हस्तिनापुर के स्वामी जयकुमार के मुख से इस प्रकार का वनच रुपी श्रेष्ठ वज्र प्रकट हुआ।

विशिष्ट शब्दों के माध्यम से शब्दगत सौन्दर्य में नवीनता आ गयी है।

तनयाभिषवोत्सवक्रिया नृपतेर्निर्गमसम्भवद्व्रिया।
गरलोत्तरलड्डुभुक्तिवदभवत् सभ्यजनाय पवितभृत्॥[2]

जयकुमार को जब संसार से विरक्ति हो जाती है तब वह सभी सांसरिक बन्धनों को त्यागने का निश्चय करते हैं तथा अपना राज्य भार अपने पुत्र अनन्तवीर्य को सौंप देते हैं तो लोंगो का मन इस प्रकार अनुभव करता है -

राजा जयकुमार के गृह त्याग से होने वाली लज्जा के कारण पुत्र अनन्तवीर्य के राज्याभिषेक सम्बन्धी उत्सव की क्रिया सभ्यजनों के लिए उस मोदक भुक्ति लड्डु - भुक्ति के समान हुई जिसमें खाने के बाद विष परिपाक होता है। तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य राज्याभिषेक के समय उपस्थित थे उन्होंने पहले हर्ष का अनुभव किया उसके पश्चात् विषाद का।

शब्दों के द्वारा राज्याभिषेक का वर्णन अनुपम है।

शब्दगत का एक मजुल उदाहरण द्रष्टव्य है -

स कंकरप्रस्तरशङ्कुनोदप्रतोदयोर्यच्छतु सप्रमोदः।
कठोरयोः श्रीपदयोः कश (ष) सच्छीतातपप्रायसहः सहसः॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 24/136

2. वही, 26/38 3. वही, 27/13

प्रस्तुत श्लोक में गृहस्थ के कार्य कलाप का वर्णन किया गया है।

गृहस्थ अपने हाथों का उपयोग उपर्युक्त कार्यो में करता है, परन्तु शीत उष्ण आदि परीषदों को प्रचुर मात्रा में सहन करने वाला हंसयोगी कंकड़ सहित पत्थर तथा कील आदि के भीतर घुस जाने से पीड़ायुक्त साधुओं के कर्कश स्पर्श वाले चरणों में हर्षपूर्वक कश प्रदान करता है। अर्थात् अपने हाथों से उनके पादमर्दन करता है।

शब्दगत की एक और बानगी देखिए -

यो नाभिजातपत्रात्तं सिक्तवाथो मानसामृतैः।
शिखालुतां नयन् वातं कल्पद्रुममिवान्वगात्॥[1]

जयकुमार ने जब मुनि वेष धारण किया तब जयकुमार ने हीनजातीय पवन आदि को उदार भाव से अलंकृत कर चोटी धारी बनते हुए मानों परिवर्तन का वृक्ष ही खड़ा कर दिया था अथवा शुष्कप्राय वृक्ष को मानस सरोवर के जल से सींचकर पुनः पल्लवित हरा-भरा करते हुए कल्पवृक्ष के समान मनोहर कर दिया था। अथवा ध्यान मुद्रा में नाभिकमल से उत्पन्न वायु को हृदयकमल की वायु से मिश्रित कर तालुस्थ वायुता को प्राप्त करते हुए वांछित दायक होने से मानों कल्पवृक्ष बना दिया।

विशिष्ट शब्द योजना से चमत्कृति उत्पन्न हो रही है।

अर्थगत चमत्कार - जयोदय महाकाव्य में अर्थगत चमत्कार प्रायः देखने को मिलता है। आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने जयोदय महाकाव्य में अर्थगत चमत्कार का बहुत मात्रा में प्रयोग किया है।

अर्थगत चमत्कार वहाँ होता है जहाँ श्लोक का अर्थ हृगयंगम हो जाये, उस श्लोक का अर्थ इतना सशक्त हो कि वह अपनी ओर आकर्षित करके श्लोक के अर्थ का बोध करा दे। अर्थ वेमल्य के द्वारा ही काव्य उच्चकोटि की श्रेणी में आता है। अर्थ में चमत्कार कल्पना के द्वारा व नायकादि के रुप में उद्धभक्ति वक्ता की प्रतिभा के द्वारा कल्पित बी हो सकता है।

अर्थगत का मनोहारी उदाहरण देखिए -

गुणेस्तु पुण्येकपुनीतमूर्तेर्जगन्नगः संग्रथितः सुकीर्तेः।
कन्दुत्वमिन्दुत्वि डनन्यचौरेरुपैति राज्ञो हिमसारगौरैः॥[2]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 28/29
2. वही, 1/10 (पूर्वार्ध)

इस श्लोक मे जयकुमार के अतुल शौर्यादि, पराक्रम, तेज का गुणगान करते हुए कहते हैं कि –

चन्द्रकिरणों को भी लजाने वाले, कपूर से स्वच्छ गुणों द्वारा गुथा यह जगत् रुप पहाड़ पुण्य की एकमात्र पवित्र मूर्ति राजा जयकुमार की कीर्ति गेंद बन जाती है, अर्थात् जैसे कोई स्त्री गेंद से खेलती है वैसे ही जयकुमार की कीर्ति जगत् रूप गेंद से खेलती है।

जयकुमार की ख्याति इतनी थी कि उसके वश में सब कुछ था। अपने पराक्रम से वह संसार को गंद की भाँति खेलता है। अपने पराक्रम से उसने हर एक को असंभव से संभव बना दिया था।

निःशेषयत्वम्बनिधीन् स्म सप्त तस्यात्र तेजस्तरणिः सुदृप्तः।
व्यशेयन् वा द्रुतमीर्षयार्य तकाञ्छतत्वेन किलारिनार्यः॥[1]

जयकुमार के तेज का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे आर्य! देखो उस राजा के अत्यन्त देदीप्यमान न तेजरुपी सूर्य ने सातों समुद्रों को सुखा दिया था किन्तु इसके विपरीत उस राजा के शत्रुओं की स्त्रियों ने ईर्ष्यावश हो शीघ्र ही अपने रोदन द्वारा उन्हें सैकड़ों की तादाद में भर दिया।

तात्पर्य यह है कि उस राजा के तेज से अनायास ही शत्रु लोग काँपते और कितने तो मर ही जाते थे। अतः उसकी रानियों ने रो-रोकर सैकड़ों समुद्र भर दिये।

इस श्लोक की अर्थगत चारुता स्पष्ट है।

अर्थगत का मञ्जुल निदर्शन द्रष्टव्य है –

तत्वभृद व्यवहृतिश्च शर्मणे पूतिभेदनमिवाग्रचर्मणे।
तवदूषरटके किलाफले का फरसक्तिरुदिता निर्गले॥[2]

मुनिराज जयकुमार को व्यवहार की उपयोगिता बतलाते हुए कहते है कि यथार्थ व्यवहार ठीक उसी तरह सुखकर होता है जिस प्रकार फोड़े की भेदना नवीन चमड़ा पैदा करने के लिए होता है। किन्तु अन्नोत्पादन शक्तिशून्य उसर भूमि में बीज बोने से क्या लाभ हो सकता है ?

यथार्थवाद को बतलाते हुए कहते है कि बंजर भूमि में बीज बोने से क्या लाभ हो सकता है क्योंकि उससे तो हम अन्नोत्पादन कर नहीं सकते

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/26
2. वही, 2/5

क्योंकि वह भूमि सक्षम नहीं है। इसलिए हमें अन्न उत्पादन उपजाऊ भूमि पर ही करना चाहिए।

इस श्लोक का अर्थ प्रभावपूर्ण है।

अर्थगत का एक और ललित उदाहरण –

वाण्टवद् वृषमपेक्ष्य संहता घासवद्विषयदासतां गताः।
पाशवद्धनविलासतत्परा गेहिनो हि सतृणाशिनो नराः॥[1]

मुनिराज गृहस्थ मनुष्य की व पशु को एक समान बताते हुए कहते है कि गृहस्थ लोग पशुओं के समान सतृणाभ्यव्यवहारी होते हैं क्योंकि पशु भोजन की तरह धर्म स्वीकार कर एकत्र होते हैं। अर्थात् जैसे पशु अपने पोषण के लिए पशु-भोजन खाते हैं ठीक उसी प्रकार गृहस्थ भी अपने हितार्थ ही धर्माचरण में संघटित होते हैं। पशु जिस प्राकर घास से पेट भरता है, उसी प्रकार गृहस्थ भी रूप-रसादि विषयों के दास दीख पड़ते है। साथ ही पशु जिस प्रकार रस्से से बंधा रहता है, उसी प्रकार गृहस्थ लोग धन के विलास में बंधे रहते हैं। अतः निश्चय ही मानव तृणभक्षी पशुतुल्य हैं।

इसका अथ4 चारुतर ढंग से हृदयंगम होता है।

भास्वतः समुदयप्रकाशिनः क्षोद्रलेशपरिमुग्विकाशिनः।
यत्र वारिजतुलाविलासिनः श्रीयुताः खलु सभानिवासिनः॥[2]

जयकुमार की सभा के सभासद कमल के समान विलासशाली होते थे, क्योंकि जिस प्रकार कमल सूर्य को देखकर प्रसन्न होते हैं अर्थात् खिलते हैं, उसी प्रकार सभासद भी विद्वानों को देखकर प्रसन्न होते थे। कमल जब खिलते है तब मधु के कणों को प्रकट करते हैं, वैसे ही वहाँ के सभासद स्वार्थ परायणता त्याग कर विकास युक्त थे।

कवि ने अपनी अनुपम लेखनी से सभासद व कमल की बड़ी ही सुन्दर तुलना की है।

आस्येन चास्याश्च सुधाकरस्य स्मितांशु भासा तुलया घृतस्य।
उनस्य नूनं भरणाय सन्ति लसन्त्यमूनि प्रतिमानवन्ति॥[3]

जब सुलोचना स्वयंबर सभा में आयी तो उसकी शोभा देखने योग्य थी।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 2/20
2. वही, 3/13
3. वही, 5/82

स्मित किरणों से भासित हो रहे इस राजकुमारी सुलोचना के मुख के साथ तुलना के लिए तुला पर रखा गया चन्द्रमा पड़ गया। अतः उसकी पूर्ति के निमित्त दीख पड़ने वाले नक्षत्र नाम के छोटे – मोटे बाट शोभित हो रहे हैं।

सुलोचना का मुख इतना आकर्षित था कि उसकी तुलना के लिए चन्द्रमा की शोभा भी कम थी। उसकी पूर्ति के लिए नक्षत्रों की भी जोड़ दिया। लेकिन उसकी सोभा की पूर्ति फिर भी नहीं कर सके।

इसका अर्थगत चमत्कार अद्वितीय है। वह अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता है।

अर्थगत का ललित दृष्टान्त देखिए –

दुग्धीकृतेऽस्य मुग्धे यशसा निखिले जले मृषास्ति सता।
पयसो द्विवा व्यताऽसौ हंसस्य च तद्विचकत।।[1]

सुलोचना की स्वयंबर सभा में आये हुए कांची नगर के राजा का परिचय कराती हुयी विद्यादेवी सुलोचना से कहती है कि हे मुग्धे! इस राजा के समीचीन यश ने दुनिया भर के जल को दूध बना दिया है। अतः अब हंस का दूध और जल को अलग करने का कौशल और **पयस** शब्द दो अर्थो वाला (जल और दूध) होना व्यर्थ है।

इस राजा ने अपने यश से वह कार्य कर दिखाया जो केवल हंस का कार्य था। इन्होंने हंस के कौशल को भी नहीं बख्शा।

इसका अर्थ सहज ही हृदयंगम हो जाता है।

अर्थगत की एक और बानगी द्रष्टव्य है –

देशान्तरेऽस्य कीर्तिर्बहुवृद्धे मागिरो पुनर्महिला।
नवयौवना त्वमुचिता निःशत्रोः शूरता शिथिला।।[2]

विद्या देवी सुलोचना को जयकुमार का परिचय कराती हुयी सलहा देती है कि इसके चार स्त्रियाँ थी उनमें से पहली कीर्ति तो देशान्तरों में चली गयी। लक्ष्मी और वाणी अत्यन्त वृद्ध हो चली। चौथी शूर वीरता भी शत्रुओं के अभाव से शिथिल पड़ गयी। किन्तु तू नवयौवना है, इसलिए तुझे इसकी अर्धाङ्गिनी बन जाना उचित है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 6/37
2. वही, 6/109

कवि ने जयकुमार के गुणों का चार स्त्रियों के माध्यम से सुन्दर निरुपण किया है।

इसका अर्थगत चमत्कार गम्भीरर्यपूर्ण है।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

दीपस्तमोमये गेहे यावन्नोदेति भास्करः।
स्नेहेन दीपय्तां तावत् का दशा स्यात्पुनः प्रगे।।[1]

अन्धकारमय घर में रखा दीपक तेल द्वारा तब तक चमकता रहे जब तक सूर्य का उदय न हो, किन्तु सबेरे सूर्य का उदय हो जाने पर उसकी क्या दशा होगी ?

जिस प्रकार अन्धकार में दीपक की उपयोगिता है लेकिन जब अन्धकार दूर हो जायेगा तो उसकी कोई उपयोगिता नहीं रहेगी। क्योंकि सूर्य की रोशनी के आगे दीपक का प्रकाश नगण्य हो जाता है।

कवि ने इसका अर्थगत चमत्कार बहुत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है।

अर्थगत चमत्कार की और बानगी -

अपि हठात् परिषज्जनुषां मुदः स्थलमतिव्रजतीति विधुन्तुदः।
जनतया नतया स समर्च्यते किमु न किन्तु तमः परिवर्ज्यते।।[2]

अर्ककीर्ति जब जयकुमार से पराजित हो जाता है तो अकम्पन महाराज अर्ककीर्ति को समझाने लगते हैं।

आप सोचते होंगे कि मेरा निरादर हो गया, किन्तु आपका निरादर नहीं हुआ। देखिए राहु हठ में पड़कर कमलों की प्रसन्नता नहीं होती, बल्कि दुनिया उसको बुरा बताती है और विनम्र हो सूर्य का ही आदर किया करती है।

कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार राहु ने नेक कार्य किया लेकिन उसको उसका श्रेय नहीं मिला उसी प्रकार तुमने अच्छा कार्य किया है लेकिन इसका श्रेय जयकुमार को मिल गया। अर्थ में लालित्य है।

मानसस्थितिमुपेयुषः पद-पदमयुग्ममधिगत्य तेऽप्यदः।
ईश्वरान्तरलिरेष मे सतः सौरभावगमनेन सन्धृतः।।[3]

महाराज अकम्पन ने अपनी पुत्र अक्षमाला का विवाह अर्ककीर्ति के

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/30

2. वही, 9/15 3. वही, 9/91

साथ कर दिया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने सुमुख नामक दूत को सन्देश देकर अर्ककीर्ति के पिता राजा भरत के पास भेजा। वह दूत इतना प्रभावित हुआ कि वह कहने लगा –

हे प्रभो! आपके इन दोनों चरणकमलों को पाकर चित्त की एकाग्रता को प्राप्त मेरा यह चित्त भ्रमर आपके सौगन्ध के बोध से भली भाँति बंध गया है। वह कहीं अन्यत: जाना नहीं चाहता।

इसका अर्थ सौन्दर्य अद्वितीय है। इस कारण से यहाँ अर्थगत चमत्कार है।

अर्थगत चमत्कार की एक और बानगी द्रष्टव्य है –

अस्या विनिर्माणविधा वहुण्डं रसस्थलं यत्सहकारिकुण्डम्।
सुचक्षुषः कल्पितवान् विधाता तदेव नाभिःसमभूत्सुजाता॥[1]

जब सुलोचना पाणिग्रहण संस्कार के लिए आती है तो जयकुमार उसको पाकर उसका मन क्रीडा करने लगा और उसके रुप सौन्दर्य के बारे में मन ही मन सोचने लगा कि –

विधाता ब्रह्मा ने इस सुलोचना के निर्माण करने में जो सुन्दर जल का स्थान सहकारी कुण्ड बनाया था वही सुलोचना की नाभि के रुप में परिणत हो गया है। मकान बनाने के लिए जल आवश्यक होता है और उसके लिए कुण्ड बनाकर उसमें जल भरा जाता है। इसी प्रकार से सुलोचना के शरीर का निर्माण करते समय विधाता ने एक सुन्दर जलपूरित कुण्ड बनाया था जो बाद में सुलोचना की नाभि बन गया।

कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से अर्थ को इतना प्रभाव पूर्ण बना दिया है कि चित्त को आकर्षित किये बिना नहीं रहता है। सुलोचना की नाभि की गहराई के लिए इतनी अच्छी उत्प्रेक्षा की है।

किमु सोऽस्ति विचारकृत्पयोदः परियच्छन्निह चातकाय नोदम्।
अभिलाषभृतेऽ पर्वताय प्रतिनिष्कासयते ददाति वा यः॥[2]

जब सुलोचना ने जयकुमार के गले में वरमाला डाली तब अकम्पन ने कहा कि मेरी पुत्री आपकी सेवा करने योग्य बने ऐसा मेरा निर्णय है। अकम्पन जयकुमार से कहते है कि वरराज। जो मेघ पानी चाहने वाले चातक को तो

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 11/30
2. वही, 12/17

पानी नहीं देता, किन्तु पर्वत को पानी देता है। जो कि उसे बाहर निकाल देता है। अतः वह मेघ विचारशील नहीं है।

जिसकी जिसकी आवश्यकता है उसको वही वस्तु प्रदान करनी चाहिए, यही बुद्धिमत्ता है। आपका मेरी पुत्री सुलोचना के साथ अनुराग है तो इसे आपको ही देनी चाहिए।

इस मनोरम क्ति से अर्थ में चमत्कार आ गया है।

अर्थगत चमत्कार का एक और उदाहरण –

निशेन्दुना श्रीतिलकेन भालं सरोब्जबृन्देन विभात्यथालम्।
महोदया अस्ति सुसम्पदेवं युष्माभिरस्माकमहो सदैव॥[1]

पाणिग्रहण संस्कार के पश्चात् सभी बारातियों को अतिथि सत्कार व भोजन कराया गया व कन्यापक्ष वालों ने कहा कि –

हे महोदयों बारातियों, जैसे चन्द्रमा द्वारा रात्रि तिलक के द्वारा ललाट और कमल समूह के द्वारा सरोवर शोभित होता है उसी प्रकार आप लोगों के द्वारा हम लोगों की सदा ही शोभा है।

यहाँ कवि ने निदर्शना अलंकार के द्वारा बारातियों की शोभा का वर्णन किया है। अर्थगत चमत्कार से अर्थ इतना प्रभावपूर्ण बन गया है कि उसका चमत्कार दर्शनीय है।

लपति काशि उदारतरङिगणी वसतिरपसरसामुत राङिगनी।
भवति तत्र निवासकृदेषकः स शकुलार्भक ईश विशेषकः॥[2]

अकम्पन का सुमुख नामक दूत जब भरत चक्रवर्ती के पास आया, भरत चक्रवर्ती उससे अपना परिचय बताने के लिए कहा कि आप का क्या नाम है तथा आप कहाँ से आये हैं ? इस पर वह दूत काशी की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि हे नाथ! विशाल भागीरथी नदी से सम्पन्न यह काशी नगरी शोभित हो रही है (का जल या सुख, उसकी आशी आशावाली यह नगरी है) साथ ही यह परमसुन्दरी स्त्रियों और अप्सराओं की मनोरंजना नगरी है। वहीं रहनेवाला यह एक शकुला र्भक अर्थात् मछली का बच्चा है। दूसरे पक्ष में कल्याणमय कुल का बालक है, भगवान और आपका नाम अपने वाला है।

अर्थ में रमणीयता है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 12/140
2. वही, 9/67

अर्थगत चमत्कार का एक और निदर्शन देखिए -

धात्रा कृतास्याः प्रसृताच्छलेन प्रेङखाभरुस्तम्भमयीत्यनेन।
स्फुरत्पदाङंगुष्ठनखाशुराजिरन्तो रतेश्चानुवदेत्समाजी॥[1]

जयकुमार सुलोचना के रुप सौन्दर्य के बारे में सोचता है कि इस विधाता ने इस सुलोचना की जङ्धाओं के बहाने दो स्वर्णस्तम्भ और उनके बीच में उसके पैरों के चमचमाते अँगुठों की किरणों को रस्सी बनाकर रति- कामदेव की पत्नी के झूलने के लिए एक झूला तैयार कर दिया है। इसे सामाजिक व्यक्ति भी कहें कि यह रति का अनोखा झूला है।

अर्थगत चमत्कार के द्वारा सुलोचना की जङ्घाओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। अर्थ साम्य की दृष्टि से इसका चमत्कार अवलोकनीय है।

कुसुमाऽजलिभिर्घरा यवारेरुभयोर्मस्तक चूलिकाभ्युदारैः।
जनता च मुदञ्चनैस्ततालमिति सम्यक् सकरोपलिब्धकालः॥[2]

सुलोचना व जयकुमार के पाणिग्रहण संस्कार के विवाह मण्डप में लाया जाता है। वहाँ हवन कार्य आरम्भ करने के लिए अग्नि की ज्वाला उत्पन्न की गयी। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह सारी पृथ्वी तो कुसुमाञ्जलि से परिपूर्ण हो गई और वरवधू की ललाट रेखा उदार ज्वारों से परिपूण हो गई तथा रोमा चों के द्वारा सारी जनता व्याप्त हो गई। इस प्रकार वह करोपलब्धिका काल वास्तविक कला की उपलब्धिका अर्थात् प्रसन्नता का काल हो गया। भाव यह है कि विवाह का समय परम शोभा को प्राप्त हुआ।

इसका अर्थ मनोरम है।

एक और ललित उदाहरण देखिए -

पीत्वा दिवा श्रीमधुनस्तु पात्रं पूषा पुनर्लोहितमेत्य गात्रम्।
क्षीवत्वमापन्न इवायमद्य समीहतेऽहो पतितुं विपद्य॥[3]

स्वयंबर के पश्चात् जब जयकुमार व सुलोचना और सेना हस्तिनापुर की ओर प्रयाण करते हैं तब वह एक वन में ठहरते हैं। वहाँ वे लोग सूर्यास्त के समय उसकी लालिमा को देखते हैं।

सूर्य दिन भर कमल रुप मद्यपात्र को पीकर लाल शरीर को प्राप्त हो गया। मदिरापान के नशे से उसका शरीर लाल हो गया। जब वह इस समय

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 11/19
2. वही, 12/57 3. वही, (उत्तारार्ध) 15/14

विपन्न पदरहित स्थान भ्रष्ट अथवा निष्किरण हो नीचे गिरना चाहता है। आश्चर्य है कि मदिरा पान का ऐसा कुप्रभाव होता है।

कवि ने सूर्यास्त का कितना स्वाभाविक वर्णन किया है। मदिरा पान जैसे बुरे व्यसन का कुप्रभाव सूर्य की लालिमा से करके अर्थ को चमत्कारी बना दिया गया है।

एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

विधुबन्धुरं मुखमात्मनस्त्वमृतैः समुक्ष्यार्काडिकतं
कृत्वा करं मृदुनांशुकेन किलालकच्छविलाञ्छितम्।
भासूरकपोलतलं पुनः प्रोञ्छयागुरुपत्राडकभा -
भावेन विस्मितकृत् स्वतोऽ भादपि तदा नितरां शुभा॥[1]

इसमें प्रातःकाल के वर्णन में सुलोचना की मानसिकता का वर्णन किया गया है।

शोभनाड्गी सुलोचना ने प्रातःबेला में सूर्य की प्रभा से चिह्नित अपने चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को अमृत दूध या जल से धोया। धोते समय उसके हाथ में केशों की काली कान्ति पड़ी। जिसे उसने कोमल वस्त्र से पोंछा, देदीप्यमान कपोल तल में जब केशों की कान्ति पड़ी, तब उसने उसे अगुरु पत्र से चिह्नित जैसा मानकर साफ किया। यह करते हुए उसे विस्मय हो रहा था कि बार-बार साफ करने पर भी यह काला दाग दूर नहीं हो रहा है। इस तरह सब करती हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

यहाँ अर्थगत की मनोहारी छटा दर्शनीय है -

लवणिमाजदलस्थजलस्थितिस्तरुणिमायमुषोऽरूणिमान्वितिः।
लसति जीवनमञ्जलिजीवनमिह दधात्ववधिं न सुधीजनः॥[2]

जयकुमार व सुलोचना जब कैलाश पर्वत की यात्रा पर जाते हैं तब वहा कांचना नामक देवी जयकुमार के शील की परीक्षा के लिए उनसे संभोग की इच्छा करती है। जयकुमार अपने शील से विचलित नहीं होते हैं और इस घटना से उनमें वैराग्य भाव की उत्पत्ति होती है तथा उन्हें संसार की निःसारता का ज्ञान होता है कि -

लावण्य कमलदल पर स्थित जल के समान है, यौवन प्रातःकाल की लालिमा का अनुसरण करने वाला है और मनुष्य का जीवन अंजलि में स्थित

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तारार्ध, 18/103

2. वही, 25/5

जल के समान क्षीयमान है। इसलिये ज्ञानीजन इनके विषय में समय की अवधि न करें, अर्थात् ऐसा विचार न करें कि यह वस्तु इतने समय तक हमारे पास रहेगी।

जयकुमार को संसार की क्षण भंगुरता के ज्ञान में अर्थ सौन्दर्य दृष्टिगत होता है।

स्नवदिहो न तथा न दशानतरमपि तु मोहतमोहरणादरः।
लसति बोधनदीप इयान् यतः विधिपतडगणः पतति स्वतः॥[1]

विवेकी मनुष्य को किसी पदार्थ मं न स्नेह राग होता है और न राग के विपरीत द्वेष होता है। उसको तो मोहरुप अन्धकार को दूर करने का ही आदर होता है। ज्ञानरुप दीपक ही ऐसा है कि जिस पर कर्मरुप पतंगे स्वयं पड़ते हैं नष्य होते हैं।

किसी मनुष्य को न मोक्ष मार्ग में स्नेह-राग रुप तैल है और न संसार मार्ग में दशान्तर द्वेष अथवा बत्ती है, फिर भी वह मोहरुपी अन्धकार को नष्ट करने में आदर रखता है उसका यह कार्य इस कहावत के अनुसार है कि न तैल न बाती, उजियाला में रहेंगे। अतः ज्ञानरुपी दीपक को प्रज्वलित करना चाहिये, अर्थात् विवेकपूर्वक धर्माचरण करना चाहिए। उसी से कर्म निर्जरा का योग प्राप्त होता है।

उद्बोधनपरक यह श्लोक अर्थगत चारूत्व से परिपूर्ण है।

अर्थगत का एक और मनोहारी उदाहरण देखिए -

गरवद वरवस्तुयोगतः प्रकृतं तीर्थकृतः प्रयोगतः।
अपवृत्य कि कर्मकाष्टकं भवतीदं भुवि मडगलाष्टकम्॥[2]

जब जयकुमार को वैराग्य भाव की उत्पत्ति होती है तब वह अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर सांसरिक बन्धनों का परित्याग कर देते हैं। इसके पश्चात् वह आदिनाथ के समवसरण में जाते हैं, उसी समवसरण का वर्णन किया गया है व तीर्थकर की महिमा बतायी गयी है।

जिस प्रकार रसायन आदि उत्कृष्ट वस्तु के संयोग से विषय ौषध रुप में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार तीर्थकर के संयोग से ज्ञानावरणादि आठ कर्म भी परिवर्तित होकर समवसरण भूमि में आठ मङगल द्रव्य रुप हो गये

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 25/69

2. वही, 26/53

थे। तात्पर्य यह है कि समवसरण में कलश, श्रृंगार, ध्वजा, दर्पण, छत्र, चमर, व्यंजन और स्वस्तिक ये आठ मङ्गल द्रव्य विद्यमान थे, जो आठ मङ्गल द्रव्य न होकर ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के परिवर्तित रुप थे।

इसका अर्थ हृदयग्राही है।

शब्दार्थगत चमत्कार - शब्दार्थ गत चमत्कार वहाँ पाया जाता है जहाँ जिस श्लोक में शब्दों की चारुता, सौन्दर्य हो तथा अर्थ रमणीय हो वहाँ शब्दार्थगत चमत्कार होता है।

इसमें दोनों का होना अति आवश्यक है। केवल शब्दों के मनोहारी होने से शब्दाथ4गत चमत्कार नहीं हो सकता है उसी प्रकार केवल अर्थ में रमणीयता होने से इसे चमत्कार की श्रेणी में नहीं रख सकते हैं। जिस श्लोक में दोनों ही अपना चमत्कार दिखायेंगे, वहीं पर शब्दार्थगत चमत्कार होगा।

आचार्य ज्ञान सागरजी ने अपने **जयोदय महाकाव्य** में अलंकारों के द्वारा शब्दों तथा अर्थ को प्रभावपूर्ण तथा सौन्दर्यमण्डित बनाया है। श्लेष व वक्रोक्ति के द्वारा अधिक चमत्कार उत्पन्न हुआ है।

शब्द वैमत्य व अर्थ वैमत्य से युक्त चमत्कार पूर्ण वाक्य सहृदये के हृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। पं. ज्ञानसागर जी ने इस काव्य में ऐसे ही चमत्कारी वाक्यों का प्रयोग किया है।

शब्दार्थगत चमत्कार का उदाहरण -

कुरक्षणे स्मोद्यतते मुदा सः सुरक्षणेभ्यः सुतरामुदासः।
बबन्ध मामुष्यपदं रूषेव कीर्तिः प्रियाऽवाप दिगन्तमेव॥[1]

वह राजा शुभ लक्षणों से तो दूर था और बुरे स्वभाव में प्रसन्नता पूर्वक लग रहा था, इसलिए रोष के कारण ही मानो उसकी माँ ने उसके पैर बांध दिये और उसकी कीर्तिनाम की अर्धागिनी रुष्ट होकर दिगन्त में चली गयी। यह तो निन्दापरक अथ4 है किन्तु स्तुति परक मूलार्थ इस प्रकार है - वह राजा जयकुमार देवताओं द्वारा मनाये जाने वाले उत्सवों से भी उदास रहकर पृथ्वी के संरक्षण में उद्यत रहता था। इसलिए लक्ष्मी तो उसके पैरों को चूमती थी और उसकी कीर्ति संसार में दिगन्तव्यापिनी हो गयी।

यहाँ शब्दमय चमत्कार के साथ अर्थ भी हृदयावर्जक है। अतः यहाँ शब्दार्थगत चमत्कार है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/45

शब्दार्थगत चमत्कार का ललित उदाहरण -

अशोक आलोक्य पतिं ह्यशोकं प्रशान्तचित्तं व्यकसत्सुरोकम्।
रागेण राजीवदृशः समेतं पादप्रहारं स कुतः सहेत॥[1]

मुनिराज के आगमन को देखकर प्रशान्तचित्त यह अशोक वृक्ष निःसंकोच स्वयं ही विकसित होता हुआ अनुरागवश कमलनयना नामिनी द्वारा किये जाने वाले पाप्रहार को कैसे सह सकता है ?

यहाँ पर कवि ने विभावना अलंकार के द्वारा शब्दों में रमणीयता लायी है तथा अर्थ भी रमणीय है। अतः यहाँ शब्दार्थगत चमत्कार है।

शब्दार्थगत चमत्कार का एक अन्य उदाहरण -

पद्भयामहो कमलकोमलतां हसद्भयां
किं कौशलं श्रयसि कौशलमा श्रयद्भयाम्।
वैरीश - वाजि - शफराजिभि - रप्यगम्यां
श्री देहली नृवर नः सुतरामरं यान्॥[2]

जयकुमार की सभा में जब काशी नरेश का दूत स्वयंबर का सन्देश लेकर आता है। तब जयकुमार उससे वहाँ आने का कारण पूछते हैं -

हे मनुष्य श्रेष्ठ! हमें आश्चर्य होता है कि कमल की कोमलता को भी हँसने वाले सुकोमल चरणों से रास्ते में काटों पर चलकर आने वाले आप शत्रुओं के घोड़ों के खुरों से भी अगम्या हमारी व्रजमयी देहली पर शीघ्रतापूर्वक आसानी से चलकर आ पहुँचे, ऐसी कौन सी कुशलता रखते हैं।

इस श्लोक में यमक और अनुप्रास के द्वारा शब्दों में चमत्कार उत्पन्न होता है। अर्थ साम्य की दृष्टि से अर्थमय चमत्कार प्रभावशाली है।

शब्दार्थगत का ललित उदाहरण -

महीमघोनः सुतरामघोनः समागमो नर्मलमागमो नः।
भवादृशो भात्यथवा दृशोऽपि यतोऽधुना निष्फलता व्यलोपि॥[3]

काशी नरेश का दूत जयकुमार की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि पृथ्वी के इन्द्र आप सरीखे महानुभाव का पापरहित पापों का नाश करने वाला समागम ही हम लोगों के लिए अत्यन्त प्रसन्नता देने वाला मनोविनोदकारी होता है। कारण इस समय दृष्टि की भी सारी निष्फलता लुप्तप्राय हो गयी है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/84
2. वही, 3/27 3. वही, 3/32

यमक अलंकार के माध्यम से शब्दों में वारुता आ गयी है। अथ4 भी लालित्य से परिपूर्ण है।

शब्दाथ4गत का मनोहारी उदाहरण देखिए -

मुकुरादिसमाधोरं मौक्तिकादिसमन्वितम्।
नवविद्रुमभूयिष्ठमुद्यानमिव मञ्जुलम्॥[1]

काशी नरेश अकम्पन ने अपनी पुत्री सुलोचना के लिए स्वयंबर मण्डप को इस प्रकार सजाया था कि वह बगीचे की तरह लग रहा था।

वह मण्डप किसी बगीचे की तरह परम सुन्दर है। कारण जैसे कोई बगीचा कलियों से भरा होता है वैसे ही इस मण्डप में चारों और दर्पणादि लगे हुए है। बगीचे में मोतियाँ आदि पुष्पों के पौधे होते हैं तो इसमें भी मोती लटक रहे हैं। बगीचे में नयी कोपलें दिखायी देती हैं तो यह मण्डप भी मूँगों की झालर आदि से व्याप्त है।

कवि श्लिष्टोमा के माध्यम से शब्दों व अर्थो को प्रभावपूर्ण बनाया है।

शब्दार्थगत की एक बानगी द्रष्टव्य है -

भूरिधान्यहितवृत्तिमती तन्निर्जरत्वमधिगंन्तुमपीतः।
संविकाशयति वा जडजातमप्युदर्कमनुयात्यथवाऽतः॥[2]

यह शरद किसी भली स्त्री की तरह है जो निर्जरपन (देवतापन) प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकारों से औरों का भला करने में लगी रहती है। शरदऋतु भी निर्जरपन (जलरहितता) प्राप्त करती हुई अनेक प्रकार के धान्यों की सम्पत्ति देने वाली है। भली स्त्री मूर्ख के पुत्र को भी समझाकर ठीक मार्ग पर ले आती है। तो शरदऋतु कमल को विकसित करती है। भली स्त्री भविष्यत् सौभाग्यवृत्तान्त को प्राप्त करती है तो शरदऋतु भी प्रचण्ड सूय को धारण करती है।

शिलष्ट पदों से ये दोनों अर्थ निकलते हैं। इन्हीं के द्वारा शब्दार्थगत चमत्कार उद्दीप्त होता है।

चतुर्दसगुणस्थानमुखेन शिवपूर्गता।
शुक्लेन वाजिना तेनारात्रिमार्गानुगामिना॥[3]

जयकुमार सुलोचना के स्वयंबर के लिए काशी नगरी जाते हैं उसी का वर्णन है कि - चौदह लगामों वाले मुख के धारक जल जल-थल आकाश

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/75
2. वही, 4/58 3. वही, 3/114

रुप तीनों मार्गो से गमन करने वाले सफेद घोड़े के द्वारा जयकुमार ने शीघर ही काशीपुरी को प्राप्त कर लिया जैसे सम्यग्दर्शन ज्ञान, चरित्ररुप तीन मार्गो से गमन करने वाले एवं चौदह गुण स्थानों को पार करने वाले शुक्ल ध्यान द्वारा शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर ली जाती है।

श्लिष्ट शब्दों के द्वारा जयकुमार का काशी पहुँचना मोक्षपुरी के समान बतला दिया है। श्लिष्ट शब्दों के सामर्थ्य से ही अर्थ प्रभावपूर्ण बन गया है।

शब्दार्थगत की एक और बानगी दॉष्टव्य है -

अनुनामगुणममुं पुनरहो रहोवेदिनी मनीषाभिः।
न त्वाप सापदोषाऽप्यनडगरुपाधिपं भाभिः॥[1]

सुलोचना ने स्वयंबर सभा में कामरुपाधिप राजा का वरण नहीं किया। क्या कारण था वह शब्दार्थ के द्वारा कवि ने बताया हे कि कामरुपाधिप इस नाम से स्पष्ट हो रहा था कि यह अपने कामांग में गुप्त रूप से व्याधि संजोये हुए है। अतः आश्चर्य है कि अपनी विचारशीलता से गूढ रहस्य को जान लेने वाली निर्दोषरुपा उस सुलोचना ने उसे नामानुसार गुणवाला जानकर स्वीकार नहीं किया।

वक्रोक्ति के माध्यम से शब्दार्थ सशत हो गया है। शब्दार्थगत का ललित उदाहरण देखिए -

कौतुकानुकलितालिकलापाऽऽ मोदपूरितधरामृगुरूपा।
तत्स्वयंबरवनं निजगामासो वसन्तगणनास्वभिरामा॥[2]

सुलोचना के लिए काशी में स्वयंबर सभा का आयोजन किया जाता है। सुलोचना जिनेन्द्र देव की पूजा करके स्वयंबर मण्डप में आती है। कवि ने उसकी समानता बसन्त ऋतु से की है।

बसन्त की समानता रखने वाली वह सुलोचना उस स्वयंबर मण्डप रुपी वन में पहुँची। क्योंकि बसन्तऋतु फूलों पर मंडराने वाले भौरों से युक्त होती है तो सुलोचना भी कौतुक भरी अपनी सखियों को साथ लिये थी। इसी तरह बसन्त फूलों के पराग से धरातल को पुरित कर मृदुरुप बना देती है तो सुलोचना भी सबको प्रसन्न करने वाली थी।

शब्द व अर्थ दोनों में ही चमत्कृति के दर्शन होते हैं। एक और

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 6/31
2. वही, 5/64

उदाहरण देखिए -

अनुकूले सति सुरथे विदां मुखाब्जान्यगुश्च मोदपथे।
प्रतिकूले म्लानान्यपि तस्मिन् मूर्तेः प्रभावत्याः॥[1]

स्वयंबर समारोह में सभी राजाओं का आगमन होता है। विद्या देवी एक-एक करके राजाओं का परिचय कराती है। जब वह सुलोचना को लेकर राजाओं के पास जाती है तो उस समय की उनकी मानसिक दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण यहाँ मिलता है।

प्रभावती मूर्तिवाली उस सुलोचना का रथ अपनी और मुड़ने पर उन विद्वा विद्याधरों के मुख-कमल खिल उठे और उसके प्रतिकूल होने पर पुनः वे (मुखकमल) ठीक उसी तरह मुरझा गये, जिस प्रकार प्रभा शरीर सूर्य के अनुकूल (सम्मुख) होने पर विकसित होते हैं और उसके प्रतिकूल होने पर संकुचित हो जाते है।

सोमजोज्जवलगुणोदयान्वयाः सम्बभुः सपदि कौमुदाश्रयाः।
येऽर्कतेजसवशंगताः परे भूतले कमलतां प्रपेदिरे॥[2]

जब सुलोचना जयकुमार के गले में वरमाला डाल देती है तब अर्ककीर्ति को रोष आ जाता है। वह युद्ध की घोषणा करता है। तो जयकुमार व अर्ककीर्ति की सेना में लोगों का विभाजन हो जाता है।

सोम या चन्द्रमा के गुणों से प्रेम रखने वाले रात्रि विकासी कुमुद होते हैं जबकि कमल (अपने विकास के लिए) सूर्य के अधीन होते हैं। इसी प्रकार जयकुमार भी सोमनायक राजा से उत्पन्न और सहिष्णुतादि उजद्जवल गुणों से युक्त थे। अतः उनके अनुयायी लोग शीघ्र ही कौमुदाश्य हो गये। अर्थात् भूमण्डलपर हर्ष के पात्र बने। किन्तु जो अर्ककीर्ति के प्रताप के अधीन यानी उसके पक्ष में थे, वे कमलता को प्राप्त हुए। अर्थात उनके क आत्मा में मलिनता आ गयी। भव यह है कि जयकुमार के पक्ष वाले तो प्रसन्न हो उठे, पर, अर्ककीर्ति के पक्ष वाले निराश हो गये।

श्लेष के माध्यम से शब्दों में वारुता व अर्थ में लावण्य आ गया है।

प्रेम्णाऽऽस्यपीयूषमयूखवन्तं समुज्जवलं कोमुदमेघयन्तम्।
परा तु राजीवदृशः किलोरीचकार राज्ञो दृगियं चकोरी॥[3]

जब सुलोचना को पाणिग्रहण संस्कार के लिए बुलाया जाता है तब

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 6/11
2. वही, 7/86

जयकुमार की यह दृष्टिरुपीचकोरी सबसे पहले सुलोचना के मुख रुपी चन्द्रमा पर गयी, क्योंकि (मुख और चन्द्रमा में एक विशेषता है कि) चन्द्रमा कुमुदवृन्द को प्रसन्न (विकसित) करता है और सुलोचना का मुख पृथ्वी पर प्रसन्नता का प्रसार करता है।

श्लेष, रुपक, सङ्कर अलंकार के द्वारा शब्दार्थ में चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

शब्दार्थगत का मनोहारी उदाहरण -

खगावली रागनिवाहिनी हाऽथ स्पर्शमात्रेण नृणां मदीहा।
हृदि प्रविष्टा गणिकेव दिष्टा निमीलयेन्नेत्रनिकोणमिष्टा॥[1]

अर्ककीर्ति ने स्वयंबर विरुद्ध जब जयकुमार से युद्ध की घोषणा की तब दोनों के बीच युद्ध हुआ, उसी का वर्णन हमें मिलता है।

मैं सोचता हूँ कि बाणों की परम्परा को महापुरुषों ने वेश्या के समान ठीक ही कहा है जो नेत्रकोणों को मूंद देती है। बाणावली और वेश्या स्पर्शमात्र से राग उत्पन्न करती है और अंगीकृत करने पर मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट हो जाती है।

शिलष्टोपमा के द्वारा शब्दों में चमत्कार उत्पन्न होता है तथा अर्थ भी सरलता से हृदयंगम हो जाता है।

शब्दार्थगत की एक और बानगी दृष्टव्य है -

करौ विधेस्तस्तववरो धियापि संवेदनस्येयमहो कदापि।
नमोऽस्त्वनङ्गाय रतेस्तु भर्वे स्मृत्येव लोको त्तररुपकर्त्रे॥[2]

जब जयकुमार व सुलोचना को पाणिग्रहण के लिए विवाह मण्डप में लाया जाता है तब जयकुमार सुलोचना के रूप सौन्दर्य के बारे में सौचता है कि ज्ञान से युक्त विधाता के दोनों हाथ तो निर्बल है, क्योंकि व साधन हीन है, आत्ममात्र सापेक्ष है, अत: उनसे सुलोचना के सलोने रुप की रचना सम्भव नहीं और वेदनायुक्त होने से विधाता की बुद्धि के द्वारा भी सुलोचना की रचना का कब चिन्तन किया गया ? सच तो यह है कि विधाता इसके निर्माण की तो जाने दीजिये उसके विचार करने में भी असर्थ है। अङरहित होने पर भी केवल स्मरणमात्र के बिना किसी अभ्यास के लोकात्तिशायी रूप को उत्पन्न करने वाले रतिपति के बिना किसी अभ्यास के लोकात्तिशायी रुप को उत्पन्न

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/33
2. वही, 11/85

करने वाले रतिपति कामदेव को नमस्कार हो। रचना का सर्वश्रेष्ट अधिकारी कामदेव ही हैं। यदि वह न हो तो सृष्टि ही बन्द हो जाये। यह कितने आश्चर्य की बात है।

यह शब्दार्थगत चमत्कार अदभुत है।

शब्दार्थगत का एक अन्य उदाहरण -

समागतां वामपरम्परायाः पीत्वा सुतिं कोमलरुपकायाम्।
तरङ्गभङ्गीतरलाभिनेतुर्जगाम जन्माथ च मानसे तु॥[1]

सुलोचना को देखकर जयकुमार के मन में तरह - तरह के विचार हिलोरें लेने लगे।

मनोहर परम्परावली सुलोचना की सामने आयी रुचिर काया स्वरुप (धारा) को पीकर (प्रेमपूर्वक देखकर) जयकुमार के मन में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। जैसे वार्ष ऋतु में जल धाराओं को पाकर मानस सरोवर में तरल तरङ्ग उत्पन्न होते है।

कवि ने कितना स्वाभाविक वर्णन कि है। श्लेष के द्वारा शब्दों में रमणीयता आ गयी है तथा अर्थ की रमणीयता है। शब्दार्थगत की एक बानगी देखिए -

विदमो न पदमोऽर्हति यत्र पाणेस्तुलां तु लावण्यगुणार्णवाणेः।
वृत्ति पुनर्वाञ्छति पल्लवस्तु तत्रेति बाल्यं परमस्तु वस्तु॥[2]

जयकुमार सुलोचना के अंग प्रत्यंक के सौन्दर्य के बारे में प्रशंसा करता है कि इसके हाथ अनुपम हैं।

सुलोचना लावण्य (लावण्य का अर्थ सौन्दर्य है पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाये तो इसका अथ4 शरीर की वह चमक है जिसमें सामने स्थित वस्तु प्रतिबिम्बत हो। गुण की अन्तिम सीमा है, इसके हाथ की बराबरी जहाँ पद्म, जिसमें पैरों की शोभा हो नहीं कर सकता वहाँ पल्लव उसकी बराबरी करे तो यह उसकी नादानी है। क्योंकि उसमें तो केवल पद पैर का लव अंश पाया जाता है ऐसे में वह उसके हाथ की तुलना को कैसे प्राप्त कर सकता है। पैरों की अपेक्षा हाथों की कोलमता अधिक होती है - ऐसा हम समझते हैं।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 21/9

2. वही, 11/42

शब्दार्थगत चमत्कार रमणीय हैं।

शब्दार्थगत का मनोहारी उदाहरण देखिए -

सारं सुधांशोः समवाप्यमध्यात् कृतो कपोलो सुषुमैकसिद्धयाः।
तज्जम्भपीयुषलवोपलम्भाद व्रणः पुनस्तत्र कलङ्कदम्भात्॥[1]

जयकुमार सुलोचना के गालों की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि चन्द्रमा के मध्यभाग में सार प्राप्तकर सौन्दर्य की अद्वितीय सिद्धि से युक्त सुलोचना के दोनों कपोल (गाल) रचे गये, क्योंकि दोनों कपोलों के अन्दर दाँरुपी अमृत के अंश पाये जाते हैं, और चन्द्रमा में कलङ्क के क्षण से घाव दृष्टिगोचर हो रहा है। अगर चन्द्रमा के सार से उसके कपोल न रचे गये होते तो उनके अन्दर दातों के रुप में अमृत के अंश कैसे पाये जाते, तथा चन्द्रमा के बीच में काला - काला धब्बा कैसे होता ?

शब्दार्थगत चमत्कार चमत्कृति से परिपूर्ण है।

शब्दार्थ गत का ललित उदाहरण द्रष्टव्य है -

निजकीर्तिकुलानि कुल्यराद सुगुणश्रेणिसमुत्थितान्यसौ।
शिविराणि जनाश्रयोचितान्यवलोक्याप मुदं सुदर्शनी॥[2]

जब जयकुमार ने हस्तनापुर की ओर प्रयाण किया तब वे रास्ते में गंगा नदी के तट पर रुके। वहाँ पर तम्बू लगे हुये थे उन्हें देखकर जयकुमार बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि वह कुलीन था। अतः उसने उन तम्बुओं को अपनी कीर्ति के कुल सरीखे समझा तथा वे तम्बू गुण श्रेणी समुत्थित थे अर्थात् लम्बी लम्बी रस्सियों से कसकर उठाये हुए थे। कीर्तिवाले कुल भी उत्तम गुणों के समूह द्वारा ही प्राप्त होते हैं और ये तम्बू भी उत्तम मनुष्यों के आश्रय के योग्य थे।

शिष्ट वर्णन से शब्द व अर्थ में चारुता आ गयी है।

शब्दार्थगत का एक अन्य उदाहरण -

भूर्जप्रायकपोलके दललताव्याजेन बीजाक्षराः
प्रान्ते कुण्डलसम्पदो विलसतो युक्ती ठकारो तराम्।
लोमालीति च नाभिकुण्डकलिता श्रीधूपधूमावली -
सज्जीयाज्जपमालिका गुणवतीयं हेमसूत्रावली॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 11/63
2. वही, 13/66 3. वही, उत्तरार्ध 16/82

नायिका के कपोलों पर जो पत्रोपलक्षित लता का आकार बना हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानों भूर्जपत्र पर मन्त्र के वीजाक्षर लिखे गये हों। कपोलों के दोनों और कुण्डल ऐसे जान पड़ते थे मानो मन्त्र में प्रयुक्त होने वाले "ठ: ठ:" नामक बीजाक्षर हों। नाभि के पास जो काली - काली रोमावली थी वह ऐसी लगती थी मानों नाभि रुपी यज्ञ कुण्ड से धूम की पङ्क्ति उठ रही हो और मध्यभाग में स्थित सुवर्ण मेखला ऐसी जान पड़ती थी मानों मन्त्र साधक के उपयोग में आने वाली जप की माला स्मरणी ही हो।

शब्दों के द्वारा नायिका का वर्णन रमणीय हो गया है तथा अर्थ भी चमत्कार पूर्ण है।

देवीति यासो नवनीतसम्पत्तयोदियायाभ्युदितानुकम्प।
दुग्धस्य धारेव किलाल्पमूल्यस्तत्रा नुयोगो मम तक्रतुल्यः ।।[1]

सुलचोना जयकुमार से कहती है कि दयाधारी स्वामिन्! यह जो देवी है, वह दूध की धारा के समान नवीन रूप से प्राप्त सम्पत्ति के रुप में उदित हुई है, अथवा मक्खनरुप सम्पत्ति के रुप में उत्पन्न हुई है। इस विषय से मेरा संयोग तो तर्क के समान अल्पमूल्य है, अर्थात् कोई मूल्य नहीं रखता।

जिस प्रकार तर्क के संयोग से दूध दही रुप प्राप्त होता हुआ स्वयं मक्खन बन जाता है, उसी प्रकार मेरे निमित्त मात्र से प्राप्त नमस्कार मन्त्र के ग्रहण करने से यह देवीपर्याय को प्राप्त हो गयी। इसके देवी बनाने में मेरा कुछ मूल्य नहीं है।

शब्दार्थगत चमत्कार रमणीय है।

शब्दार्थगत का मंजुल निदर्शन द्रष्टव्य है -

गोपतिर्जनतयासि भाषितोऽस्माकमाशु गुणवद्वृषस्त्वकम्।
आह सोऽथ वदतीतरे जयः किन्न गोत्रिगुण एव भो भवान्।।[2]

हस्तिनापुर में जयकुमार का हेमाङगद आदि सालों के साथ हास्य विनोद। किसी साले के द्वारा जयकुमार के लिए यह कहा जाना कि आप जनता के द्वारा गोपति गायों के पति (पक्ष में पृथ्वी पति) कहे जाते है, इसलिए हम लोगों के लिये भी आप शीघ्र ही गुणवदवृषः रस्सी सहित बेल हैं, (पक्ष में गुणसहित धर्म है) इस प्रकार किसी अन्य के कहने पर जयकुमार

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 20/84
2. वही, 21/85

ने कहा कि अरे! आप क्या गोत्रिगुण बैल के तीन गुणों से सहित नहीं है, अर्थात् मैं तो एक ही गुण से सहित हूँ पर आ तीन गुणों से सहित है (पक्ष में गोत्री कुलीन मनुष्यों के गुणों से सहित है)

कवि ने श्लेष व वक्रोक्ति के माध्यम से शब्दों में चमत्कृति व अर्थ में सौम्यता उत्पन्न की है।

शब्दार्थगत का ललित उदाहरण -

समुद्रसद्रसनादरतायामस्तु सज्जनाभिनर्मदायाम्।
का निमज्जय हा निदाघभीतिर्या विलग्नके वलिप्रणीतिः ॥[1]

जिसके मध्यदेश में त्रिवलि रूप त्रिवेणी की रचना है जिसकी सुन्दर नाभि ही नर्मदा नदी है और जो समुदर के समीचीन आस्वादन में आदर भाव से युक्त है और जो हर्षसहित शब्द करती मेखला के विनय भाव से सहित है, उस सुलोचना में अवगाहन कर निद्धाधकाल ग्रीष्मऋतु का क्या भय रह जाता है ? अर्थात् कुछ नहीं। अथवा जो सज्जनाभिनर्मदाया - सज्जनों को सब ओर से सुख देने वाली रहती है, ऐसी सुलचोना में अवगाहन कर उसका संपर्क प्राप्त कर हानि देने वाले भय का कौन सा भय रह जाता है। अर्थात् कोई भी नहीं। शब्दार्थ का मनोहारी उदाहरण देखिए -

न भविनो दिवास इव शाश्वता मितिरहर्निशयोरिह सम्मता।
स्फुटमनाथ इतो नरनाथतां प्रमुदितो रुदितं पुनरीक्ष्यताम् ॥[2]

संसार की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि संसारी प्राणी के दिन भी सदा एक रुप नहीं है, उनकी स्थिति रात और दिन के समान मानी गई है। स्पष्ट देखा जाता है कि जो अनाथ है वह राज्यावस्था को प्राप्त हो जाता है और जो प्रमुदित है हर्ष का अनुभव कर रहा है, वह रुदन को प्राप्त हो सकता है।

सदा एक सा मनुष्य नहीं रहता है। कभी सुख दुःख रुपी चक्र का पहिया चलता रहता है।

अनुप्रास के द्वारा शब्द अर्थ में चमत्कार उत्पन्न हो रहा है। शब्दार्थ गत की एक और बानगी -

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 22/11

2. वही, 25/6

सौधायतेऽयं समयः स्वपाता पुराकृतिस्ते वृतिरेव जाता।
ध्वजत्यजत्वप्रकृतिः कृतिन् ते धियोऽधियोगं स्फुटतां यजन्ते॥[1]

जिनेन्द्रदेव के द्वारा जयकुमार को धर्मोपदेश।

हे कृतिन्! हे विचारशील! तुम्हारा यह समय आत्मरक्षाकारी है अतः अमृतपुर के समान है और जन्म से लेकर अब तक का तुम्हारा कार्य उसकी व्याख्या है। अथवा तुम्हारा यह समय प्रासाद के समान है, तुम्हारा अब तक का कार्य उसकी बाड़ी है। तुम्हारा अमरस्वभाव व उसकी ध्वजा है और तुम्हारी ध्यानविषयक बुद्धियां स्फूरित को स्वीकृत कर रही हैं।

अनुप्रासमय शब्दों से समय की उपयोगिता व अर्थ को प्रभावपूर्ण बनाया गया है।

कविर्मनीषी चारित्र चक्रवर्ती महाकवि आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज ने अपने **जयोदय महाकाव्य** में शब्दगत, अर्थगत, और शब्दार्थगत चमत्कार का निरुपण करके इस महाकाव्य से संस्कृत साहित्य जगत् को गोरवान्वित किया है। यह जयोदय महाकाव्य काव्य जगत के काव्यों की मणियों के हार के मध्य अनर्घ्यमणि के समान सुशोभित है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 27/3

षष्ठ अध्याय

अलङ्कारगत चमत्कार तथा जयोदय

अलङ्कारगत चमत्कार :

वैदिक ऋषियों ने समाहित चित्त से जो मंत्रों का साक्षात्कार किया, वे अलंकारमय हैं। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर अलंकारों का चमत्कार परिलक्षित होता है। काव्य में अलंकार का प्रयोग वैदिक काल से ही हो रहा है। अलंकार अभिव्यक्ति की एक सशक्त प्रणाली। अलंकार से विभूषित होकर साधारण वाक्य भी मनोहारी व चारूत्व पूर्ण हो जाता है। जिस प्रकार सुन्दर वस्त्र तथा आभूषणों से अलंकृत स्त्री और भी कमनीय हो जाती है, उसी प्रकार काव्य में सुन्दर शब्द व अर्थ के विन्यास से कविता में सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। यही अभिवृद्धि काव्य में अलंकार के नाम से जानी जाती है।

दण्डी ने भी ''काव्यादर्श'' में काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मो को अलंकार कहा है।

''काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारन् प्रचक्षते''

आलंकारिकों के दो मत हैं जो प्रारम्भ के वामन, दण्डी, उद्भट, भामह, रुद्रट आदि आलंकारिक अलंकार को व्यापक काव्य तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं। ''**अलंकरोति इति अलंकार:**'' शरीर को विभूषित करने वाले अर्थ या तत्व को अलंकार कहा जाता है। आलंकारिक अलंकार से विहीन काव्य को काव्य की श्रेणी में नहीं रखते हैं। वे अलंकार को काव्य का प्राणाधार मानते हैं।

उनके मतानुसार किसी तथ्य, घटना, अनुभूति या चरित्र को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए काव्य में अलंकार का प्रयोग आवश्यक है।

लेकिन अभिनवगुप्त, राजशेखर, आनन्दवर्धन मम्मट आदि आलंकारिक अलंकार को प्रधान तत्व न मानकर इसे शोभावर्धक धर्म मानते हैं। काव्य में अलंकारों की स्थिति अपरिहार्य नहीं है। ऐसा मम्मट का मानना है। उनके मतानुसार अलंकार की सत्ता है तो उससे काव्य की शोभा बढ़ जायेगी यदि काव्य में अलंकार नहीं है तो काव्यत्व की हानि नहीं होगी।

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि[1]"

आचार्यो ने अलंकार के दो भेद किये हैं -

1. शब्दालंकार 2. अर्थालङ्कार

अनेक कवियों ने अपने काव्य में अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। उन्हीं के कारण वह प्रसिद्धि को प्राप्त हुये जैसे कालिदास की उपमा उनके कृतित्व को यशः प्रदान करती है। वही भारवि का अर्थगौरव भी विशेष महत्व प्रदान करने वाला है। नैषध काव्य में उपमा, पदलालित्य और अर्थ गौरव तीनों स्वरुप प्राप्त होते है।

अनेक कवियों, नाटककारों ने अनेक अलंकारों का प्रयोग करके अपने अपने ग्रन्थ के सौन्दर्य को मोहकर बनाया है। वहीं आज के युग के कविवर शिरोमणि स्व. 108 ज्ञानसागर जी ने अपने महाकाव्य **"जयोदय"** व अन्य महाकाव्यों में अनेकों अलंकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करके मंत्रमुग्ध कर दिया है।

आचार्य ज्ञानसागर जी का काव्य **जयोदय** में जिन अलंकारों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। वे इस प्रकार हैं -

अनुप्रास, श्लेष, उत्प्रेक्षा, उपमा, रुपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, वक्रोचित, समासोक्ति, विरोधाभास, यमक आदि।

इनके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों का व्यवहार अन्य कवियों से सर्वथा भिन्न है। इनके काव्य में अलंकारों का प्रयोग एहिलौकिक, पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए किया गया है। साथ में इसमें वैराग्य भाव भी प्रतिबिम्बत होता है।

शब्दालङ्कार

अनुप्रास -

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वेषम्येऽपि स्वरस्य यत्[2]

विश्वनाथ कविराज के अनुसार स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। स्वरों की समानता हो चाहे न हो परन्तु अनेक व्यंजन जहाँ एक से मिल जाये वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है।

अनुप्रास पाँच प्रकार का होता है।

1. का. प्र. सूत्र 1, प्र. उल्लास, 2. सा. दा. 10/2

1. छेकानुप्रास -

छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा[1]

व्यंजनों के समुदाय की एक ही बार अनेक प्रकार की समानता होने को छेक अर्थात् छेकानुप्रास कहते हैं।

2. वृत्यानुप्रास -

अनेकस्येकधा साम्यमसकृद वाष्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्यनुप्रास उच्यते।।[2]

अनेक व्यंजनों की एक ही प्रकार से समानता होने पर एक ही वर्ण की एक ही बार आवृत्ति होने पर या एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्यानुप्रास नामक शब्दालंकार होता है।

3. श्रुत्यानुप्रास -

उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यंजनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते।।[3]

तालू, कण्ठ, मूर्धा, दन्त आदि किसी एक स्थान से उच्चारित होने वाले व्यंजनों की (स्वरों की नहीं) समता को श्रुत्यानुप्रास कहते हैं।

4. अन्त्यानुप्रास -

व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।।[4]

पहले स्वर के साथ ही यदि यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति हो तो वह अन्त्यानुप्रास कहलाता है। इसका प्रयोग पद अथवा पाद आदि के अन्त में ही होता है।

5. लाटानुप्रास -

शब्दार्थयोः पौरूक्तयं भेदे तात्पर्यमात्रतः लाटानुप्रास इत्युक्तो।[5]

तात्पर्य भिन्न होने पर शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होने से लाटानुप्रास होता है।

जयोदय महाकाव्य में अनुप्रास गत चमत्कार -

रसातले नागपतिर्निविष्टः पयोनिधौ पीतपटः प्रविष्टः।
अनन्यतेजाः ण्नरस्ति शिष्टः को वेह लोके कथितोऽवशिष्टः।।[6]

1. सा. द., 10/3 2. वही, 10/4 3. वही, 10/5
4. वही, 10/6 5. वही, 10/7 6. जयोदय पूर्वार्द्ध 1/9

कवि इस श्लोक में राजा जयकुमार के शौर्य की प्रशंसा कपता हुआ करता है कि जयकुमार के डर से शेषनाग पाताल में जा छिपा। पीताम्बरधारी विष्णु समुद्र में सो गये। अथवा इस जगत में कौन ऐसा बचा हुआ है जो इनकी तरह बेजोड़ तेज वाला है।

इस श्लोक में अन्त्यानुप्रास का चमत्कार है। विष्टः विष्टः "शिष्टः शिष्टः" यह शब्द अपनी ध्वनि से प्रभावित किये बिना नहीं रहते हैं।

उपांशुपांसुलै व्योनि ढक्काढक्कारपूरिते।[1]
बलाहकबलाधानास्मयूरा मदमाययुः॥

इस श्लोक में स्वयंबर हेतु ससैन्य जयकुमार के प्रस्थान का वर्णन किया गया है। उस समय उड़ी हुई धूल से व्याप्त आकाश जब नगाड़े की आवाज से पूरित हो गया, तो मेघ गर्जन के भ्रम से मयूर मतवाले हो उठे।

इसमें "**प**", **प, ठ ठ, ब ब, य य,** की आवृत्ति से छेकानुप्रस है। इसमें वर्ण नगाड़े सी ध्वनि करके चमत्कार उत्पन्न कर देत हैं।

सामदाभविनयादरवादैर्धामनाम च वितीर्य तदादैः।
आगतानुपचचार विशेषमेष सम्प्रति स काशिनरेशः॥[2]

स्वयंबर सभा में काशीनरेश ने समयोचित भाषण, मात्यदान, नमस्कार और आदरयुक्त नम्र - वचनों द्वारा सुन्दर निवासस्थान देकर आगन्तुक लोगों का अत्यन्त भव्य स्वागत किया।

यह श्लोक वृत्यनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है। इसमं म, द, च आदि वर्णो की कई बार आवृत्ति हुई है।

सकलः सकलज्ञमाप्तवान् अपि सम्प्रार्थयितुं जनः स वा।
भगवान् भगवान्भिष्टुतो विपदामप्युत सम्पदामुत॥[3]

सभी लोग और वह माहारज अकम्पन भी भगवान् के पास जाकर स्तुति करने लगे। कारण भगवान् विपत्ति या सम्पत्ति में भगवान् ही है। अर्थात् विपत्ति में याद करने पर वे उसका उद्धार करते और सम्प्रत्ति में ऐश्वर्य प्रतिष्ठित कर देते हैं।

इस श्लोक में अनुप्रास की अनुपम छटा देखने योग्य है। इसमें सकल सकल, भगवान् भगवान्, पदा पदा शब्दों की आवृत्ति की गयी है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/111
2. वही, 5/6
3. सा. द., 8/88

जय रवे वरवेशवत् स्तव चरणयो रणयोधनयोः स्तव।
बलवतां हृदयाय समुत्सवः स्तुतिकृतां रसनाभिनयो नवः॥[1]

हे न्यायमुक्त चेष्टा करने वाले और अपरिमित शासन करने वाले महाराज! सर्व समर्थ आपके लिए जो मैंने निरादर करने वाला प्रसंग उपस्थित किया, उसकी मनसा, वाचा, कर्मणा निन्दा कर रहा हूँ। हे प्रभो! मेरा मन कभी भी आपके लिए अनादर करने वाला नहीं है।

इसमें कवि ने नुप्रास के माध्यम से अर्थ को प्रभावपूर्ण बनाया है। इसमें व व, र र, त त वर्णों की आवृत्ति हुई है।

इति वर्त्मविवर्तवार्तया सहसाप्तानि पदानि सेनया।
पदवीह दवीयसी च या समभूत्सापि तनीयसी तया॥[2]

कवि ने इसमें मार्ग का वर्णन किया है। मनोहारी वार्तालाप से मार्ग में अनेक प्रकार का वार्तालाप करते हुए सेना ने शीघ्रतापूर्वक गमन किया, जिससे कि वह बहुत लम्बा मार्ग भी छोटा सा प्रतीत होने लगा।

इसमें अनुप्रास के द्वारा कवि ने नाद सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस श्लोक में वव, तत, नन वर्णों की आवृत्ति हुई है।

ततत्यजेदं भभभाजनं दुदुद्रुतं ते मुमुखासवं तु।
बध्वा ददेदेहि पिपिप्रियेति मदोक्तिरेषालि मुदे निरेति॥[3]

मदिरा के नशे में किसी स्त्री की वाणी अस्पष्ट तथा पुनरुवत हो गई। वह प्रिय से कहती है कि मदिरा का यह पात्र शीघ्र ही छोड़ों। मुझे अपने मुख की मदिरा दे दो। स्त्री की यह अस्पष्ट तथा पुनरुक्त वाणी सखी के हर्ष के लिए निकल रही थी।

यह वृत्यनुप्रास का सुन्दर उदाहरण है। इसमें भ भ, द द, मु मु, की अनेक बार आवृत्ति हुई है। वृत्यनुप्रास के द्वारा कवि ने वर्णों की आवृत्ति से जिह्वा का लड़खड़ाना सूचित किया है। जो हमें मत्तदशा का बोध कराता है।

विभववानहमित्यतिहाससिन् सुभग किं तनुषे ननु शेमुषीम्।
कुटकुटीघटमेहि नु यो भृतः स वशिको वशिकोऽथ भृशं भृतः॥[4]

हे अत्यधिक साहस करने वाले भले आदमी! मैं विभवान् हूँ ऐश्वर्यशाली हूँ ऐसी बुद्धि क्यों करता है, तू रैहट के घट को अच्छी तरह देख, जो भरा है वह खाली हो जाता है और जो खाली है वह भर जाता है। तात्पर्य यह है कि

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 9/9   2. वही, 13/41
3. वही, उत्तरार्ध 16/50   4. वही, उत्तरार्ध 25/9

कभी स्थिति एक सी नहीं रहती है जो आज निर्धन है कल विद्वान हो जाता है जो धनपाल है वह दरिद्र हो जाता है।

इस श्लोक में अनुप्रास की योजना प्रभावशालिनी **कुटकुटीघटमेहि वशिको वशिको** में अनेक वर्णों की आवृत्ति है।

एक अन्य उदाहरण दर्शनीय है -

मुनिस्तु मौनं मनुतेऽञ्जनोनं क्वचिद्धितार्थ स्वमुखादघोनम्।
निस्सारयेद्रत्नमिवातियत्नपुरस्सरं प्रत्नपदं विनूत्नम्।।[1]

कवि ने इस पद्य में उपमा और अनुप्रास का बड़ा सुन्दर संयोजन किया है।

प्रथम तो मुनि मौन को निष्कलंक मानते हैं, यदि कहीं बोलने का अवसर आता है तो ऐसे वचन मुख से निकलते हैं जो हितकारी है जो हितकारी हों, पाप से रहित हों, यत्नपूर्वक बोला गया हो, पुराणपुरुषों के वर्णन में तत्पर हो और नूतनता से रहित हो, अर्थात् कपोलकल्पित कल्पनाओं से रहित हो और रत्न की तरह मूल्यवान् हो।

मम, नन वर्णो की आवृत्ति से यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

सदेह देहं मलमूत्रगेहं ब्रूया सुरामत्रमिवापदेऽहम्।
तद्योगयुक्तया निवद्धेपांशु याति स्त्रवस्वेदनिवातिपाशु।।[2]

इस जगत् में जिस शरीर को मलमूत्र का घर तथा मदिरा के पात्र के समान विपत्ति का कारण कहता हूँ झरते हुए पसीना के साथ जिसकी धूलि निकल रही है, ऐसे अपांशु - निष्प्रभु शरीर को योगी ध्यान की योजना से धारण करते हैं। विना स्थान के ही उसे जीवन पर्यन्त धारण करते हैं।

इसमें कवि ने नाद सौन्दर्य को वृत्यनुप्रास और अन्त्यानुप्रास के संयोग से चरम सीमा पर पहुँचा दिया।

कवि ने इसमें देह देह, पांशु पाशु की आवृत्ति की है।

यमक अलङकार -

सत्यर्थे पृथगर्थाया: स्वरव्यंजनासंहते:।
क्रमेण ते नैवा वृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।[3]

यदि अर्थवान् हो तो भिन्न अर्थ वाले, स्वर-व्यंजन समुदाय की उसी

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 25/9 . 2. वही, 27/42

3. सा. दा. वही, 10/6

क्रम से आवृत्ति को यमक कहते हैं। जिस समुदाय की आवृत्ति हो उसका एक अंश या सर्वांश यदि अनर्थक हो तो कोई आपत्ति नहीं, किन्तु उसके किसी एक अंश या सर्वांश के सार्थक होने पर आवृत्त समुदाय की भिन्नार्थकता आवश्यक है। समानार्थक शब्दों की आवृत्ति को यमक नहीं मानते। चार, तीन, दो एक चरमओं में विकल्प से यमक होते हैं। यमक इन पादों के आदि, अन्त मध्य, मध्यान्त, आद्यन्त तथा आदि मध्यान्त सभी स्थान पर होता है।

जयोदय महाकाव्य में यमकगत चमत्कार -

प्रतीहारमतः कश्चत् प्रतीहारमुपेत्य तम्।
नमति स्म मुदा यत्र न मतिः स्मरतःपृथक ।।[1]

जिस राजा को देख कामदेव के सिवा दूसरी बुद्धि या भावना ही उत्पन्न नहीं हो पाती, प्रस्तुत सभा के बीच उस जयकुमार के समीप प्रतीहार द्वारा अनुमति प्राप्त कर पहुँचे। किसी अपरिचित पुरुष ने उन्हें नमस्कार किया।

इस श्लोक में प्रथम चरण के प्रारम्भिक भाग की आवृत्ति द्वितीय चरण के प्रारम्भिक भाग में तथा इसी प्रकार दूसरी पंक्ति में भी आवृत्ति हुई है। इसलिए यहाँ पर आद्य यमक अलंकार है।

भैरवश्यमपि यत्र नभस्तु भैरवस्य धरणीतलमस्तु।
वाहनैः प्रमुदितैस्ततमेतत् कं निशासु कुमुदैःसमवेतम्।।[2]

शरद ऋतु की रात्रि में भली भाँति उदित तारों से निश्चय ही आकाश प्रमोद को प्राप्त होता है। भूतल कामोल्लसित भैरव के वाहनों अर्थात् कुत्तों में विस्तृत हो जाता है, तथा यह सरोवर जल भी रात्रि विकासी कमलों से युक्त हो जाता है।

"**भैरव भैरव**" शब्द की आवृत्ति होने से इसमें यमक अलंकार है।

यमक की अनुपम छटा देखिए -

सौष्ठवं समभिवीक्ष्य सभाया यत्र रीतिरिति सारसभायाः।
वैभवेन किल सज्जनताया मोदसिन्धुरुदभूज्जनतायाः।।[3]

कवि ने स्वयंबर सभा के वर्णन को यमक के प्रयोग से और प्रभावशाली बना दिया है। उस सभा में विकसित कमल के समान प्रसन्नता थी। उसका सौन्दर्य देखकर सज्जनता के वैभव द्वारा वहाँ की जनता का आनन्द समुद्र उमड़ रहा था।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/21 2. वही 4/63 3. वही 5/34

इस श्लोक के प्रथम पाद के अन्त्य भाग में, दूसरे पद के अन्त्य भाग में **सभाया** एक ही शब्द की आवृत्ति हुई है। इसी प्रकार **ज्जनताया** की आवृत्ति तीसरे व चतुर्थ पद के अन्त्य में हुई है। इसलिए यहाँ पर अन्त्ययमकालंकार है।

भन्नात्तिनाम ग्रहणं सपत्न्याः समर्पिताहो मदिरापि पत्न्या।
अस्याः समस्या मददारणाय दृश्यापि तस्या मददारणाय॥[1]

इस पद्य में मददारणाय शब्द का यमक अतिशय हृदयंगम है। सौत का नाम लेकर पति ने अपनी पत्नी को मदिरा पीने को दी। परन्तु वह मदिरा उसके लिए नशा बढ़ाने वाली होने के बजाय मद का अपहरण करने वाली (मद-दारणाय) सिद्ध हुई, किन्तु वह रण अर्थात् ईर्ष्याजनित युद्ध या कलह के लिए मद को बढ़ाने वाली (रणाय मददा) बन गई और फिर व मदिरा सपत्नी के लिए मद बढ़ाने वाली और संगम के लिए एकान्तवास की इच्छा जगाने वाली हुई। तात्पर्य यह है कि वह मदिरा देखने मात्र से इतनी विह्वल हो गई कि एकान्तवास की इच्छा करने लगी।

आमन्त्रदाना किमु देवताहमहो मदिष्टा किमु देवताह।
भचित्तभानामसुदेवतापि त्वं येन लोकेष्विन देवतापि॥[2]

इस पद्य में प्रथम चरण की आवृत्ति द्वितीय चरण में **किमुदेवताह** तृतीय चरण की आवृति देवतापि चतुर्थ चरण में होने से यमक अलंकार है।

अमरह्रदो मृदुहारमणी या भवति स्म श्रमहा रमणीया।
समय इवागाद्धारमणीयान् शरदोऽस्य सुधा का रमणीया॥[3]

इस श्लोक के चारों पदों में **रमणीया** शब्द की आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

यमक का चमत्कार देखिए -

विपल्लवानामिह सम्भवोऽपि न विपल्लवानामुत शाखिनामपि।
सदारमन्तेऽस्य विहाय नन्दनं सदा रमन्ते रूचितस्ततः सुराः॥[1]

प्रस्तुत श्लोक में प्रथम पद की **विपल्लवान** की द्वितीय पाद में आवृत्ति तथा तृतीय पाद की **सदारमन्ते** की चतुर्थ पाद में आवृत्ति होने से यहाँ आद्य यमकालंकार हैं।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 16/30
2. वही, 20/83 3. वही, 22/42 4. वही, 24/51

समभूत समभूतरक्षणः स्वसमुत्सर्गविसर्गलक्षणः।
शिवमानवमानवक्षणः नृपतेरूत्सवदुत्स वक्षणः॥[1]

इसमें कवि ने जयकुमार के पुत्र अनन्तवीर्य की उत्पत्ति के क्षण का वर्णन किया है। राजा जयकुमार का वह उत्सव क्षण जिसमें समस्त जीवों का संरक्षण था, जिसमें धन आदि का पूर्ण परित्याग था तथा जो मोक्ष लक्ष्मी अथवा सुख लक्ष्मी के आदर के लिए मङ्गल कलश रुप था, वह जल के एकत्रित होने के स्थआन के समान हुआ था।

इस श्लोक के चारों पादों के अन्त में **क्षण** शब्द की आवृत्ति है तथा तृतीय चरण में **'मानव मानव'** की आवृत्ति व चतुर्थ पाद में **उत्सव उत्सव** की आवृत्ति रम्य है।

यमक की एक और बानगी देखिए -

इत इदं तु कलेवरमुद्धतमितरतः सकलं समलं कृतम्।
तदपि याति जनः समलङ्कृतं न पुनरीक्षणमेवमलंकृतम्॥[2]

हे जितेन्द्रिय इधर एक ओर इस शरीर को रखो और दूसरी और मलसहित समस्त वस्तुओं को रखो, फिर भी यह जीव समलंकृतं - मलसहित समीचीन अलंकारों से सुसज्जित किये हुए शरीर को प्राप्त होता है। विचार युक्त वक्षु को अच्छी तरह प्राप्त नहीं होता।

वक्रोक्ति अलङ्कार -

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजेयद्यदि।
अन्य श्लेषेण का क्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततोद्विधा॥[3]

जहाँ किसी के अन्यार्थक वाक्य को कोई दूसरा पुरुष श्लेष से या काकु से अन्य अर्थ लगा दे वहाँ दो प्रकार की वक्रोक्ति होती है।

1. श्लेष वक्रोक्ति 2. काकु वक्रोक्ति

जयोदय महाकाव्य में वक्रोक्ति गत चमत्कार -

मानिनोऽपि मनुजास्तनुजायामागता रसवशेन सभायाम्।
जायते सपदि तत्र किमूहा स्वागता खलु विमानिसमूहः॥[4]

सुलोचना के स्वयंबर में उसके प्रति प्रेम भावना से मानी जन आये

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 26/1
2. वही, 25/58 3. सा.दा., 10/7 4. जयोदय, पूर्वार्ध 5/18

तथा मानहीनों का समूह भी देवमण्डल से आया। यह कोई बड़ी बात नहीं थी।

सुलोचना के स्वयंबर में मानहीन तथा देवगण पहुँचे इसमें क्या विचारणीय है क्योंकि वह परम सुन्दरी तथा राजकुमारी है। इसमें काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

एक अन्य उदाहरण -

वैद्योपक्रमसहितांस्तत्र नभोगाधिभुव इमान् सुहिता।
तत्याज सपदि दूरा मधुराधरपिण्डखर्जूरा॥[1]

बुद्धिदेवी सुलोचना को जब स्वयंबर में उपस्थित राजा का वर्णन कराती है तब सुलोचना ने बुद्धि देवी के उपयुक्त कथन पर सोचा कि ये तो विद्यासम्बद्ध उपक्रम है एवं वैद्योपक्रम यानी रोगी है। इसलिए नभोगाधिभुव आकाश में चलने वाले पक्षियों के समान है। अतएव यह भोगनीय नहीं है। यह सोचकर पिण्डखजूर से मधुर ओठों वाली सुलोचना ने उन्हें त्याद दिया।

श्लेष वक्रोक्ति का चमत्कार देखिए -

वृद्धिस्थाने गुणादेशात् सहस्त्राशुककीर्तनम्।
सम्यगुत्कलितं राजन्नत्र कान्ततया त्वया॥[2]

इस श्लोक में दुर्मर्षण ऐसी चुभती हुई बात अर्ककीर्ति कहकर युद्ध के लिए प्रेरित करता है - हे राजन! आपने तो अपने राजा नाम के अन्त में **'क'** लगाकर और **'रा'** के स्थान पर **'र'** गुण लाकर हजारों कपड़ों को धोने वाला **रजकपन** ही स्पष्ट कर दिया बता दिया।

दूसरा अर्थ यद्यपि आप सुन्दर और सूर्य के समान तेजस्वी है परन्तु आज तो अपनी महिमा के स्थान पर आपने अपमान ही पाया है।

एक और उदाहरण द्रष्टव्य है -

यदस्ति भक्ताय समक्षतास्मिस्तवः स्वर्गिणि सूपकारः।
व्यधार्यि अस्याभिरहो ललामाशुभक्षणायाञ्जलिरेवसारः॥[3]

जयकुमार गंगा देवी से कहते है - हे देवते ! जिस कारण मुझ जैसे भक्त के लिए साक्षात्कार की प्राप्ति रूप आपका प्रसंग प्राप्त हुआ यह एक बड़ा

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 6/10
2. वही, 7/9
3. जयोदय, उत्तरार्ध 20/80

उपकार है। इसलिए हमने इस शुभक्षण के लिए सार भूत सुन्दर अंजलि बाँधी है। अर्थात् आपने अपने साक्षात्कार का जो अवसर प्रदान किया, उसके लिए में हाथ जोड़कर कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

शिष्ट अर्थ - भात के लिए अच्छे चावलों की प्राप्ति हुई है इसलिए सूपकार - रसोइयाँ आपकी स्तुति - प्रशंसा करता है। इसलिए मैंने उसे खाने के लिए शीघ्र ही अंजलि बाँध रखी है।

अर्थालङ्कार - उपमा

साम्य वा व्यवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।[1]

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार एक वाक्य में दो पदार्थों के वधर्म्य रहित, वाच्य सादृश्य को उपमा कहते हैं। पं. जगन्नाथ ने उपमा की परिभाषा इस प्रकार दी है -

-सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपरकारकमुपमालङ्कृतिः

उपमा के दो भेद हैं - 1. पूर्णोपमा 2. लुप्तोपमा

पूर्णोपमा छः प्रकार की होती है।

1. वाक्यगा श्रोती 2. वाक्यगा आर्थो 3. समासगा श्रोती

4. समासगा आर्थी 5. तद्धितगा श्रोती 6. तद्धितगा आर्थी।

लुप्तोपमा के उन्नीस भेद होते हैं। दोनों के योग से पच्चीस भेद हुए। लुप्तोपमा में सात भेद और होते है। कुल मिलाकर बत्तीस हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक द्वारा पाँच प्रकार के अर्थो का उपकरण होता है। इस प्रकार इसके एक सौ साठ भेद होते हैं।

जयोदय महाकाव्य में उपमा अलंकार -

यतश्च पदमोदयसविधानः सदा सुलेखन्वयसेव्यमानः।
श्रीपञ्चाशाखः सुमनः समूहेश्वरस्य कल्पद्रुरिवास्मदू है।।[2]

कवि ने इस पद्य में राजा जयकुमार के गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि सज्जनों के अधिपति उस राजा का जो पाँच अंगुलियों वाला हाथ था, वह हमारे विचार से इस धरातल पर अवतरित कल्पवृक्ष ही था। कारण वह कमल के सौभाग्य का विधान करने वाला और उत्तम रेखाओं से युक्त था। कल्पवृक्ष भी कमला के उदय को स्पष्ट करने वाला और देवताओं के समूह से

1. सा. दा. 10/14
2. जयोदय महाकाव्य पूर्वार्ध 1/51

सेव्यमान होता है।

जिस प्रकार कल्पवृक्ष सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति करता है उसी प्रकार यह जयकुमार भी था। कवि ने राजा की कल्पवृक्ष से बडी ही मनोहारी उपमा दी है।

उपमा का चमत्कार देखिए -

वाग्मिताऽपि सिता यावद्रसिता वशिताभृतः।
भाष्यावली च दूतास्याल्लालेव निरगादियम्।।[1]

प्रस्तुत श्लोक में काशी से हस्तिनापुर नगर में पहुँच कर दूत राजा जयकुमार को स्वयंबर में आमंत्रित करने के लिए आया तब राजा ने मिश्री के समान अपनी मीठी वाणी से उसका स्वागत किया। तदन्नतर दूत ने राजा के वाग्यव्यहार से आतिथ्य पाकर उसके मुख से लार के समान वाणी मुखरित हो गयी। अर्थात् दूत ने वक्ष्यमाण प्रकार से उत्तर दिया।

कवि ने राजा की वाणी की उपमा मिश्री से दी है। इस पद्य में उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

एक अन्य उदाहरण -

पुष्पाभं हसितं यस्या भ्रूयुगं चापसन्निभम्।
दृश्यते तनुरेतस्याः पुष्पचापपताकिनी।।[2]

दूत सुलोचना के सोन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि इस कन्या की हँसी पुष्प की तरह प्रसन्नता एवं उज्जवलता कारक है। इसकी दोनों भौहें कामदेव के धनुष के आकार की है। इसकी देहयष्टि कामदेव की सेना तथा पताका की तरह है।

कवि ने सुलोचना के शरीर सौन्दर्य की समानता कामदेव की सेना से की है।

अन्य उदाहरण देखिए -

कर्बुरासारसम्भूतं पदमरागगुणान्वितम्।
राजहंसनिषेव्यं च रमणीयं सरो यथा।।[3]

जयकुमार जब काशी में स्वयंबर मण्डप में पहुँचे तब वह स्वयंबर

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/29
2. वही, 3/53
3. वही, 3/76

मण्डप अत्यन्त रमणीय एवं मनोहारी प्रतीत हो रहा था। वह मण्डप सरोवर के समान रमणीय हो रहा था क्योंकि सरोवर में जल का समूह होता है तो मण्डप भी सुवर्ण से बना हुआ है। सरोवर में कमल खिलते हैं तो यह मण्डप भी पदमराग मणि से युक्त है। सरोवर में राजहंस होते हैं तो यह मण्डप भी श्रेष्ट राजाओं से सुशोभित है।

इस पद्य में कवि ने उपमालंकार का सुन्दर विवेचन किया है। उपमागत चमत्कार का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

मुकुरादिसमाधारं मौक्तिकादिस मन्वितम्।
नवविद्रमभूयिष्ठाद्यानमिव मञ्जुलम ॥[1]

प्रस्तुत पद्य में कवि ने अपनी काव्य में निपुणता व्यक्त करते हे श्लिष्टोपमा का बड़ा ही मार्मिक प्रयोग किया है।

वह मण्डप किसी बगीचे की तरह परम सुन्दर है। जैसे कोई बगीचा कलियों से भरा होता है वैसे ही इस मण्डप में चारों ओर दर्पणादि लगे हे है। बगीचे में पुष्पों के पौधे होते है तो इस मण्डप में मोती लटक रहे हैं। बगीचे में नयी कोंपले दिखायी देती है तो यह मण्डप भी मूंगों की झालर आदि से सजा हुआ है।

कवि उपमा प्रयोग में सिद्धहस्त है।

उपमा का लालित्य वक्ष्यमाण श्लोक में दर्शनीय है -

पयोधरसमाश्लिष्टा ध्वजाली विशदांशुका।
तलुनीव लुनीते या विभ्रमैः श्रमभङिगनाम् ॥[2]

काशी के भवनों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने तरुणी के साथ बड़ी ही मनोहारी उपमा की है।

वहाँ के भवनों पर फहराती हुई सफेद वस्त्र की बनी और बादलों को छुती जो ध्वजाओं की पंक्ति है, वह तरूणी की तरह अपने साथ चलने वाले पक्षियों के भ्रमण के सहित प्राणियों का परिश्रम दूर कर देती है। तरुणी भी सफेद साड़ी पहने और सधन कुचों वाली होती है। वह अपने हाव - भाव के द्वारा लोगों के मन को लुभाती और श्रम शान्त करती रहती है।

आसनेषु नृपतीनिह कश्चित् सन्निवेशयति स स्म विपश्चित्।
द्वास्थितो रविकारानवदात उत्पलेषु सरसी व विभातः ॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वा, 3/75
2. वही, 3/82 2. वही, 5/22

स्वयंबर के लिये आये हुए राजाओं को द्वारपाल ने मण्डप में उन राजा लोगों को आसन पर वैसे ही बिठाया, जैसे प्रभात रवि की किरणों को सरोवर स्थित कमलों पर बिठाया करता है।

जिस प्रकार प्रभात सूर्य की किरणों को आदर से बैठाता है उसी प्रकार द्वारपाल ने सभी को अच्वे अच्वे आसनों पर बिठाया। कवि ने बड़ी ही सचित्र उपमा दी है।

उपमा का एक और उदाहरण देखिए -

संवहन्नपि गभीरमाशयमित्यनेन विषमेण सञ्जयः।
केन वा प्रलयजेन सिन्धुवत् क्षोभमाप निलतोऽथ यो भुवः॥[1]

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब सुलोचना स्वयंबर में अर्ककीर्ति जयकुमार से युद्ध के लिए घोषणा करता है। तब गंभीर आशय धारण करने वाला वह जयकुमार भी इस घटना से क्षुब्ध हो उठा, और भूपालक व मर्यादाशील होता हुआ भी वह प्रलयकालीन सुप्रसिद्ध पवन से समुद्र की तरह चंचल हो उठा।

इसमें कवि ने जयकुमार के धैर्य की उपमा समुद्र से बड़ ही प्रभावशाली ढंग से की है। जिस प्रकार समुद्र अत्यन्त गम्भीर, मर्यादाशील होता है, उसी प्रकार यह जयकुमार भी मर्यादाशील था। समुद्र में छोटे-छोटे तूफान आ जायें तो उसको कुछ फर्क नहीं पड़ता जब भयंकर तूफान आता है तभी समुद्र क्षुब्ध होता है। उसी प्रकार राजा जयकुमार असाधारण परिस्थितियों में ही क्षुब्ध होते थे।

उपमा का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें रमणीय चमत्कार का निदर्शन है -

मम समर्थनकृत् समभूत्तु स किमु वदानि वदाभ्युदयद्रुषः।
निपतते हृदयाय विमर्षणः किल तरोः कुसुमाय मरूद्गणः॥[2]

अर्ककीर्ति अपने किये पर पछतावा करता हुआ अकम्पन से कहता है कि राजन! आप ही बताइये मैं क्या कहूँ ? जब मेरा मन रोष में आ गया और अपने स्थान से डिगने लगा तो जिस प्रकार वृक्ष पर से गिरते फूलों के लिए हवा का झोंका सहायक हो जाता है वैसे ही उस विकर्षन ने मुझे सहारा दिया।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/74 2. वही 9/26

कवि अर्ककीर्ति की उपमा फूलों से तथा हवा के झोंके की विकर्षण से करके मनोव्यथा को बहुत प्रभावी बना दिया है।

वेणीयमेणीदॉश एवं भायाच्छ्रेणी सदा मेकलकन्यकाया:।
हरस्य हाराकृतिमादधाना यूनां मनोमोहकरी विधानात्॥[1]

कवि ने सुलोचना के सौन्दर्य को उपमा के द्वारा और हा विशिष्ट बना दिया है।

यह मृगनयनी सुलोचना की ही चोटी सुशोभित हो रही है जो सर्वदा नर्मदा नदी की धारा की भाँति काली और घुँघराली है और भगवान् शंकर के हार के सर्प की आकृति धारण करती हुई अपनी निराली रचना से तरुणों के मन में मोह उत्पन्न करने वाली है।

कवि ने सुलोचना की चोटी की उपमा नर्मदा नदी व शिव के हार से करके मनोहारी व सचित्र वर्णन किया है।

उपमागत चमत्कार का एक अन्य निदर्शन देखिए -

नन्दीश्वरं सम्प्रति देवदेव पिकाघ्गना चूतकसूतमेव।
वस्वौकसारार्कमिवात्र साक्षीकृत्याशु सन्तं मुमुदे मृगाक्षी॥[2]

सुलोचना जयकुमार को देखकर उस प्रकार प्रसन्न हुई जैसे नन्दीश्वर को देखकर इन्द्र, आम्रमंजरी को देख कोयल तथा सूर्य को देखकर कमलिनी प्रसन्न होती है।

कवि ने इस श्लोक में एक साथ कई उपमाओं का प्रयोग किया है। कवि ने उपमाओं की माला सी बना दी है। कवि उपमा के प्रंयोग में सिद्धहस्त है।

जय: प्रचक्राम जिनेश्वरालयं नयप्रधान: सुदृशा समन्वित:।
महाप्रभावच्छविमुन्नतावधिं यथा सुमेरु प्रभयान्वितो रवि:॥[3]

जिस प्रकार प्रभा से सहित सूर्य बहुत भारी प्रभायुक्त छविवाले उत्तुङ्ग सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता है, उसी प्रकार नीतिप्रधान एवं सुलचोना से युक्त जयकुमार ने कान्तिशाली उस जिनमन्दिर की परिक्रमा की।

कवि ने प्रभा तथा सूर्य की उपमा सुलोचना व जयकुमार से दी है, व सुमेरु पर्वत की उपमा जिन मन्दिर से दी है। कवि ने उपमा के द्वारा शाश्वत सत्य की ओर संकेत किया है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 11/70
2. वही, 10/117 3. जयोदय, उत्तरार्ध 24/56

उपमा का लालित्य इस श्लोक में द्रष्टव्य है -

किमु भवेद्विपदामपि सम्पदां भुवि शुचापि रुचापि जगत्सदाम्।
करतलाहतकन्दुकवत् पुनः पतनमुत्पननं च समस्तु नः ।।[1]

इस संसार में जीवों को पृथ्वी पर विपत्तियों का समागम होने पर शोक और सम्पत्तियों का समागम होने पर रूचि से क्या होता है ? अर्थात् कुछ नहीं क्योकि मनुष्यों का उत्थान और पतन हस्ततल से ताड़ित गेंद के समान होता ही रहता है।

जिस प्रकार हाथ से आघात करने पर गेंद उठती और गिरती है उसी प्रकार संसार में भी भाग्यवश पतन व उत्थान होता रहता है। कभी भी एक सी परिस्थितियाँ नहीं रहती है। कभी दुःख है तो कभी सुख।

कवि ने गेंद की उपमा के द्वारा संसार की वास्तविक स्थिति का वर्णन किया है। पर यहाँ जगत् की यर्थात् स्थिति का गेंद के उत्थान - पतन से उपमित कर कवि ने लालित्य का आधान कर दिया है।

गुणविगुणविदं तु स्त्रागमि ख्यापयन्तु
विशदिमविदंशा पेयताङ्केऽत्र हंसाः।
अशुचिपदकतुष्टा आत्मघोषाः सुदुष्टाः
किमिव नहि वराकाः काकुमायान्तु काकाः ।।[2]

स्वच्छता में जिनका स्वभाव प्रवेश कर रहा है, जो काव्य के निर्दोष अंश को ग्रहण कर रहे हैं ऐसे हंस विवेकी मनुष्य आस्वादनीय इस काव्य के विषय में शीघ्र ही गुण और दोषों की समीक्षा करें, परन्तु जो अशुद्ध के पद ग्रहण करने में सन्तुष्ट हैं ऐसे दयनीय दुष्ट पुरूष इस काव्य के विषय में किसी प्रकार भी तर्कणा को प्राप्त न हों।

कवि ने उपमा के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि जो हंस के समान नीरक्षीर विवेकी मनुष्य है वे ही हमारे इस काव्य की समीक्षा के अधिकारी हैं। जो कौआ की तरह आत्मश्लाघी पुरुष हैं वे इस काव्य की समीक्षा के अधिकारी नहीं है।

कवि ने इस महाकाव्य में बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण उपमायें दी है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 25/10
2. वही, 28/91

रुपक अलङ्कार -

रुपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।
तत्परम्परितं साङ्ग निरङ्गमिति च त्रिधा।।[1]

आचार्य मम्मट ने रूपक का स्वरुप इस प्रकार बताया है।

तदुपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[2]

उपमान और उपमेय के अभेद वर्णन को रूपक कहते हैं। जयोदय काव्य से इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

जयोदय महाकाव्य में रूपकगत चमत्कार -

श्री पयोधरभराकुलितायाः संगिरा भुवनसंविदितायाः।
काशिकानृपतिचित्तकलापी सम्मदेन सहसा सभवापि।।[3]

शोभायुक्त पयोधर भर से व्याप्त और भुवनविख्यात उस बुद्धि देवी की यह वाणी सुनकर महाराज अकम्पन का चित्त मयूर एकाएक प्रसन्न हो गया, नाच उठा।

कवि ने इस श्लोक में चित्त पर मयूर के आरोप से राजा अकम्पन का आनन्द विभोर अनायास ही व्यंजित हो उठा।

भुजगोऽस्य च करवीरो द्विषदसुपवनं निपीय पीनतया।
दिशि दिशि मुञ्चति सुयशः कञ्चुकमिति हे सुकेशि रयात्।।[4]

इस श्लोक में विद्या देवी सुलोचना को जयकुमार का परिचय कराती हुई कहती है कि हे सुन्दर केशों वाली! इसके हाथ का खड्गरु (तलवार रुप) सांप वेरियों के प्राण रुपी पवन को पीकर मोटा - ताजा हो जाता है और प्रत्येक दिशा में इसकी रुपी काँचली छोड़ता है।

यहाँ पर राजा के हाथ पर सर्प का आरोप करने में और शत्रु के प्राण पर पवन का आरोप तथा यश पर केंचुल का आरोप प्रभावी है। अतः यहाँ रुपक अलंकार है।

रूपक का लालित्य द्रष्टव्य है -

तस्य शुद्धतरवारिसञ्चरे शौर्यसुन्दरसरोवरे तरैः।
ईक्षितुं श्रियमुदस्फुरदभुजा शौचवर्मनि गुणेन नीरूजा।।[5]

जयकुमार के वीर की प्रशंसा कवि करता हुआ कहता है कि उस

---

1. सा. दा. 10/28 2. का. प्र. 10/139

3. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 5/55 4. वही 6/106 5. वही, 7/84

जयकुमार की भुजा शूर वीरतारुप सरोवर में जो कि शुद्धतर वारि अर्थात् खड्गरुप निर्मल जल के संचार से युक्त था, नौका रूप में अपनी सोभा निहारने के लिए स्फुरित हो उठी अर्थात् नृत्य करने लगी। वह भुजा पवित्र मार्ग पर चलने वाली निर्मल स्वास्थ्यादि गुणों से युक्त थी।

यहाँ पर भुजा, शौर्य, खड्ग पर क्रमशः नौका, सरोवर, निर्मल जल संचार का अभेद आरोप होने के कारण रूपक है।

इसमें रूपक का सौन्दर्य देखिए –

वक्राः पताकाः करिणोऽम्बुवाहाः शरा मयूरास्तडितोऽसिका हा।
ठक्कानिनादस्तनितानुवादः सुधी रणं बर्बणमुज्जगाद॥[1]

इसमें जयकुमार व अर्ककीर्ति के युद्ध का वर्णन है। उस समय रण को सुधीजन ने वर्षाकाल के समान कहा। कारण उसमें पताका ही बगुले थे हाथी ही बादल थें, मयूर के स्थान पर बाण थे, चमकती हुई तलवारें बिजली का काम कर रही थी। वहाँ नगाड़े की धअवनि मेघगर्जना का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

कवि ने इसमें युद्ध पर वर्षाकाल का आरोप किया है। ध्वजों, हाथिथयों, वाणों, तलवारों और नगाड़े की आवाज क्रमशः बगुलों, बादलों, मोरों, बिजली और बादलों की गर्जना से अभेद स्थापित करने के कारण रुपक अलङकार है।

मृदुलदुग्धकला क्षरिणी स्वतः किमिति गोपतिगोरूदिता यतः।
समभवत खलु वत्सकवत् सकश्चरवरोऽप्युपकल्पधरोऽनकः॥[2]

इस पद्य में भरत चक्रवर्ती की वाणी की प्रशंसा व्यक्त की है। चक्रवर्ती की वाणी रुपी गाय मानों स्वयं ही मृदुल मीठा दूध प्रवाहित करने वाली बनकर प्रकट हुई, जिसमें वह निर्दोष दूत निश्चय ही बछड़े के समान सहायक सिद्ध हुआ।

कवि ने इस श्लोक में वाणी पर गाय का और दूत पर बछड़े का आरोप कर रूपक के माध्यम से बड़ा ही चित्त को आकर्षित करने वाला वर्णन किया है।

रूपक का एक और उदाहरण देखिए –

यत्नोऽमृताश्रमपरेण च रवेन तात –
ख्यात! प्रभातहविरासन एष जातः।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/62
2. वही, 9/71

भिन्ने भवत्यमृतधामनि नाम शुम्भत् -
स्वर्णस्य संकलितुमत्र नवीनकुम्भम् ॥[1]

कवि ने इसमें प्रातःकाल का मनोहारी वर्णन किया है। पूर्व दिशा में उदित होता हुआ लाल - लाल सूर्य ऐसा प्रतीत होता है मानों आकाशरुपी दुग्धाधिकारी के द्वारा अग्नि में तपाकर स्वर्ण का नवीन घट बनाया जा रहा हो। चन्द्रमा रुपी घट के नष्ट हो जाने पर नवीन घट का बनाया जाना उचित है। चन्द्रमा रुपी चाँदी का मटका फूट गया अतः अब मजबूती की दृष्टि से सुवर्ण का घट बनाया जा रहा है।

आचार्य भूरामल जी ने रूपक के माध्यम से अपनी कल्पना को साकार रूप दिया है।

रूपक का लालित्य वक्ष्यमाण पंक्तियों में -

मत्स्यकेरपि वराशयः समाः सत्तरङ्गतरलास्तुरङ्गमाः।
सामजा हि मकरानुकारिणः सैन्यसागर इहाभिसारिणः ॥[2]

जयकुमार की सेना का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि इस सेनारुपी समुद्र में चलने वाले जो गेंड़े थे वे मच्छों के समान थे, जो घोड़े थे वे चंचल तरंगों के समान और जो हाथी थे वे मगरों के समान थे।

जयकुमार की सेना इतनी विशाल थी जो लहराते समुद्र के समान थी। महाकवि ने रूपक अलंकार के द्वारा सेना को समुद्र जैसा चित्रित किया है।

रूपक की संयोजना देखिए -

संसारसागरसुतीरवदादिवीर -
श्रीपादपादपपदं समवाप धीरः।
तत्राऽऽनर्मस्तु झरदुत्तरलाक्षिमत्वा -
न्मुक्ताफलानि ललितानि समाप सत्वात् ॥[3]

धीर वीर जयकुमार ने संसार रूपी सागर के उत्तम तटस्वरूप भगवान् वृषभदेव के चरणरूप वृक्ष के स्थान को प्राप्त किया। वहाँ नमस्कार करते हुए उन्होंने सात्विक भाव के कारण झरती हुई चंचल आँखों से युक्त हो मनोहर मोती प्राप्त किये।

अर्थात् भगवान् वृषभदेव के चरणों का सान्निध्य पाकर उनके नेत्रों से हर्ष के आँसू निकलने लगे। वे अश्रुकण मोतियों के समान प्रतीत होते थे।

1. जयोदयमाहाकव्य, उत्तरार्ध, 18/44
2. वही, 21/8, 3. वही, 26/69

कवि ने इस श्लोक में संसार समुद्र एवं श्री पादपादप पर रुपक से संसार की विशालता, गहनता, भगवान् के चरणों की शान्तिप्रदायकता के दर्शन कराये हैं।

उत्प्रेक्षा अलङ्कार :-

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।[1]

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमेय को उपमान के साथ एक रुपता की सम्भावना उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। उत्प्रेक्षा दो प्रकार की होती है-

1. वाच्योत्प्रेक्षा

2. प्रतीयमान उत्प्रेक्षा

आचार्य विश्वनाथ ने इसके भेद उपभेद किये हैं -

वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः।
जातिर्गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि॥
तदष्टधापि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः।
गुणक्रियास्वरुपत्वान्निमित्तस्य पुनश्चताः॥
द्वात्रिंशंद्विधतां यान्ति।[2]

जयोदय महाकाव्य में उत्प्रेक्षागत चमत्कार -

अहीनलम्बे भुजमञ्जुदण्डे विनिर्जिताखण्डलशुण्डिशुण्डे।
परायणायां भुवि भूपतेः स शुचेव शुक्लत्वमवाप शेषः॥[3]

आचार्य भूरामल जी ने राजा जयकुमार के पराक्रम और शक्तिशालिता की अभिव्यक्ति उत्प्रेक्षा के द्वारा बड़ी ही मनोहारी की है।

राजा जयकुमार के भुजदण्ड सर्पराज शेष के समान लम्बे थे और उन्होंने इन्द्र के ऐरावत हाथी को भी जीत लिया। महाराज के ऐसे भुजदण्डों के भरोसे यह सारी पृथ्वी सुदृढ बन गयी। मानो इसी सोच में शेषनाग सफेद पड़ गया।

उत्प्रेक्षा की एक और बानगी द्रष्टव्य है -

समुत्कीर्य करावस्या विधिना विधिवेदिना।
तच्छेषाशेः कृतान्येव पङ्कजानीति सिद्ध्यति॥[4]

इस श्लोक में सुलोचना के हाथों के सौन्दर्य का वर्णन है। विधि के

---

1. का. प्र. 10/137 2. सा.दा. 10/41-43

3. जयोदय पूर्वार्ध, 1/25 4. वही, 3/50

ज्ञाता विधाता ने इस सुलोचना के दोनों हाथों को भली भाँति बनाकर उसके बचे कूड़े करकर से कमलों को बनाया। इसीलिए उनका कीचड़ पैदा होने वाला पंकज नाम सार्थक सिद्ध होता है।

सुलोचना के सुन्दर हाथ के सम्बन्ध में कवि ने सम्भावना की है।

आस्येन चास्याश्च सुधाकरस्य स्मिताशुभासा तुलया धृतस्य।
उनस्य नूनं भरणाय सन्ति लसन्त्यमूनि प्रतिमा नवन्ति॥[1]

आचार्य ज्ञान सागर जी ने सुलोचना के अप्रतिम मुख सौन्दर्य का वर्णन किया है।

किरणों से सुलोचना के मुख के साथ तुलना के लिए तुला पर रखा गया चन्द्रमा कम पड़ गया। अतः उसकी पूर्ति के लिए निमित्त दीख पड़ने वाले नक्षत्र नाम के छोटे मोटे बाट शोभित हो रहे हैं। सुलोचना के आगे चन्द्रमा की कान्ति भी कम है उसे अपनी कान्ति को बढाने के लिए नक्षत्रों का सहारा लेना पड रहा है।

कवि की यह कल्पना बड़ी ही अनूठी व अद्भुत है।

उत्प्रेक्षा का मंजुल निदर्शन देखिए -

अप्राणकैः प्राणभूतां प्रतीकैरमानि चाजिः प्रतता सतीकैः।
अभीष्टसभारवती विशालाऽसौ विश्वसृष्ट खलु शिल्पशाला॥[2]

जयकुमार व अर्ककीर्ति के महायुद्ध के युद्ध भूमि का वर्णन है। यह रणभूमि योद्धाओं के कटे निष्प्राण हाथ, पैर, सिर आदि अवयवों से भर गयी थी। कुछ लोगों को ऐसी प्रतीति होती थी कि मानों वांछित सामग्री पूर्ण विश्वकर्मा की शिल्पशाला ही हो।

छिन्न भिन्न अंगों से भरी हुई युद्ध भूमि की विशाल शिल्पशाला से सम्भावना की गयी है। खलु शब्द के प्रयोग होने से यह वाच्योत्प्रेक्षा है।

मासि मासि सकलान्विधुबिम्बानात्मभूस्तिरयते श्रितडिम्बान्।[3]
सन्निधाप्य विबुधः स मनीषामाननानि रचितुं स्विदमीषाम॥

विद्वान विधाता ने प्रत्येक मास के अन्त में होने वाले कला सहित चन्द्रमा के बिम्बों को जो विप्लव था विनाश का आश्रय ग्रहण करते हैं, जो छिपाया वह मानों इन्हीं राजाओं के मुखों को बनाने की इच्छा से ही छिपाया हो।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 5/82
2. वही, 8/37   3. वही, 5/23

इस श्लोक में अमावस्या के चन्द्र बिम्बों का उदय विधाता ने इसलिए नहीं दिया कि इन्हें राजाओं के मुखों का निर्माण करने के लिए चन्द्रविम्बों की आवश्यकता थी।

यह उत्प्रेक्षा कवि के अनन्य कौशल की द्योतक है।

धराभितप्तेति विदां निधाय समेति तस्या अभिषेचनाय।
समात्तसप्ताश्वकशातकुम्भकुम्भान्तिमाम्भोधिमियं दिनश्रीः ॥[1]

पृथ्वी संतप्त है ऐसी बुद्धि धारण कर उसका अभिषेक करने के लिए दिन श्री नामक कोई स्त्री सूर्य रुपी स्वर्ण कलश लेकर पश्चिम समुद्र को गई है। सन्ध्या समय लालवर्ण वाला सूर्य पश्चिम समुद्र के समीप पहुँचा है। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि जगन्माता पृथ्वी को संतप्त देख उसे नहलाने के लिए मानों दिन श्री नामक कोई स्त्री सूर्यरुपी स्वर्णकलश को लेकर पानी लेने के लिए पश्चिम समुद्र के पास गयी है।

कवि ने सूर्य को दिन श्री का कुम्भ बनाया है।

इस श्लोक में कवि की मौलिक उत्प्रेक्षा का चमत्कार देखिए -

व्योम्नि स्थितिं भरुचितां समतीत्य दीने
राज्ञोऽपवर्तनदशा प्रतिपद्य हीने
सद्योऽथवाभ्युदयमेतरि भावनाना -
माघेऽर्थवत्यपि पदे विकृतोक्तिमानात् ॥[2]

जब आकाश राजा - चन्द्रमा (पक्ष में नृपति) की अपवर्तन दशा, अस्तोन्मुख अवस्था (पक्ष में कुत्सित शासन प्रवृत्ति) को प्राप्त कर भरुचितां- नक्षत्रों से देदीप्यमानता (पक्ष में भरू-चिन्तां-सुवर्ण सम्पननता) को छोड़कर दीन हो गया - प्रभाहीन हो गया(पक्ष में निर्धन हो गया) तथा सूर्य शीघ्र ही अभ्युदय उदय (पक्ष में सम्पन्नता) को प्राप्त हो गया, तब पक्षी अपनी कलकल ध्वनि से आगलोक्त बारह भावनाओं में से प्रथम भावना - अनित्य भावना को सार्थक कर रहे थे। भाव यह है कि चन्द्रमा रुपी एक राजा का अस्त होना और सूर्य रुपी अन्य राजा का उदित होना इससे संसार की अनित्यता को पक्षी अपनी कलकल ध्वनि से प्रकट कर रहे हैं। पक्षीयों के द्वारा कवि ने उत्प्रेक्षा की है। उत्प्रेयागत सौन्दर्य का एक अन्य निदर्शन द्रष्टव्य है -

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 15/16
2. वही, 18/8

लुप्तोरूरत्ननिचये वियतीव ताते चन्द्रे तु निष्करदशामधुना प्रयाते।[1]
धूमेऽपकर्मनयने द्रुतमेव जाते मन्दं चरत्यभिगमाय किलेति वाते॥

प्रात: बेला में वायु मन्द - मन्द चल रही है, क्यों इसके लिए कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि सबके लिए आश्रय देने से पिता के तुल्य जो आकाश था, उसका विशाल रत्नों का संग्र (नक्षत्र समूह) लुप्त हो गया लूट लिया गया। पुत्र तुल्य जो चन्द्रमा था वह किरण रहित (पक्ष में हस्त रहित) अवस्था को प्राप्त हो गया अर्थात् चन्द्रमा आकाश के लुप्त रत्नों को खोजने में असमर्थ हो गया और रात्रि में विचरने वाले जो उलूक थे उनके नेत्र देखने में असमर्थ हो गये, अत: किसी सहायक को न पाकर वायु स्वयं ही उन लुप्त रत्नों के समूह को खोजने के लिए ही मानों धीरे - धीरे चल रही थी।

चन्द्रोऽस्पृशत्कमलिनीमहसत्कमोदि -
न्येतद्द्वयेऽरूणदृगर्यमराड् विनोदिन्।
स्त्रागभ्युदेति किल तेन कुमुद्वतीयं
मौनिन्यभूच्छशभृदेति च शोचनीयम्॥[2]

हे विनोद रसिक! चन्द्रमा ने कमलिनी का स्पर्श किया, यह देख कुमुदिनी ने हँस दिया। इन दोनों कार्यो पर क्रोध से लाल-लाल नेत्र करता हुआ सूर्य रूपी राजा शीघ्र ही उदय को प्राप्त हो रहा है। इससे कुमुदिनी तो मौन लेकर बैठ गई, निमीलित हो गई और चन्द्रमा शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो गया।

कवि ने इस श्लोक में उत्प्रेक्षा के द्वारा कुमुदिनी की निमीलन, सूर्य का उदय, चन्द्रमा की निष्प्रभता का वर्णन एक साथ ही एक श्लोक में बड़ी कुशलता के साथ किया है।

उत्प्रेक्षा की एक और बानगी -

प्रपञ्चशाखो ग्रहणौ जयस्य तो गुणेन बद्धो तु विभोर्बभूवतुः।
भयाकुलेवेत्यपि भारती तदा तदात्मिका सा निरगात् स्वतद्रमतः॥[3]

प्रपंचशाख पाँच - पाँच अंगुलियों से सहित (पक्ष में प्रपंच प्रतारणा विस्तृत करने वाले) जयकुमार के हाथ भगवान् के क्षमा - सत्य संयमादि गुणों से (पक्ष में रस्सी से) बद्ध हो गये, बंध गये, यह देख प्रपंच प्रतारणा (पक्ष में विस्तार) करने वाली उनकी वाणी भी भयभीत होकर मुखरूप धर से धीरे - धीरे निकल रही थी।

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 18/4
2. वही, उत्तरार्धा, 18/38 3. वही, उत्तरार्धा, 24/85

जयकुमार ने जाप के बाद दोनों हाथों को जोड़कर मन्द स्वर से कुछ पाठ पढ़ा। इसी का वर्णन कवि ने उत्प्रेक्षा के द्वारा करके उसको मनोहारी कर दिया है।

सन्देहालङ्कार -

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः।[1]

सन्देह अलंकार वह है जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान (समेत) के साथ संशयात्मक ज्ञान होता है, और वह (उपमेय तथा उपमान) के भेद की युक्ति अथवा अनुक्ति से दो प्रकार का होता है।

जयोदय महाकाव्य में सन्देह अलंकार -

किमिन्दिराऽसौ न तु तुसाऽकुलीना कला विधोःसा नकलंकहीना।
रतिःसतीयं न तु सा त्वदृश्या प्रतर्कितं राजकुलैः स्विदस्याम्॥[2]

सुलोचना को देखकर राजपुत्र आपस में बातचीत करते हैं कि क्या यह लक्ष्मी है ? नहीं, लक्षअमी तो अकुलीन होती है अर्थात् वह पृथ्वी में लीन नहीं होती। अतः कुलहीना है, जबकि वह उच्चकुल में पैदा हुई है। यह चन्द्रमा की कला भी नहीं है, क्योंकि वह कलंक से रहित नहीं है, जबकि यह कलंक रहित है। यह रति भी नहीं है, क्योंकि रति तो दृश्य नहीं होती और यह दृश्य है।

इस श्लोक में निश्चय गर्भ सन्देह अलंकार है।

एक अन्य पद्य में उक्त चमत्कार अवलोकनीय है -

अलिकोचितसीम्नि कुन्तला विबभूवः सुतनोरनाकुलाः।[3]
सुविशेषकदीपसम्भवा विलसन्तयोऽञ्जनराजयो न वा॥

नताङ्गी सुलोचना के ललाट प्रदेश में संवारे गये केशों ने लोगों को संशय में डाल दिया कि यह तिलक रुपी दीपक से उत्पन्न कहीं कज्जल का समूह तो नहीं है ?

इसमें सुलोचना के केशों में कज्जल होने का सन्देह है, अतः सन्देह अलङ्कार है।

एक अन्य उदाहरण में भी इसका चमत्कार दर्शनीय है -

---

1. का. प्र. 10/138
2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 5/88 3. वही 10/33

शशिनस्त्वास्ये रदेषु भानां कचनिवयेऽपि च तमसो भानाम्।[1]
समुदितभावं हता शर्वरीयं समस्ति मदनैकम जरी॥

मुख में चन्द्रमा की, दाँतों में नक्षत्रों की और कैशपाश में अन्धकार की इस तरह इन तीनों की सम्मिलित शोभा को पाकर यह सुलोचना साक्षात् रात्रि या फिर कामदेव की पुष्प-कलिका है।

इस श्लोक में सन्देह सुलोचना के मुख एं दातों में चन्द्रमा व नक्षत्रों का तथा केशों में कालिमा का व्यंजक है।

एक और सन्देह की बानगी -

मनोभुवा पाण्डुनि कपोलके नतभुवः प्रतिबिम्बतालके।
स्फुरदगुरूदरो (लो) दारशङकया मृष्टमिहारब्धं व्यस्यया॥[2]

नीचे की ओर देखने वाली किसी स्त्री के गाल काम व्यथा से पाण्डुवर्ण स्वच्छ हो गये और उनमें उसी के केशों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। सामने खड़ी उसकी सहेली ने समझा कि यह इसके कपोलों पर अगुरुपत्र से निर्मित काली काली पत्र रचना है। अतः उसने उसे धोना शुरु कर दिया।

कवि ने सन्देहालंकार के माध्यम से बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है।

भ्रान्तिमान् अलंकार -

साम्यादतास्मिस्तद्बुद्धि र्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः[3]

जहाँ प्रतिभोत्थापित अन्य वस्तु में सादृश्य वश अन्य वस्तु की भ्रान्ति हो वहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार होता है।

जयोदयमहाकाव्य गत भ्रान्तिमान अलंकार -

सेवेकेऽपि समभूद्गुणवर्गः पाटवाभरणविभ्रमसर्गः।
तं स्मयेन जनता मनुतेऽरं नायकं कमपि सुन्दरवेरम्॥[4]

स्वयंबर में आये राजाओं के सेवकों को भी देखने वाले लोग उन्हें सेवक न मानकर नायक ही समझते थे, क्योंकि वे सुन्दर शरीर वाले, उन सेवकों में भी चतुरता, अच्छे वस्त्राभूषण एवं विभ्रमयुक्तता आदि समुचित गुण थे। अतः देखने वालों को सेवक भी उक्त गुणों के कारण राजा ही लगते थे।

इसमें लोगों को सेवकों में राजाओं का भ्रम हो गया।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूवार्ध, 11/93
2. वही, उत्तरार्ध, 14/60
3. सा. दा. 10/36 4. जयोदय पुर्वार्ध, 5/30

एक और पद्य देखिए

विलूनमन्यस्य शिरः सजोषं प्रोत्पत्तय खात्संपतदिष्टपौषम्।[1]
वक्रोडुपे किम्पुरुषाङ्गनाभिः क्लृप्तावलोक्याथ च राहुणा भीः॥

जोश के साथ छेदा गया किसी योद्धा का सिर आकाश में उछल कर वापस पृथ्वी पर गिरने जा रहा था। उसे उस तरह आता देख वहाँ स्थित किन्नरियाँ भयभीत हो उठी कि कहीं हमारे मुखचन्द्र को राहु ग्रसने के लिए तो नहीं आ रहा है।

किन्नरियों को सिर में राहु का भ्रम हो गया। सुन्दर कल्पना है।

एक अन्य दृष्टान्त पर दृष्टिपात कीजिये -

शातकुम्भकृतकुम्भमनल्पदुग्धक मुरोरुहकल्पम्।
जानती तमपि वाञ्चलकेनाच्छादयत् स्वमुपपद्य निरेनाः॥[2]

निष्पाप किसी स्त्री ने स्वर्ण - निर्मित और दूध से भरे घड़े को स्वयं ही अपने स्तन के समान समझ कर उसे आँचल से ढँक लिया। भ्रान्तिमान् का चमत्कार अन्यत्र द्रष्टव्य है -

पुलिने चलनेन केवलं वलितग्रीवमुपस्थितो बकः।
मनसि वज्रतां मनस्विनामतन्नोच्छवेतसरोजसम्भ्रमम्॥[3]

सुलोचना के साथ जयकुमार के विदा हो जाने पर मार्ग में गंगा नदी पड़ी। उसी के तट पर बगुलों का ऐसा वर्णन किया गया है कि एक बगुला एक पैर से खड़ा होकर अपनी ग्रीवा को टेढ़ा कर दिया है, यह बगुला विवेकीजनों के मन में श्वेत कमल का भ्रम उत्पन्न कर रहा है। यहाँ बगुले में कमल की भ्रान्ति होना ही भ्रान्तिमान् का आभास कराता है।

भ्रान्तिमान की एक और बानगी देखिए -

आत्तमात्तमप्यञ्जलौ जलमधीरनेत्रा सिञ्चितुं बलम् (रम)[4]
निजनेत्रप्रतिबिम्बसंश्रयाज्जहावहो सविसारशङकया॥

कोई यंचलाक्षी पति को नहलाने के लिए अंजलि में बार-बार पानी लेती थी परन्तु उसमें अपने ही नेत्रों का प्रतिबिम्ब पड़ने से उसे मछलियों की शङ्का हो जाती थी। इसलिए वह पानी को यूँ ही छोड़ देती थी।

नेत्रों में मछलियों के भ्रम से यहां भ्रान्तिमान् अलंकार है। इसके द्वारा

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/34   2. वही, 10/104
3. वही, 13/63   4. वही उत्तरार्ध 14/59

कवि ने बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। यहाँ चमत्कार यह है कि नेत्रों का आकार मछली के समान माना गया है और जिस प्रकार मछली जल में रहती है उसी प्रकार वे ही नेत्र सुन्दर होते हैं जो सरस होते हैं तथा जिनमें तरलता होती है।

अपह्नुति अलङ्कार :-

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः[1]

जहाँ प्रकृत अर्थात् (उपमेय) का निषेध करके अन्य अर्थात् उपमान की सिद्धि की जाती है वह अपह्नुति अलंकार है।

जयोदय महाकाव्य में अपह्नुति गत चमत्कार -

नाभिस्तु मध्यदेशेऽस्याः सरसा रसकूपिका।
लोभलाजिच्छलेनैतत्पर्यन्ते शाड्वलावलिः ।।[2]

आचार्य ज्ञान सागर जी ने इस श्लोक में अपह्नुति अलंकार के माध्यम से सुलोचना की नाभि का वर्णन बड़ा ही सरस किया है।

इस सुलोचना के मध्यदेश (उदर) में जो नाभि है, वह तो रसभरी बावड़ी ही है। इसलिए उसके चारों और रामराजि के व्याज से हरी हरी घास, बालतृण लगे हुए हैं।

द्विपवृन्दपदादिदगम्बरः सघनीभूय बने चरत्ययम्।
निकटे विकटेऽत्र भो विभो ननु भानोरपि निर्भयस्त्वयम् ।।[3]

जब राजा जयकुमार अपनी सेना के सहित अपने नगर के लिए प्रयाण करते हैं तब रास्ते में वन में पड़ाव डालते हैं। तब जयकुमार से एक व्यक्ति कह रहा है कि यह अन्धकार हाथियों के झुण्ड के बहाने से इकट्ठा होकर इस विराट वन में भानु से भी निर्भय होकर समीप ही विवरण कर रहा है। अर्थात् यह वन इतना सघन है कि दिन में भी जहाँ पर अंधेरा दिख रहा है। इस श्लोक में छल, कपट, व्याज आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। अर्थात् इनके अर्थ से ही अपह्नुति अलंकार निष्पन्न होता है। क्योकि हाथियों के व्याज से घनान्धकार एकत्रित है जो विचरण कर रहा है।

अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग देखिये -

पङ्केजातं जितं मुखेन तव सुकेशि! साम्प्रतमसुखेन।
मूर्ध्नि मिलिन्दावलिच्छलेन कृपाणपुत्रीं क्षिपदिव तेन ।।[4]

---

1. का. प्र. 10/146 2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/47
3. वही, 13/48 4. वही, उत्तरार्ध 14/51

सुलोचना के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए जयकुमार कहते हैं कि हे कुकेशि! इस समय तुम्हारे मुख ने कमलों को जीत लिया है, इसलिए वह खेद से भ्रमरावलि के बहाने अपने मस्तक पर मानों छुरी चला रहा है।

प्रस्तुत श्लोक में सुलोचना के सिर पर विद्यमान घूंघराले बालों का निषेध करके वहाँ पर तलवार का प्रयोग किया है। इसलिए यहाँ अपह्नुति अलंकार है।

सच्चमूक्रमसमुच्चलद्रजोव्याजतो व्रजति सा स्म भूभुंजः।
नीरूजोऽस्य विरहासहा सती पृष्ठतो वसूमती व सम्प्रति॥[1]

जयकुमार की सेना के पदाघात से जो धूलि उड़ रही थी उससे ऐसा जान पड़ता था मानो निरोग राजा के विरह को सहन करने में असमर्थ होती हुई पृथ्वी ही धूलि के बहाने पीछे चल रही हो।

सेना के पदाघात से उड़ती हुई धूल के सम्बन्ध में आचार्य ज्ञानसागर जी ने बड़ी ही अनूठी कल्पना की है।

अपह्नुति का मंजुल निदर्शन देखिए -

समाप शस्त्रेण सता शतक्रतोरयं च मुग्धे महतीं हतिं पुरा।
व्रणानि नानोपहतानि जन्तुभिर्विभान्ति भो गह्वरनामतोऽधुना॥[2]

जयकुमार सुलोचना से कहते है कि हे सुन्दरि! इस पर्वत ने पूर्वकाल में इन्द्र के शक्तिशाली शस्त्र से बहुत भारी क्षति प्राप्त की थी। उस समय जो घाव हो गये थे वे ही इस समय नाना जन्तुओं से युक्त गुफाओं के रुप में विद्यमान हैं।

ये गुफायें नहीं घाव है और पुराने होने के कारण उनमें कीड़े पड़ गये हैं। इस श्लोक में सच्ची बात को झूठी और झूठी को सच्ची बतलाया है। प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत की सिद्धि होने से अपह्नुति अलंकार है।

अपह्नुति का एक और चमत्कार अवलोकनीय है -

व्यमुञ्चदेकार्थतयैकतां गतौ स रागरोषाविह दीपदम्भतः।[3]
निजक्रियासम्भ्रमिदर्शिनो पुनर्जवाज्जयःस्वस्वक्रवर्णलक्षणो॥

कवि ने जयकुमार के द्वारा जिनेन्द्र भगवान् की पूजा अर्चना को अपह्नुति के द्वारा अच्छी प्रकार से संयोजन किया है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 21/14
2. वही, उत्तरार्ध, 24/40 3. वही, 24/78

जयकुमार ने शीघ्र ही दीपक के छल से एक प्रयोजनता को प्राप्त रागद्वेष को छोड़ दिया था, क्योंकि रागद्वेष और दीपक दोनों ही अपनी अपनी संभ्रमण रूप क्रिया को देख रहे थे तथा दोनों ही अपने वर्ण रूप लक्षण को धारण करने वाले थे। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार दीपक, प्रकाश और कज्जल रूप होते हैं, वायु वेग से हलन-चलन रूप होते हैं, उसी प्रकार रागद्वेष भी शुभ, अशुभ रूप होते है और संसार परिभ्रमण के कारण कहलाते हैं।

श्लेष अलङ्कार

आचार्य विश्वनाथ ने श्लेष का लक्षण इस प्रकार किया है -

शब्दैः स्वभावादेकार्थे श्लेषोऽनेकार्थवाचनम्।[1]

जहाँ एक ही वाक्य में अनेक अर्थ का भाव हो वहाँ श्लेष अलंकार होता है। शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष के द्वारा ही अर्थ का बोध होता है।

जयोदयमहाकाव्य में श्लेष अलंकारगत चमत्करा -

जगति भास्कर एष नरर्षभो भवति भव्यपयोरूहवल्लभः।
लसति कौमुदमप्यनुभावयन्नमृतगुत्वयुगित्यपि च स्वयम्।।[2]

पुरुषों में श्रेष्ठ ये मुनिनायक इस संसार में सज्जन रूप कमलों के प्रति पात्र और प्राणिमात्र को शिक्षा, ज्ञान देने वाले हैं। साथ ही भूमण्डल पर हर्ष विस्तारित करते हुए ये अनायास ही अमृतवत् जीवन दायक और मधुर अहिंसा धर्मोपदेशक भी होकर शोभित हो रहे हैं।

कवि ने श्लेष के चमत्कार से मुनि को एक साथ सूर्य और चन्द्रमा बना दिया है। ये दोनों कभी एक नहीं होते। यह मुनिनायक की विशेषता है कि वे दोनों ही थे।

इस पद्य नें भास्कर का अर्थ सूर्य भी है और उसका विश्लेषण **भव्यपयोरूहवल्लभः** का अर्थ सुन्दर कमलों का विकास करने के कारण प्रीतिपात्र है। इसी प्रकार अमृतगुत्वयुग का अर्थ है अमृतमयी किरमों से युक्त चन्द्रमा जो कौमुदम् अर्थात् कुमुदों को विकसित करते हुए उनका हर्ष बढ़ाता है।

इस प्रकार से कवि ने मुनि नायक को चन्द्रमा व सूर्य दोनों ही बना दिया है। ये दोनों कभी एक नहीं होते, यही विलक्षणता है जिसके कारण यहाँ रमणीयता के दर्शन होते हैं।

---

1. सा. दा. 10/57 2.जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध 1/96

एक अन्य निदर्शन दर्शनीय है -

दूतवत्तु चरकार्यतत्पराः श्रोत्रिया इव च सुश्रुतादराः।
यत्र ते नटवदिष्टवाग्भटाः स्मावभान्ति भिषजोऽद्भुतच्छटाः ॥[1]

वहाँ के वैद्य अपूर्व छटा वाले थे, क्योंकि वह नट की तरह वाग्भट थे अर्थात् जैसे नट बोलने में बड़ा चतुर होता है वैसे ही ये वैद्य भी अष्टांग हृदय ग्रन्थकार वाग्भटाचार्य को मानते थे। जिस प्रकार श्रोत्रिय उत्तम आगम का आदर करते हैं उसी प्रकार वहाँ के वैद्य सुश्रुत सहिताकार सुश्रुताचार्य का आदर करते थे। जिस प्रकार दूत चर कार्य तत्पर रहता है उसी प्रकार वैद्य भी चरकसंहिता कार चरकाचार्य के प्रति अनुराग रखते थे।

कवि ने इस पद्य में श्लेषोपमा के द्वारा हस्तिनापुर के वैद्यों को वाग्भटाचार्य, सुश्रुताचार्य चरकाचार्य का आदर करने वाला बताया है।

श्लेष की छटा निम्नलिखित श्लोक में भी देखी जा सकती है -

या सभा सुरपतेरथ भूताऽसौ ततोऽपि पुनरस्ति सुपूता।
साऽधरा स्फुटममर्त्यपरीताऽसौ तु मर्त्यपतिभिः परिणीता ॥[2]

यद्यपि सभी के रुप में इन्द्र की सभा भी प्रसिद्ध है फिर यह स्वयंबर सभा उससे भी बढ़कर है क्योंकि इन्द्र की सभा तो अधर है और अमर्त्य सहित है किन्तु यह सभा धरापर स्थित होकर मर्त्यपतियों से युक्त है।

इस पद्य में अधर के दो अर्थ हैं - अधर का अर्थ नीच और धरापर स्थित न होकर आसमान में स्थित है। इसी प्रकार अमर्त्य का दो अर्थ है। अमर्त्य शब्द का अर्थ देव और मनुष्य नहीं ऐसा भी होता है।

कवि ने श्लेष के द्वारा स्वयंवर सभा का सुन्दर वर्णन किया है।

कोषापेक्षी करजितवसुधोऽयं भूरिधा कथाधारः।
शैलोचितकरिचयवान् इह कम्पमुपैतु रिपुसारः ॥[3]

कवि इसमें कलिंग राजा का वर्णन करते हुए कहता है कि यह राजा अखण्ड खजाने वाला है। सम्पूर्ण पृथ्वी से कर लेता है इस राजा की अनेक लोग अनेक तरह से कथा गाते हैं, तथा यह पर्वत के समान हाथियों के समूह वाला है। अतः इसके सामने शत्रुशिरोमणि भी काँपने लगते हैं।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 3/16
2. वही, 5/31
3. जयोदय पुर्वार्ध 6/24

इस पद्य का श्लेष के द्वारा दूसरा अर्थ यह है – कलिंगराज के इन्हीं विशेषणों में जहाँ **क** है, वहाँ उसके शत्रु **प** को प्राप्त करते हैं अर्थात् पोषापेक्षी उदरापोषण की अपेक्षा वाले है। परजितवसुधा जिनकी भूमिशत्रुओं ने जीत ली है। भूरिधा पयाधारः भयभीत हो इधर-उधर भटकने वाले शैलोचित परिचय वाले अर्थात पर्वतवासी हैं।

कवि ने श्लेष के द्वारा कलिंगराज का मनोहारी चित्र खींचा है।

एक और वक्ष्यमाण श्लोक का आननन्द लीजिए –

सोमजोज्ज्वलगुणोदयान्वयाः सम्बभःसपदि कौमुदाश्रयाः।
येऽर्कतैजस वशंगताः परे भूतले कमलता प्रपेदिरे॥[1]

प्रस्तुत पद्य में कहा गया है कि सोम या चन्द्रमा के गुणों से प्रेम रखने वाले रात्रि विकासी सुमुद होते हैं जबकि कमल अपने विकास के लिए सूर्य के अधीन होते हैं। इसी प्रकार जयकुमार भी सोमनायक राजा से उत्पन्न और सहिष्णुतादि उज्जवल गुणों से युक्त थे। अतः उनके अनुयायी लोग शीघ्र ही कौमुदाश्रय हो गये। अर्थात् भूमण्डल पर हर्ष के पात्र बने। किन्तु जो अर्ककीर्ति के प्रताप के अधीन यानी उसके पक्ष में थे, वे कमलता को प्राप्त हुए। यानी उनके **क** आत्मा में मलिनता आ गयी। तात्पर्य यह है कि जयकुमार के पक्षवाले तो प्रसन्न हो उठे, पर अर्ककीर्ति के पक्ष वाले निराश हो गये।

कवि ने जयकुमार को चन्द्रमा के समान बताया है। इस श्लोक में श्लेष की छटा निराली है।

समन्तभद्रो गुणिसंस्तवाय किलाकलङ्को यशंसीति वा यः।
त्वमिन्द्रनन्दी भुवि सहितार्थः प्रसत्तये संभवसीति नाथ॥[2]

हे नाथ! आप गुणीजनों का परिचय करने के लिए समन्त भद्र यानी सब तरह से योग्य है। अथवा यश में कलंकरहित, अकलंक हैं। पवित्रिताथ4 आपसब लोगों की प्रसन्नता के लिए निश्चय ही इन्द्र के समान प्रसन्न होने वाले है।

इसमें कवि ने श्लिकष्ट शब्दों के प्रयोग से प्राचीन आचार्यों के नामों का उल्लेख बड़ी चतुरता से किया है।

श्लेषं का एक अन्य निदर्शन दर्शनीय है –

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/86
2. वही, उत्तरार्ध, 9/90

लसति काशि उदारतरङिगणी वसतिरप्सरसामुत रङिगणी।
भवति तत्र निवासकृदेषकः स शकुलार्भक ईश विशेषकः॥[1]

अकम्पन राजा का दूत भरत चक्रवर्ती के पास जाकर कहता है कि हे नाथ! विशाल भगीरथी नदी से सम्पन्न यह काशी नगरी शोभित हो रही है। (कः जल या सुख, उसकी आशी - आशावाली यह नगरी है) साथ ही यह परमुसन्दरी स्त्रियों और अप्सराओं की मनोरंजक बस्ती है। वही रहने वाला यह एक शुकलार्भक यानी मछली का बच्चा है। दूसरे पक्ष में कल्याण मय कुल का बालक है, भगवन् और आपका नाम जपने वाला है।

अन्य उदाहरण दृष्टव्य है -

पादेकदेशच्छविभाक् प्रसत्तिभृतः स्वतः पल्लवतां व्यनक्ति।
समस्ति यः स्वयस्य तु वाच्यतातत्परःप्रवालोऽपि स चाभिजातः॥[2]

इस पद्य में सुलोचना के चरण की सुन्दरता का अतिशय वर्णन किया गया है।

जो कोपल प्रसन्नचित्त सुलोचना के चरणों की आशिक छवि को धारण करता है वह पल्लवता (अपने नाम की सार्थकता) को प्रकट करता है (क्योकि वह सुलोचना के पद चरण लव-एक अंश है) किन्तु सद्योजात प्रवाल (मूंगा) छोटा (प्रवाल) होकर भी (सुलोचना के चरणों की तुलना में) अपनी निन्दा कर रहा है, अतः वह कुलीन है।

पल्लव का अर्थ कोपल हैं और प्रवाल का अर्थ मूँगा - ये दोनों ही चरणों के उपमान है। संसार में यह प्रसिद्ध है कि सुलोचना के चरण अत्यधिक लाल हैं और कोमल भी। पल्लव में आंशिक लालिमा और कोमलता है। इस कारण वह सुलोचना के चरणों के समक्ष उनका अंश मात्र है। अतएव उसका पल्लव नाम सार्थक है। तुरन्त उत्पन्न हुआ मूँगा लाल तो होता है पर कोमल नहीं होता। इस दृष्टि से उसके चरणों की तुलना में बच्चा है। पर वह चरणों के समक्ष आत्मनिन्दा करता है सो ठीक है क्योंकि कुलीन है।

कवि ने श्लेष के माध्यम से सुलोचना के चरणों को विशेष बताया है।

संभग श्लेष का सुन्दर उदाहरण देखिए -

नवालकेनाधरता प्रबाले मुखेन याऽमानि सुदन्तपालेः।
सुपा (धा) किने मे मधुलेन सालेख्यतः सुधालेन विधौसुधा ले॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 9/67

2. वही, 11/13 3. वही, 11/79

सुलोचना के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सुन्दर दन्तपक्ति वाली सुलोचना के अभिनव केशपाश से विभूषित मुख ने मूंगे और पल्लव में जो अधरता - ओष्ठता या गुणों की अपकर्षता मानी, वह ठीक ही है, क्योंकि मुख बालक नहीं, प्रौढ है और प्रवाल अभी शिशु है।

यहाँ श्लेष के कारण व और ब अभेद है, अत: नवालकेन के स्थान में नबालकेन और प्रवालेक के स्थान पर प्रबाले मानकर यह भी अर्थ किया गया है तथा अनुकूल कर्मपाक एवं प्रभाव से युक्त तथा सुधा अमृत भी जिसे दु:खप्रद है - ऐसे मेरे लिए मधुर वं सुधा चूने को अस्वीकार करने वाले (सुलोचना के) मुख ने अमृत-गर्भ किरमओं (चूने के चूर्ण) से युक्त चन्द्रमा के विषय में भी उसी अधरता का उल्लेख किया है। अर्थात् अधरनिष्ठ माना।

अनङ्गजन्मानमहो सदङ्गशक्त्या प्यजेयं समुदीक्ष्य चङ्गः।[1]
गतो विवेक्तुं निजमित्युपायादुपासनायां गृहदेविकायाः॥

अर्धरात्रि में कामदेव की सहायता का हृद्य वर्णन किया है। समर्थ - नवयौवन से परिपूर्ण होने पर भी पुरुष, केवल सुन्दर शरीर की शक्ति सामर्थ्य (पक्ष में शक्ति नामक शस्त्र से) कामदेव को अजेय विचार कर किसी उपाय से अपने आुरो उससे पृथक करने के लिए गृहदेवी अपनी स्त्री (पक्ष में कुलदेवी) की उपासना में निरत तत्पर हो गया। कामोद्वेक से निवृत्त होने के लिए स्त्री की शरण में गया।

कवि ने श्लेषालंकार के द्वारा दो अर्थों का प्रतिपादन किया है। काम को अजेय समझ कर सुन्दर पुरुष गृहदेवी की शरण में गया। यहाँ गृहरेविकाया: में श्लेष है।

सद्धारगङ्गाधरमुग्ररुपं तवेममुच्चैस्तनशैलभूपम।
दिगम्बर गौरि! विधेहि चन्द्रचूडं करिष्यामि तमामतन्द्रः॥[2]

हे गौरवर्णे! जो समीचीन हार रुपी गङ्गा को धारण कर रहा है तथा उग्र रुप है उन्नत है (पक्ष में शिवरुप है) ऐसे उच्चैस्तन शैलभूप-उन्नत स्तन रुप गिरिराज को दिगम्बर वस्त्ररहित करो जिससे में आलस्य रहित हो उसे चन्द्र चूड़कर सकूँ - नख क्षतों से विभूषित कर सकूँ।

हे गोरि! तुम्हारा स्तन क्या है मानों शंकर है क्योंकि जिस प्रकार शंकर सद्धारगङ्गाधन समीचीन धारा वाली गङ्गा को धारण करते है उसी प्रकार

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 16/4
2. वही, 16/14

स्तन भी सद्धारगङगधर - समीचीन हार रुपी गंगा को धारण करता है। जिस प्रकार शंकर उच्चैस्तन शेलभूप - अत्यन्त ऊँचे कैलास पर्वत की भूमि की रक्षा करने वाले हैं उसी प्रकार तुम्हारा स्तन भी उचे स्तन शेलभूप है - अत्यन्त उन्नत पर्वत राज है। तुम इसे दिगम्बर बना दो दिगम्बर नाम युक्तकर दो (पक्ष में वस्त्र रहित कर दो) जिससे में चन्द्रचूड चन्द्रमौलि नाम से युक्त कर सकू (पक्ष में अर्ध चन्द्राकार नक्षतो से विभूषित कर सकूं) संस्कृत काषों से शंकर के निम्नलिखित नाम प्रसिद्ध हैं - गङगाधर, उग्र, कैलासपति, दिगम्बर तथा चन्द्रचूड आदि।

यहाँ श्लेषाकार द्वारा इन नामों का प्रयोग किया गया है। गौरी नाम पार्वती का भी प्रसिद्ध है।

समासोक्ति अलंकार -

समासोक्तिः समेर्यत्र कार्यलिङगविशेषणैः।[1]
व्यवहारसमारोपः' प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥

जहाँ साधारण धर्म बनाकर प्रकृत में अप्रकृत वस्तुत के व्यवहार का आरोप होता है वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

जयोदय महाकाव्य में समासोक्तिगत चमत्कार -

पथा कथा चारपदार्थभावा नुयोगभाजाऽऽयुपलालिता वा।[2]
विद्याऽनवद्याऽऽ प न वालसत्वं संप्राप्य वर्षेषु चतुर्दशत्वम्॥

राजा जयकुमार की कीर्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस राजा की निर्दोष विद्या प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग और कारणानुयोग के अनुसारी मार्ग से उपलालित होती हुई भारतादि चौदह भुवनों में व्याप्त होकर आलस्यरहित हो गयी, निरालस हो व्याप्त हो गयी।

समासोक्ति के द्वारा इसका अर्थ यह भी होता है कि उस राजा की निर्दोष विद्या नामक स्त्री कथा आदि चार तरह के मार्गो द्वारा उपलक्षित होती हुई चौदह वर्ष की आयु प्राप्त करने से बवचन को लांघकर युवती बन गयी है।

तीसरा अर्थ इस प्राकर से भी होता है कि उसकी एक ही विद्या कथादि चार उपायों से ललित होती हुई चौदह प्रकारों को प्राप्त हो गयी। अर्थात् वह राजा चौदह विद्याओं में निपुण हो गया।

---

1. सा. दा. 10/56
2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/6

यहाँ पर कवि ने प्रस्तुत मूल अर्थ पर अप्रस्तुत दो अर्थों का समारोप होने पर समासोचित के दर्शन होते हैं।

एक अन्य उदाहरण -

करं स जग्राह भुवो नियोगात् कृपालुतायां मनसोऽनुयोगात्।
दासीमिवासोमयशास्तथेनां विचारयामास च संहतेनाः ॥[1]

कृपालुता में ही मन का झुकाव होने के कारण सभी प्रकार के पापों से रहित असीम यशशाली उस महाराज जयकुमार ने मात्र अपने अधिकार के निर्वाहार्थ भूमि का कर (टैक्स) ग्रहण किया। किन्तु वह इस भूमि को दासी की तरह मानता था।

इस पद्य में **कर** इस शिलष्ट पद से समासोक्ति का यह भाव निकलता है कि जैसे कोई अत्यन्त कृपालु और निष्पाप पुरुष किसी विधान - विशेष से किसी स्त्री का हाथ पकड़ने को विवश हो जाता है किन्तु बाद में उसे दासी की तरह ही मानता है, वैसे ही यह महाराज पृथ्वी के साथ व्यवहार करता था। इस अप्रस्तुत व्यवहार का समारोप उस राजा पर कवि ने किया है।

सोमसूनुरूचितां धनुर्लतां सन्दधौ प्रवर इत्यतः सताम्।[2]
श्रीकरे स खलु बाणभूषितां शुद्धवंशजनितां गुणान्विताम्॥

जयकुमार निश्चय ही सज्जन पुरुषों में श्रेष्ट माना जाता था, इसलिए उनसे चापयष्टि - सी अंगयष्टिधारणी किसी युवती के समान धनुर्लता को ग्रहण किया, अर्थात् धनुष का सन्धान किया। वह धनुर्लता शुद्ध वंश (बास) में उत्पन्न थी, गुण (प्रत्यंचा) से युक्त तथा समुचित थी और बाणों से युक्त थी।

युवती भी उत्तम कुल में उत्पन्न रुप सौन्दर्यादि गुणों वाली तथा समुचित (अवस्था वाली) होकर वाण यानि विवाह दीक्षा से युक्त हुआ करती है। इस प्रकार से श्लेष से धनुर्लता पर युवती के व्यवहार का समारोप करने से यहाँ समासोक्ति अलंकार बनता है।

समासोक्ति की एक और बानगी देख सकते हैं -

संस्थापनार्थं प्रवरस्य यावत् पृषत्पतिप्रासनमुद्दधार।[3]
प्रत्यर्थिनोऽलङ्करणाय कण्ठे समर्पयामास शरंस चारम्॥

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/21
2. वही, 7/83
3. वही, 8/54

जयकुमार व अर्ककीर्ति के युद्ध भूमि का वर्णन करते हुए कवि किसी अन्य यौद्धा का वर्णन करते हुए कहता है कि किसी एक यौद्धा ने अपने सामने आये बलवान को मार गिराने के लिए ज्योंही बाण उठाया, त्योंही उस दूसरे योद्धा ने बड़ी तेजी से अपने सामने वाले शत्रु को रोकरने के लिए उसके कंठ में खींचकर बाण चढ़ा दिया। दूसा अर्थ किसी ने अपने यहाँ आये बलवान् को आदरपूर्वक बैठने के लिए सिंहासन दिया तो उसने बदले में उसकी शोभा बढ़ाने के लिए उसके गले में हार पहना दिया। इस अप्रस्तुत व्यवहार का प्रकृत पर समारोप होने से यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

बलात्क्षतोत्तुडगनितम्बबिम्बा मदोद्धतेः सिन्धुवधूर्द्विपन्द्रैः।[1]
गत्वाडकमम्भोजमुख रसित्वाऽभिचुक्षुभेऽतः कलुषीकृता सा॥

जिसके नितम्बों के (तटों को) मद में उद्धत हाथियों ने बलात्कार से भ्रष्ट कर दिया है और अन्त में जिसके मध्य भाग को प्राप्त कर उसके कमल रूप मुख का चुम्बन कर लिया। इससे वह नदी रुपी वधू मानो कलुषित होकर क्षोभ को प्राप्त हो गई।

इस श्लोक में नदी पर नायिका का आरोप एवं स्वच्छन्दगामी नायक का आरोप गजराज पर किया गया है। इस प्रकार नायक-नायिका के व्यवहार के आरोप से समासोक्ति अलंकार मनोहारी बन गया है।

उच्चैः पल्लवमधोजटीति तपस्यतोऽन्यस्मे गुणरीति।[2]
अनोकहस्य सुकृतसंगीतिरभूदतो योवनप्रतीतिः॥

जयकुमार व सुलोचना विवाह के पश्चात् हस्तिनापुर की ओर प्रयाण करते समय एक वन में ठहरे उसी वन का वर्णन इस श्लोक में है। उस उद्यान में कोई अनोकह वृक्ष उच्चैः पल्लवं उपर की ओर पत्तों को करके (पक्ष में उपर की ओर पैरों को करके) अधोजटि-नीचे की ओर जड़ों को करके (पक्ष में जटाधारी - शिर को करके) तथा दूसरों के लिए गुणरीति - उपकार करने की रीति को प्रकट कर तपस्या कर रहा था। धाम में खड़ा था। अतः उसके सुकृत संगीति - पुण्य का उदय हुआ था। इसी कारण युवितियों के समूह उस ओर प्रतीति-प्रति इति गमन हो रहा था। पक्ष में प्रतीति - विश्वास हो रहा था।

यहाँ समासोक्ति से यह भाव प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार कोई

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 13/96
2. वही उत्तरार्ध, 14/6

पुरुष उपर की ओर पैर और नीचे की ओर शिर कर धूप में खड़ा हो, तपस्या करता है तो उसे पुण्य की प्राप्ति होती है और उसके फलस्वरुप यौवत-युवति समूह का उस पर विश्वास जागृत होता है। फलतः युवति समूह आदि भोग उपभोग की सामग्री उसे प्राप्त होती है।

सज्जनतया वियुक्तो यावत्संयुज्यापि तरुरभूत्तावत्।
कौतुकिताऽऽस्तां विपल्लवित्वमप्याविरभूद्यतोऽपवित्वम्॥[1]

उस वन में वन-क्रीडा के समय जो वृक्ष समीचीन जन समूह (सज्जनता) से युक्त थे, कौतुकिता - नाना प्रकार के पुष्पों अथवा संगीत आदि विनोद से सहित थे, विपल्लवित्व-रंग बिरंगे विशिष्ट पत्तों से रहित थे तथा वायु और पक्षियों के संचार से सहित थे वे ही वृक्ष जब (वनक्रीडा के अनन्तर) समीचीन जनता से रहित हो गये, उनका पुष्प समूह नष्ट हो गया, उनके नीचे होने वाले नाना विनोद समाप्त हो गये, और पक्षियों की चहल पहल अथवा मन्द सुगन्ध वायु का संचार भी समाप्त हो गया।

इस श्लोक में समासोक्ति से यह अर्थ अन्तर्निर्हित है कि जो व्यक्ति सज्जनता - सुजनभाव से सहित होने के बाद जब उसे छोड़ देता है तब उसके सब कौतुक विनोद नष्ट हो जाते हैं। यह बात दूर है, विपत्तियों के अंश भी उसे घेर लेते हैं यही नहीं वायु का संचार भी नष्ट हो जाता है। लोग उसके पास आना - जाना छोड़ देते हैं जिससे उसे हीनता का अनुभव करना पड़ता है। अतः किसी को सुजनता नहीं छोडनी चाहिए। समासोक्ति का मंजुल निदर्शन द्रष्टव्य है -

चतुरशीतिगुणाङ्कितलक्षणेऽत्र तु चतुष्पथके विचरन् क्षये।[2]
जनितुतैति मृतिं दुरिताक्षतः न पुनरेति परं पदमुद्धतः॥

चौरासी लाख योनि रूप चौराहे में भ्रमण करता हुआ यह जीव दुष्ट इन्द्रियों का वशीभूत हो क्षणभर में जन्म को प्राप्त होता है और क्षण भर में ही मृत्यु को प्राप्त होता है, परन्तु आगे बढ़कर मुक्ति को प्राप्त नहीं होता।

जिस प्रकार से चौपड की चारों पट्टियों में भ्रमण करता हुआ पासा ठीक न पड़ने से क्षणभर में जीत का अनुभव करता है और क्षण भर में मारा जाता है परन्तु ऊँचा उठकर केन्द्र को प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार से यह जीव नरकादि चारों गतियों में इन्द्रय विषयों के कारण परिभ्रमण करता हुआ जन्म-

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 14/40
2. वही, 25/42

मृत्यु को प्राप्त होता रहता है पर चक्र से निकलकर मुक्ति पद को प्राप्त नहीं हो पाता।

कवि ने यहाँ चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने वाले जीव के स्वरुप का यथार्थ चित्रण चौपड़े की गोट द्वारा समासोक्ति के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

दृष्टान्त अलंकार :-

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।[1]

जहाँ (वाक्यद्वय) में साधारण धर्म आदि का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

जयोदयमहाकाव्य में दृष्टान्त गत चमत्कार :-

रूपवन्तमवलोक्य मानवं तत्पितृव्यमथवोदरोद्भवम्।[2]
योषितां तु जघनं भवेत्तथा हयामपात्रमिव तोयतो यथा॥

कवि ने अपने विचारों को स्पष्ट करने के लिए बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। अपने दृष्टान्त से स्त्रियों के मन की चंचलता का बड़ा ही हृदयंगम वर्णन किया है।

मनुष्य को रूपवान् होना चाहिए, फिर चाहे वह चाचा या पुत्र ही क्यों न हो उसे देखकर स्त्रियों का मन उसी प्रकार चंचल हो (द्रवित) हो उठता है जिस प्रकार पानी से कच्ची मिट्टी का वर्तन दृष्टान्त का चमत्कार अन्यत्र द्रष्टव्य है -

भूरिशोऽपि मम संप्रसारिभिरौर्ववन्नृप समुद्रवारिभिः।[3]
किं वदानि वचनैः स भारत-भूपभूर्न खलु शान्ततां गतः॥

महाराज अकम्पन का दूत आकर अर्ककीर्ति के रोष को दृष्टान्त के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

इस श्लोक में कवि ने बताया है कि जिस प्रकार बड़वा नल समुद्र के विपुल जल से शांत नहीं होता, उसी प्रकार मेरे द्वारा कहे गये अनेक प्रकार के सान्त्वनापूर्ण वचनों से भी वह शान्त नहीं हुआ।

यद्यपि चापलमाप ललाम ते जय इहास्तु स एव महामते।
उरसि सन्निहतापि पयोऽर्पयत्यथ निजाय तुजे सुरभिःस्वयम्॥[4]

---

1. का. प्र. 10/155 2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध 2/152
3. वही, 7/72 4. वही, 9/12

इस श्लोक में कवि ने अकम्पन के माध्यम से बड़ा ही सटीक दृष्टान्त अर्ककीर्ति के समक्ष रखा है।

महाराज अकम्पन अर्ककीर्ति से कहते हैं कि आपके साथ जयकुमार ने जो भी चपलता की है उसे भूल जायें उसके विषय में चिन्ता न करें। देखिस दूध पीते समय बछड़ा गाय की छाती में चाट मारता है फिर भी गाय अप्रसन्न न होकर उसे दूध ही पिलाती है।

एक अन्य दृष्टान्त अवलोकनीय है –

क्षमो न भोक्तुं ममतां तु भोगी रहस्यमङ्गीकुरुतेऽत्र योगी।
यथोदितं लङ्घनमेति रोगी नियोगिने तस्य समस्ति नो गीः ॥[1]

कवि ने इस श्लोक में दृष्टान्त के माध्यम से भोगी और योगी के अन्तर को स्पष्ट किया है। भोगी मनुष्य ममता को छोड़ने के लिए समर्थ नहीं होता, जबकि योगी त्याग के रहस्य को अंगीकार करता है। जैसे रोगी व्यक्ति के कहे अनुसार लंघन को प्राप्त होता है, परन्तु विवाह कार्य में दीक्षित मनुष्य के लिए लंघन की बात भी उसे रुचिकर नहीं होती। एक और पद्य द्रष्टव्य है –

कवयो जिनसेनाद्याः कवयो वयमप्यहो।
कौस्तुभोऽपि मणिर्यद्वन्मणिः काचोऽपि नामतः ॥[2]

कवि इस पद्य में दृष्टान्त अलंकार के द्वारा विनयपूर्वक अपनी लघुता दर्शाते हुए कहते हैं कि कवि तो वास्तव में जिनसे आदि ही हैं। आश्चर्य है कि हम भी कवि बन गये हैं। यह तो उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार कौस्तुभ मणि ही वास्तविक मणि है परन्तु काँच को भी मणि कहा जाता है। अर्थात् जिनसेन आदि ही वास्तविक कवि है हम तो नाम के कवि हैं।

व्यतिरेक अलङ्कार :-

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनताऽथवा।
व्यतिरेकः एक उक्ते नुक्ते हेतौ पुनस्त्रिधा ॥[3]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जहाँ पर उपमान से उपमेय को अधिक अथवा न्यून बताया जाये वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

उदभट के अनुसार व्यतिरेक का स्वरूप

विशेषापादनं यत्स्यादुपमानोपमेययोः।
निमित्तादृष्टिदृष्टिभ्यां व्यतिरेको द्विधा तु सः ॥[4]

---

1. जयोदयमहाकाव्य उत्तरार्ध, 27/6 2. वही, 28/87
2. सा. दा. 10/52 4. का. प्र. 2/6

व्यतिरेक अलंकार के चौबीस भेद हैं -

व्यतिरेक

अश्लेषनिबन्धनः　　　　　　　　श्लेषनिबन्धनः

शाब्दे साम्ये　　　　आर्थे साम्ये　　　　अक्षिप्ते साम्ये

हेतद्रयोक्तौ　　एकहेत्वनुक्तौ　　　अपरहेत्वनुक्तौ　　　हेतुद्वयानुक्त

जयोदय महाकाव्य में व्यतिरेक गत चमत्कार -

कथाप्यथामुष्य यदि श्रुताराात्तथा वृक्षा साऽऽर्य सुधासुधारा।[1]
कामेकदेशक्षरिणी सुधा सा कथा चतुर्वर्गनिसर्गवासा॥

हे सज्जन! इस जयकुमार की कथा यदि एकबार भी सुन ली जाय तो फिर उसके सामने अमृत की अभिलाषा भी व्यर्थ हो जायेगी, क्योंकि अमृत तो चार पुरुषार्थों में कामस्वरुप एक पुरुषार्थ ही प्रदान करता है, किन्तु इस राजा की कथा तो चारों पुरुषार्थों को देने वाली है।

इस श्लोक में उपमान अमृत से उपमेय जयकुमार कथा की उत्कृष्टता का वर्णन होने से व्यतिरेक अलंकार है।

व्यतिरेक की अनुपम छटा अन्यत्र देखिए -

भवाद्भवान् भेदमवाप चड़्गं भवः गौरीं निजमर्धमङ्गम्।[2]
चकार चादो जगदेव तेन गौरीकृतं किन्तु यशोमयेन॥

कवि ने व्यतिरेक के माध्यम से चमत्कारी वर्णन करते हुए राजा जयकुमार को महादेव से बड़ा बतलाया है।

यह राजा जयकुमार महादेव से भी बढ़ा - चढ़ा था, क्योंकि महादेव तो अपने आधे अंक को ही गौरी (पार्वती) बना सके किन्तु इस राजा ने तो अपने अखण्ड यश द्वारा सम्पूर्ण जगत् को गौरी कर दिया अर्थात् उज्जवल बना दिया।

व्यतिरेक की एक और बानगी देखिए -

तुल्यो न भानुर्भवतोऽखलस्य शशी कलङ्कादपि दूरगल्य।
सिन्धुर्गभीरोऽप्यजडाशयस्य तुङ्गोऽपि मेरुहृदि कोमलस्य॥[3]

कवि ने व्यतिरेक के माध्यम से जयकुमार को सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र और मेरु पर्वत से भी श्रेष्ठ बतलाया है।

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/3
2. वही, 1/15　　　3. वही, उत्तरार्ध 19/19

सूर्य देदीप्यमान होने पर भी आपके तुल्य नहीं है, क्योंकि आप प्रकृति वाले हैं और सूर्य तीक्ष्ण प्रकृतिवाला है। जयकुमार कलंक-पाप से दूरगामी है, अतः चन्द्रमा भी आपके तुल्य नहीं है, क्योंकि वह कलंक सहित है। जयकुमार गम्भीर होने के साथ-साथ प्रबुद्ध आशय सहित है जबकि समुद्र जडाशय - जल का संग्रह रुप है। इसी प्रकार मेरु पर्वत ऊँचा होकर भी आपके तुल्य नहीं है क्योंकि आप तुङ्ग उदार प्रकृति होने के साथ हृदि कोमल हृदय में कोमल हैं, परन्तु मेरू पर्वत हृदय में कोमल न होकर अन्तः कठोर है।

निदर्शना अलङकार -

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में निदर्शना का स्वरुप इस प्रकार दिया है -

***सम्भवन् वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन् वाऽपि कुत्रचित्।*[1]**
यत्र बिम्बानुबिम्क्त्वं बोधयेत्सा निदर्शना॥

जहाँ दो वाक्यार्थ का धर्म - धर्मी भाव से सम्भाव्य सम्बन्ध दिखाया गया हो वहाँ निदर्शनालङकार होता है। यह सम्भवद वस्तु सम्बन्ध एवं असम्भवद् वस्तु सम्बन्ध के भेद से दो प्रकार का होता है।

जयोदयमहाकाव्य में निदर्शना गत चमत्कार -

***जयमुपेति सुभीरुमतिल्लिकाऽखिलजनीजिनमस्तकमल्लिका।*[2]**
बहुषु भूपवरेषु महीपते मणिरहो चरणे प्रतिबद्ध्यते॥

अनेक श्रेष्ठ राजाओं के रहने पर भी समस्त सुन्दरियों के मस्तक की माला श्रेष्ठतम तरुणी सुलोचना जयकुमार को प्राप्त हो रही है। अहो आश्चर्य है कि गले व मस्तक पर स्थित होने वाली मणि को पैरों में बांध दिया गया है।

जहाँ **मणिः चरणे प्रतिबद्ध्यते** यह निदर्शना श्रेष्ठतम सुलोचना के जयकुमार को प्राप्त हो जाने के अनौचित्य का स्तर स्पष्ट कर देती है।

निर्दशना का अन्य चमत्कार -

***सुषमाप महर्घतां परेर्भुवि भाग्येरिव नीतिरूज्जवलैः।*[3]**
सुतनोस्तु विभूषणैर्यका खलु लोकेरवलोकनीयका॥

कवि ने इस श्लोक में सुलचोना के सौन्दर्य की प्रशंसा की है। सुलोचना का जो सौन्दर्य लोगों के द्वारा दर्शनीय था, वह ऊँचे भाग्य के कारण नीति की तरह श्वेत आभूषणों से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो गया।

---

1. सा. दा. 10/51 2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 9/77
3. वही 10/39

इस श्लोक में श्वेत आभूषणों का सम्बन्ध सुलोचना से कराकर शोभा को और बढ़ा दिया है कि जो निर्दोष से सम्बद्ध नीति का नीति की तरह कहकर पारम्परिक उपमान उपमेय भाव सम्बन्ध रुप निदर्शना बतायी गई है।

अर्थान्तरन्यास -

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।[1]
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥

अर्थान्तरन्यास वह अलंकार है जहाँ साधर्म्य या वैधर्म्य के विचार से सामान्य या विशेष वस्तु का उससे भिन्न (विशेष या सामान्य) के द्वारा समथ4न किया जाता है।

जयोदय महाकाव्य में अथ्रन्तरन्यासगत चमत्कार -

श्रीपादपदमद्वितयं जिनानां तस्थौ स्वकीये हृदि सन्दधाना।[2]
देवेषु यच्छददधतां नभस्या भवन्ति सद्यः फलिताः समस्याः॥

वह सुलोचना अपने चित्त में भगवान् जिन के चरणयुगलों को भलीभाँति धारण कर स्थित थी। कारण देवों पर श्रद्धा रखने वालों की आसमानी समस्यायें अर्थात् कठिन से कठिन बातें भी शीघ्र सफल हो जाती है।

इस श्लोक में सुलोचना के जिनचरण कमल युगल के ध्यान का समर्थन इस सामान्य नीति से किया गया है कि जिनेन्द्र भक्तों की समस्याएं जिन चरण युगल के ध्यान से समाप्त हो जाती है।

अर्थशास्त्रमवलोकयन्नराद कोशलं समनुभावयेत्तराम्।
श्रीप्रजासु पदवीं व्रजेत्परां व्यर्थता हि मरणाद्भयङ्करा॥[1]

सज्जन पुरुष को अर्थशास्त्र का अध्ययन करना चाहिए जिससे वह समाज में रहते हुए कुशलता पूर्वक जीवन यापन कर सके और प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके अन्यथा दरिद्रता मरण से भयंकर दुःखदायिनी होती है।

कवि ने इस श्लोक में मनोवैज्ञानिक एवं धार्मिक उक्तियों के बल पर कर्तव्य विशेष के औचित्य की सिद्धि में अर्थान्तरन्यास का मनोहारी प्रयोग किया है। यहाँ उत्तरार्धगत सामान्य भाव से पूर्वार्धगत विशेष भाव का समर्थन किया गया है।

आस्तदा सुललितं चलितव्यं तन्मयाऽवसरण बहु भव्यम्।
श्रीचतुष्पथक उत्कलिताय कस्यचिद् व्रजति चिन्न हिताय॥[2]

---

1. सा. दा. 10/165 2. जयोदय महाकाव्य, पूर्वार्ध 1/68
3. वही 2/59 4. वही 4/7

सुलोचना स्वयंबर में जाने के इच्छुक अर्ककीर्ति अपने जाने की इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि ऐसी बात है तो फिर मुझे भी चलना चाहिए अर्थात में भी चलूँगा। कारण यह अवसर तो बहुत सुन्दर है। चौराहे पर रखे हुए रत्न को लेने के लिए किसका मन नहीं चाहता ?

यहाँ पर कवि ने सामान्य से विशेष का समर्थन किया हैं।

जयमहीपतुजोर्विलसत्त्रपः सपदि वाच्यविपश्चिदसौ नृपः।[1]
कलितवानितरेतमेकतां मृदुगिरो ह्यपरा न समार्द्रता॥

सुलोचना का जयकुमार को वरण करना अर्ककीर्ति को अच्छा नहीं लगा, जयकुमार व अर्ककीर्ति में युद्ध छिड़ गया। जयकुमार की विजय हुई। राजा अकम्पन ने कलंग के निवारण के लिए जयकुमार व अर्ककीर्ति का मिलाप करा दिया सत्य है मीठी बात के समान मेल कराने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

कवि ने उस विशेष वाक्य के समर्थन के लिए सामान्य वाक्य **मृदुगिरा ह्यपरा न समार्द्रता** से समर्थन किया है।

अहमहो हृदयाश्रयवत्प्रजः स्वजनवैरकरः पुनरङगजः।[2]
भवति दीपकतोऽञ्जनवत् कृतिर्न नियमा खलु कार्यकपद्धतिः॥

राजा भरत अपने पुत्र अर्ककीर्ति के अविवेकपूर्ण कार्य को सुनकर आश्चर्य करते हुए कहते हैं कि मैं तो प्रजा को हृदय में स्थान देता हूं और मेरा यह पुत्र होकर भी अपने कुटुम्बियों से ही वैर करने वाला हो गया। यह ऐसी ही बात हुई जैसे दीपक से कज्जल। अतः कारण के अनुसार ही कार्य हुआ करता है, ऐसा एकान्तिक नियम नहीं है। कार्य के विरुद्ध भी कार्य हो सकता है।

इस श्लोक में विशेष का सामान्य से समर्थन किया गया है। एक अन्य निदर्शन देखिए -

हेमाङगदादिष्वधुना स्थितेषु बबन्ध पट्टं पटुरेण तस्याः।[3]
भाले विशाले दुरितान्तकाले भवन्ति भावा रमिणा रमासु॥

इस समय चतुर जयकुमार ने हेमाङगद आदि सालों के सामने सुलोचना के विशाल ललाट पर पट्टराज्ञी पद का पट्ट बांधा, सो ठीक ही किया, क्योंकि पाप कर्म का अन्त अर्थात् पुण्य कर्म का उदय होने पर स्त्रियों के

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वाध, 9/40
2. वही, 9/81 3. वही, उत्तरार्ध 21/82

विषयम में पुरुषों के अनुकूल इष्टभाव होते ही हैं।

इस श्लोक में सुलोचना के पट्टबन्ध विशेष का पुण्य कर्म के उदय से प्राप्त वैभवों के द्वारा समर्थन किया गया है।

अर्थान्तरन्यालास के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त है।

विस्फूर्तिभृन्नृवर। किन्नवदद्रुरेष -
प्रागुत्थितो वियति शोणितकोपदेशः।
श्रीसद्मनोऽनुभवतो मधुमेहपूर्ति -
भो राजरूग्विजयिनस्तव भाति मूर्तिः।[1]

हे नरप्रवर! जयकुमार! आकाश की पूर्व दिशा में उठा जो यह लाल रंग दिख रहा है, वह क्या पक्षियों की चहल पहल से युक्त वृक्ष ही नहीं हैं यह कहो। अर्थात् यह लाल लाल पल्लवों से युक्त वृक्ष ही हैं और उसके आश्रय में रहने वाले पक्षी दाना युगने के लिए इधर उधर उड़ रहे है। इधर पूर्ण विकास का अनुभव करने वाले कमल के मकरन्द की लक्ष्मी सुशोभित हो रही है। अर्थात् खिले हुए कमलों से मकरन्द निकल रहा है। और इधर चन्द्रमा की कान्ति को जीतने वाला आपका शरीर सुशोभित हो रहा है। हम सबको रूचिकर हो रहा है। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा निष्प्रभ हो रहा है और आपकी प्रभा बढ़ रही है।

अर्थान्तर से इसका अर्थ - इधर आकाश में जो पूर्व की ओर लाली दिख रही है वह रक्त के प्रकोप से उत्पन्न निरन्तर बढ़ने वाली उसकी दाद क्या नहीं है अर्थात् है और इधर क्षयरोग पर विजय प्राप्त करने वाला आपका शरीर मूत्रमार्ग से रोग विशेष से युक्त धनाड्य लोगों को भी अच्छा लग रहा है काश ऐसा शरीर हमें भी प्राप्त होता, फिर साधारण रोगियों की तो बात ही क्या है।

कवि ज्ञान सागर जी ने अर्थान्तर से क्षयरोग और मधुमेह जैसे आधुनिक अर्थो की अवतारणा की है। प्रभात वर्णन का प्रसंग कितना प्रभाव पूर्ण हो गया है।

स्तवोऽथ बोधस्य समाश्रमे तु निरीहतायाः स समस्ति हेतुः।[2]
मनोऽङ्गिनः कांचनाकाञ्चनाय यो वा यदर्थी स तदभ्युपायः॥

जिनेन्द्रदेव के द्वारा संसार की स्थिति का वर्णन संसारी जीव का मन सुवर्ण की स्तुति के लिए होता है, परन्तु समता के आधार भूत मुनि में

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 18/22

2. वही, 27/54

शुद्धात्मज्ञान का स्तवन होता है क्योंकि वह निरीहता का हेतु है ठीक ही है, क्योंकि जो मनुष्य जिस वस्तु का इच्छुक होता है वह उसी के लिए उपाय करता है, संघर्ष करता है।

यहाँ पर अर्थान्तरन्यास से मुनि के आत्मज्ञानार्थ स्तवन का इच्छानुरुप उपायभूत सामान्य द्वारा समर्थन किया गया है।

विधोरमृतमासाद्य सन्तापं त्यजतोऽर्कतः।[1]
पूरणाय प्रभातं च सन्ध्यानन्दीक्षितश्रियः॥

विधोः चन्द्रनायक वाम स्वर से अमूर्त - अमृत नामक प्राणायाम वायु को ग्रहण कर अर्कतः सूर्यनामक दक्षिण स्वर से संताप - रेचन वायु को छोडने वाले तथा दीक्षित श्रियः साधुओं में शोभा सम्पन्न जयकुमार का प्रातः काल सन्ध्यानं समीचीन ध्यान की पूर्ति के लिए हुआ था। अर्थात् समस्त कार्यो की सिद्धि के लिए हुआ था।

अर्थान्तर से अर्थ -रात्रि में विधु - चन्द्रमा से अमृत लेकर दिन में सूर्य से संताप को छोड़ने वाले तथा नन्दी - आनन्द युक्त जनों के द्वारा जिनकी शोभा ईक्षित - अवलोकित है, ऐसे जयकुमार के प्रभात और सन्ध्या दिन रात को पूर्ण करने के लिए होते थे। अर्थात् जब जयकुमार मुनि ध्यानारुढ होते थे तब रात्रि में चन्द्रमा उनके शरीर को शीतलता और दिन में सूर्य संताप पहुँचाता था। प्रातःकाल और सन्ध्या काल क्रमशः निकलते जाते थे।

कवि ने इसमें सामान्य से विशेष का समर्थन किया है।

विभावना अलङ्कार :-

विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।
उक्तानुक्तनिमितत्वाद द्विधा सा परिकीर्तिता॥[2]

जहाँ हेतु के बिना कार्योत्पत्ति बतायी जाय वहाँ विभावना अलंकार होता है। कारणान्तर की अपेक्षा करके मुख्य कारण न कहकर कहा गया हो, कारणान्तर कहीं उक्त रहता और कहीं अनुक्त। इस प्रकार विभावना अलंकार के दो भेद भी होते हैं।

जयोदय महाकाव्य में विभावना गत चमत्कार :-

फुल्लत्यसडगाधिपतिं मुनीनमवेक्ष्यमाणो बकुलः कूलीनः।[3]
विनेव हालाकुरलान् वधूनां व्रताश्रितिं बागतावानदूनाम॥

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 28/61
2. सा. दा. 10/66 3. जयोदय पूर्वार्ध 1/81

निग्रन्थाधिपति मुनि महाराज को देखकर कुलीन बकुल वृक्ष मानो निदो4ष मूलगुणों को ही प्राप्त हो रहा है। इसलिए वह बन्धुओं के द्वारा किये गये मद्य के कुल्लों के बिना ही फूल रहा है, जबकि बकुल वृक्ष मानिनी के मदभरे मद्य के कुल्लों से खिलता है। ऐसा कवि समय है।

इस श्लोक में विभावना अलंकार है, क्योंकि कारण के बिना खिलना रुप कार्य सम्पन्न हो रहा है। इसमें विभावना की अद्‌भुत संयोजना है।

विभावना का चमत्कार -

तेजिस्विनः करेणापन्ना मृक्षणतनुरासीत् सा स्विन्ना।[1]
समुदियाय तस्या यदपाङ्गश्चित्रं सोऽभूत्कण्टकिताङ्गः॥

मक्खन जैसे शरीर वाली सुलोचना का जब अग्नि के समान तेजस्वी जयकुमार हाथ से स्पर्श करते थे तो वह स्वेद से युक्त हो जाती थी। इसमें आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि अग्नि के सम्पर्क से मक्खन पिघलता ही है परन्तु जब सुलोचना का अपाङ्ग कटाक्ष (अङ्गहीन) उदित होता तो कुमार का शरीर कण्टकित-रोमांचित अर्थ व कांटो से युक्त हो जाता था - यह आश्चर्य की बात थी, क्योंकि अङ्गहीन व्यक्ति के द्वारा कांटों का विस्तार करना सम्भव नहीं है। पर ऐसा वर्णन किया गया है। अतः कारण के बिना कार्य का वर्णन होने से विभावना है।

विरोधाभास अलङ्कार -

विरोधः सो विरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्धचः।[2]

जहाँ विरोध न होने पर भी जो दो वस्तुओं का विरुद्धों के समान वर्णन होता है वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है। यह दस प्रकार का होता है।

जातिश्वचतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरूद्धा स्याद् गुणस्त्रिभिः।
क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणेवेति ते दश॥[3]

जयोदय महाकाव्य में विरोधाभास गत चमत्कार -

अनङ्गरम्योऽपि नदङ्गभवादभूत समुद्रोऽ प्यजडस्वभावात्।
न गोत्रभित्किन्तु सदा पवित्रः स्वचेष्टितेनेत्वमसो विचित्रः॥[4]

राजा जयकुमार सुन्दर शरीर होने से कामदेव के समान सुन्दर था। मंदबुद्धि न होने से मुद्राओं से भी युक्त था। वह अपने गौत्र को मलिन करने

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 22/38 2. का. प्र. 10/166
3. वही, 10/167 4. जयोदय पूर्वार्ध 1/41

वाला नहीं, किन्तु सदा पवित्र उज्जवल चरित्र वाला था। इस प्रकार से वह विचित्र प्रकार का था।

शाब्दिक विरोध होने से विरोधाभास अलंकार है। क्योंकि जो अच्छे अंगोवाला होता है वह अनंगरम्य अर्थात् अंग की रमणीयता से रहित नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो अजल स्बाव हो वह समुद्र नहीं हो सकता। जो पर्वत का तोड़ने वाला न हो वह वज्रधारी नहीं हो सकता। एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

यः पडक्जातपरिकृच्च पुनः सुवृत्तो
राजाध्वरोधि अपि सत्पथसंप्रवृत्तः।
एवं विरुद्धभवनोऽप्यविरोधकर्ता
हे विश्वभूषण! विभाति दिनस्य भर्ता॥[1]

इस श्लोक में विरोधाभास अलङ्कार द्वारा सूर्य का सुन्दर वर्णन किया गया है। पद्य में आर्य सभी विशेषण विरोध और परिहार पक्ष में आयोजित होते हैं।

विरोध पक्ष में यह सूर्य जिसका भवन पक्षियों के रोध से सहित है, ऐसा होकर भी पक्षियों के रोध का कर्ता नहीं है। परिहार में जिसे नक्षत्रों का निवास विरुद्ध प्रतिकूल है। ऐसा होकर भी पक्षियों के रोध को करने वाला नहीं है, अर्थात् पक्षियों के संचार को करने वाला है। विरोध में राजमार्ग का विरोधी होकर भी समीचीन मार्ग में चलने वाला है। परिहार पक्ष में राजा चन्द्रमा के मार्ग को रोकने वाला होकर भी नक्षत्रों के मार्ग आकाश में अच्छी तरह प्रवृत्त है। विरोध में पाप समूह का सम्पादक होकर भी आचार से सहित है। परिहार में कमलों का परिकृत पोषक होकर भी गोल है।

विरोधाभास का चित्ताकर्षक उदाहरण देखिए –

सदाचारविहीनोऽपि सदाचारपरायणः।
स राजापि तपस्वी सत् समक्षोऽप्यक्षरोधकः॥[2]

कवि ने जयकुमार के उत्कृष्ट चरित्र की अभिव्यंजना में विरोधाभास का प्रयोग किया है। राजा जयकुमार सदाचारहीन होते हुए भी सदाचार में तत्पर रहते थे, राजा होकर भी तपस्वी थे, समदृष्टि रखते हुए भी समदृष्टि निवारक थे।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 18/76
2. वही, 28/5

पूरे श्लोक में विरोध मूलक शब्दों का प्रयोग है। अतः विरोध का परिहार यह है कि वह गुप्तचर के हीन (अर्थात् गुप्तचर शून्य होकर जन वर्ग से पृथक थे) सदाचार में तत्पर थे। वह दीप्तिमान (कान्तिशाली) होते हुए भी तपश्चर्या में प्रवृत्त थे। वगह सबके प्रति समान दृष्टि रखते हुए अक्षनिरोधक अर्थात् जितेन्द्रिय थे।

अतिश्योक्ति अलंकार -

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्तिनी।
असावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोत्तमायथा॥[1]

(प्रस्तुतवस्तुगत अतिशय अथवा उत्कर्ष) की लोकिक वाम व्यवहार का अतिक्रमण करने वाली विवक्षा (विवक्षाप्रेरित वर्णन) अतिशयोक्ति है जो अलंकारों में श्रेष्ठ अलंकार है।

जयोदय महाकाव्य में अतिशयोक्ति गत चमत्कार -

गुणेस्तु पुण्येक पुनीतमुर्तेर्जगन्नगः संग्रथितः सुकीर्तेः।
कन्दुत्वमिन्दुत्वि डनन्यचौरेरूपेति राज्ञो हिमसारगौरेः॥[2]

चन्द्राकिरणों को लजाने वाले, कपूर से स्वच्छ गुणों द्वारा गूंथा यह जगत रुप पहाड़ पुण्य की एकमात्र पवित्र मूर्ति राजा जयकुमार की कीर्ति का गेंद बन जाता है अर्थात् जैसे कोई स्त्री गेंद से खेलती है, वैसे ही जयकुमार की कीर्ति जगत् रुपी गेंद से खेलती है।

इस श्लोक में सम्बन्ध सम्बन्धाभाव में सम्बन्ध की कल्पना की गयी है। इसलिए यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है।

एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है -

चित्रभित्तिषु समर्पितदृष्टो तत्र शश्वदपि मानवसृष्टो।[3]
निनिमेषनयनेऽपि च देवव्यूह एव न विवेचनमेव॥

अकम्पन की काशी नगरी का वर्णन करते हुे कहा है कि वहाँ नगरी की चित्रयुक्त भित्तियों में एकटक दृष्टि लगाने वाले मानव समूह और निर्निमेष नयनवाले देवों के समूह में परस्पर विवेक प्राप्त करना बड़ा ही कठिन हो गया था। भेद में अभेद मूलक अतिशयोक्ति अलंकार है।

---

1. का. प्र.,
2. जयोदय महाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/10
3. वही, 5/19

अतिशयोक्ति की एक और बानगी द्रष्टव्य है -

सारसकेलिरापि मिथुनेन नदीपुलिनदेशेषु च तेन।
यदङ्गभासु दिने सति कोकलोकः प्रापाप्यशोकमोकः॥[1]

विदाई के पश्चात् सुलोचना व जयकुमार के नदी तट पर रुकने का वर्णन है। सुलोचना और जयकुमार के युगल नदी तट के प्रदेशों में सारस पक्षियों की क्रीड़ा प्राप्त की अथवा वह प्रसिद्ध रस क्रीड़ा प्राप्त की, जिसमें उनके शरीर की कान्ति से उत्तम दिवस के रखते हुए चकवा - चकवी ने शोक रहित स्थान प्राप्त किया था।

उनके शरीर की दीप्ति से नदी तट पर दिन जैसा प्रकाश विद्यमान रहा, इसलिए चकवा - चकवी वियोग के भय से दुःख नहीं हुए।

चित्रालंकार -

आचार्य ज्ञानसागर जी ने अपने काव्यों में न केवल अर्थालंकार, शब्दालंकार का प्रयोग किया है बल्कि उन्होंने चित्रालंकार भी प्रयुक्त किये हैं।

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता।[2]

यहाँ रचना विशेष में विन्यस्त वर्ण खड्ग, सूरज तथा कमल आदि के आकार का निर्माण सा करते हैं, वह चित्रालंकार युक्त काव्य है।

जयोदय महाकाव्य में कवि ने चक्रबन्ध चित्रालंकार का प्रयोग किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक-एक चक्रबन्ध है। इससे सर्ग में हुयी प्रमुख घटना का संकेत मिलता है। इस काव्य में 28 सर्ग है, अतः इस प्रकार 28 चक्रबन्ध है।

प्रत्येक चक्रबन्ध का वर्ण्यविषय इस प्रकार है -

1. जयमहीयतेः साधुसदुपास्तिचक्रबन्धः
2. नागपतिलम्बच्चक्रबन्धः
3. स्वयंबरसोमपुत्रागमचक्रबन्धः
4. स्वयंबरमति चक्रबन्धः
5. स्वयंबरारम्भचक्रबन्धः

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 22/71
2. का. प्र. 9/85

6. नृपपरिचय, वरमालारोपचक्रबन्ध:

7. समरसंचयचक्रबन्ध:

8. अर्कपराभवचक्रबन्ध:

9. भरतलम्बनचक्रबन्ध:

10. करग्रहारम्भचक्रबन्ध:

11. सुदृश: कथनं चक्रबन्ध:

12. करोपलम्बनचक्रबन्ध:

13. जयोगङ्गागत चक्रबन्ध:

14. सरिदवलम्ब चक्रबन्ध:

15. निशासमागमचक्रबन्ध:

16. सोमरसपानचक्रबन्ध:

17. सुरतवासनाचक्रबन्ध:

18. विकृतभातनभश्चक्रबन्ध:

19. शान्तिसिन्धुस्तवचक्रबन्ध:

20. भरतवन्दनचक्रबन्ध:

21. पुरमापजय चक्रबन्ध:

22. मिथ: प्रवर्तनम् चक्रबन्ध:

23. दम्पतिव्रिभवा चक्रबन्ध:

24. गजपुरनेतुस्तीर्थविहरणम् चक्रबन्ध:

25. जयसद्भावना चक्रबन्ध:

26. निर्गमनविधिचक्रबन्ध:

27. जयकुपतये सद्धर्मदेशना चक्रबन्ध:

28. तप: परिणाम चक्रबन्ध:

इस प्राकर हमें प्रत्येक सर्ग का चार इतने शब्द समूह के पता चल जाता है।

जयमहीपतेः साधुसदूपास्ति चक्रबन्धः -

जन्मश्रीगुप्साधन स्वयभवन् संदुःखदैन्यादेन्याद बाहि-
र्थत्नेनैषं विधुप्रसिद्धयशसे पापायकृत सत्तवयः।
मंजूपासकसडगतं नियमनं शास्ति स्म पृथ्वीभृते,
तेजः पुंजमयो यथागममथा हिंसाधिपः श्रीमते॥

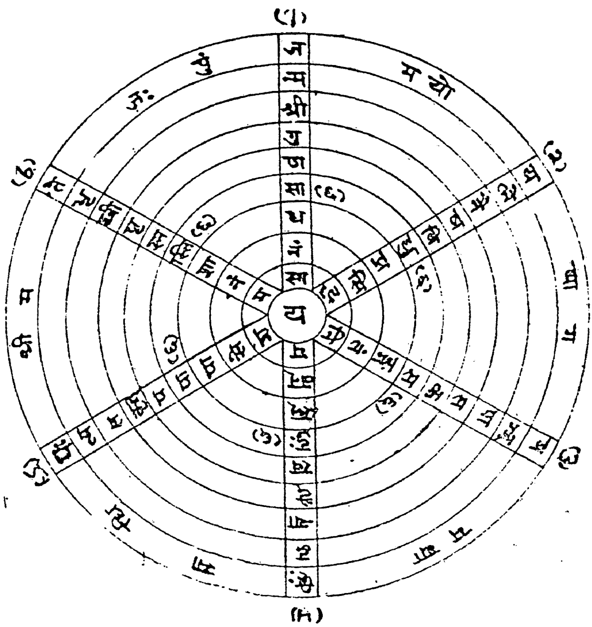

चक्रबन्ध के अरों के प्रत्येक अक्षर और छठे अक्षर को क्रमशः पढने पर **जयमहीपतेः साधुतदुपास्ति** यह वाक्य बनता है। वह इस बात का सूचक है कि इस सर्ग में जयकुमार के द्वारा साधु की उपासन की गयी है।

तज्जन्मोत्थितमित्थमुन्मदसुखं लब्ध्वा यथापाकलि -
पश्चात्सम्प्रति जम्पती अदमतामेवं हृदा चारूणा।
पंचाक्षाणि निजानि निर्मदतया तद्वृत्तमत्युतमं
भडक्षूद्गीतमिहोमवीतपदकैरित्युतृणाडकं मम॥

तमः परिणाम चक्रबन्ध -

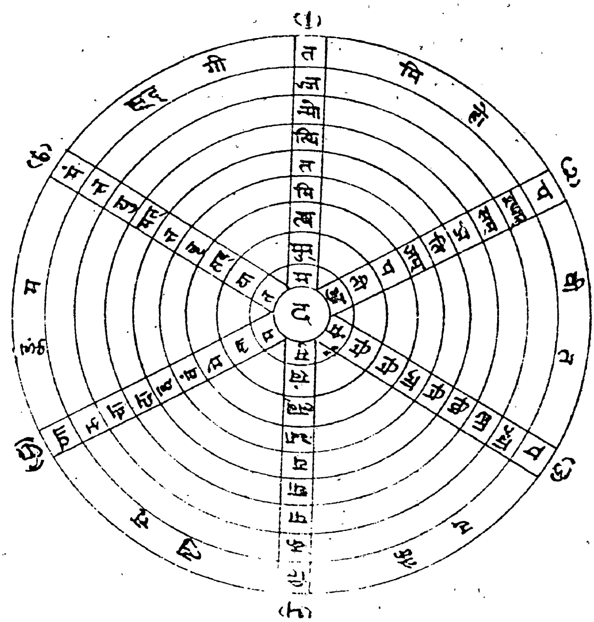

चक्रबन्ध के अरों में विद्यमान प्रथमाक्षरों को क्रम से पढ़ने से तपः परिणाम यह शब्द बनता है। इससे पता चलता है कि कवि ने इस वर्ग में जयकुमार द्वारा मोक्षप्राप्ति का वर्णन किया है।

आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने जयोदय महाकाव्य में रमणीयता, उत्कृष्टता एवं विशिष्टता, मनोभावों की उग्रता मनुष्य के चारित्रिक वैशिष्ट्य, परिस्थितियों एवं घटनाओं का हृदयस्पर्शी अनुभव कराने के लिए अलंकारात्मक शैली का आश्रय लिया है।

कविवर ज्ञानसागर जी ने इन अलंकार को बलात् छन्दों में समाहित नहीं है अपितु ये अलंकार उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा, प्रकाण्ड पाण्डित्य, मौलिक चिन्तन, अनवरत अध्ययन-मनन, विषय प्रतिपादन की अनूठी शैली, अगाध वैदुष्य आदि उनके विविध गुणों के फलस्वरुप काव्य में अपने आप अवतरित हुए है।

अलंकारों की सुष्ठु संयोजना से काव्य सौन्दर्य क्रम नहीं है अपितु उसमें उत्कर्ष ही हुआ है। उसमें अतिशयता आयी है, रमणीयता में वृद्धि हुई है। अभिप्राय की अभिव्यक्ति चमत्कार पूर्ण ढंग से हुई है जो बड़ी प्रभावी है। इसी से यह महाकाव्य बीसवीं शताब्दी का अद्वितीय महाकाव्य बन गया है।

सप्तम अध्याय

रसगत चमत्कार तथा जयोदय

रसगत चमत्कार - इस भारतीय काव्यशास्त्र का बहुचर्चित शब्द है। लौकिक रस एवं काव्य जगत के रस में बहुत अन्तर है। वेदों में रस शब्द का अर्थ सोमरस के अर्थ में किया गया है। ऋग्वेद में सोमरस का प्रशस्त वाणी में स्तवन किया गया है।

त गोभिर्वृषणं रसं मदाय देव वीतये। सुतं भराय संसृज।[1]

देवों मद करने के लिए उस अभियुत और अभीष्टवर्षक सोमरस में गव्य मिलाओ। रस का आध्यात्मिक अर्थ उपनिषद् में और भी स्पष्ट हो जाता है।

रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।[2]

वह रस रुप है इसलिए रस को पाकर जहां कहीं रस मिलता है उसे प्राप्त कर मनुष्य आनन्दमग्न हो जाता है।

राजशेखर के कथानानुसार नन्दिकेश्वर ने ब्रह्माजी के उपदेश से सर्वप्रथम रस का निरुपण किया। परन्तु नन्दिकेश्वर के रस विषयक मत का पता नहीं चलता। रस सिद्धान्त का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ नादयशास्त्र है। जो भरत मुनि की रचना के रुप में प्रसिद्ध है। इसमें रस के अंग-उपांगों का पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया गया है।

नाट्यशास्त्र के छठे और सातवें अध्याय में रस और भाव का निरुपण प्रस्तुत किया गया है। अन्य अध्यायों में रस की शेष सामग्री नायिका के अंगज, सहज और अयत्नज अलंकार, कामदशा तथा अवस्था अनुसार नायिका के वासकसज्जा आदि आठ भेद, प्रकृति के अनुसार उत्तम मध्यम, अधम नायक-नायिका के भेद तथा दूती प्रसंग की चर्चा है। इसके अतिरिक्त संगीत, आभूषण आदि के प्रयोग, वाद्य-यन्त्रों के प्रयोग आदि में भी रस का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में सम्पूर्ण रस कलेवर मिल जाता है। भरत का

---

1. ऋग, 9.6.6
2. ते. उप., 2.7

विवेचन विशद् और वर्णन सर्वत्र सांगोपांग है। भरत ने नाटक को ही वाङ्मय का सर्वश्रेष्ठ रुप माना है। नाटक का प्राण रस है, कोई भी नाट्यांग रस के बिना नहीं चल सकता।

तत्र रसानेव तावदादावभिव्याख्यास्यामः। न हि रसाद्
ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते॥[1]

रस परब्रह्म का आनन्द स्वाभाविक है जिसको वह कभी-कभी अभिव्यक्त करता है। उसी अभिव्यक्ति का नाम चैतन्य चमत्कार अथवा रस है।

काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम् रसादिश्चात्मा, गुणः शोर्यादिवत् दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोऽवयवसंस्थानविशेषवत् अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्।

रस वस्तुतः काव्य का प्राण है। जिस तरह प्राण शरीर के अन्दर अवस्थित रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है, वैसे ही रस शब्दार्थ के अन्दर अवस्थित रहकर स्वयं को प्रकाशित करता है। साहित्यशास्त्रियों के अनुसार -

विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के द्वारा आस्वादन योग्य किया गया स्थायी भाव ही रस कहलाता है -

विभावेरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृतः॥[2]

काव्य रस से प्राप्त आनन्द चमत्कार काव्य कोश, नाट्य दोनों के समावेश कौशल पर आधृत होता है।

यथा एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रस निष्पद्यन्ते

अर्थात इन भावों को सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है तो रसों की निष्पत्ति होती है। (नाट्यशास्त्र का. म. पृ. 106)

रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार भरत मुनि का यह प्रसिद्ध सूत्र **तत्र विभावानुभाव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः** अर्थात् विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। देखने से तो यह सूत्र जितना छोटा है विचार करने पर उतना सार गर्भित है। भरत मुनि ने इसका जो भाष्य लिखा है वह बड़ा ही सुगम है।

भरत सूत्र के टीकाकारों ने भिन्न - भिन्न व्याख्याएं की हैं। भरत सूत्र में

1. ना. शा., सन्दर्भ अध्याय संख्या दो
2. दशरूपक, 4/1

संयोगात् और **निष्पत्तिः** इन दो शब्दों को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। जिनमें चार मत प्रधान हैं इनमें भट्टलोल्लट, शकुक, भट्ट नायक तथा अभिनवगुप्त।

भट्टोल्लट - उत्पत्तिवादी हैं। वे रस को विभावादि का कार्य मानते है।

शंकुक - विभावादिकों के द्वारा रस की अनुमिति मानते हैं। उनके मतानुसार विभावादिकों का रस से अनुमाप्य - अनुमापक सम्बन्ध है।

भट्टनायक - भुक्तिवादी है। उनकी सम्मति में विभावादि का रस से भोज्य - भोजक सम्बन्ध है। जिसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अभिधा से अतिरिक्त भावकत्व तथा भोजकत्व नामक दो व्यापारों को स्वीकार किया है।

अभिनवगुप्त - व्यक्तिवादी है। उन्हीं का मत अधिक मनोवैज्ञानिक है। इसलिए सभी के द्वारा आदर व श्रद्धा का पात्र है। समग्र स्थायीभाव वासनारुप से सहृदयों के हृदय में विद्यमान रहते हैं। विभावादिकों के द्वारा ये ही सुप्त स्थायीभाव अभिव्यक्त होकर आनन्दमय रस का रुप प्राप्त कर लेते हैं।

मम्मट ने रस का स्वरुप निम्न शब्दों में प्रतिपादित किया है -

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि येन्नादयकाव्ययोः॥
विभावअनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायोभावो रसः स्मृतः॥[1]

कारण रूप विभाव, कार्य रुप अनुभाव और सहकारी रुप व्यभिचारी भावों से व्यक्त आश्रय में स्थित स्थायी भाव को रस कहते हैं। रस की संख्या के विषय में काव्यशास्त्रियों में मतभेद है।

भरत ने रस संख्या केवल आठ मानी है -

श्रृंगारहास्यकरुणा रोद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टो नाट्ये रसाः स्मृताः॥[2]

भरत ने अपने पूर्ववर्ती ब्रह्मा अथवा द्रुहिण के मतानुसार रस आठ माने हैं। शान्त रस के बारे में बड़ा विवाद है। भरत व धनंजय ने नाटक में शांत रस को अस्वीकार किया है।

अभिनवगुप्त ने अत्यन्त प्रबल शब्दों में बुद्धि-बल से शान्त रस की नाट्य और काव्य दोनों में प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार अभिनव गुप्त ने माना है

1. का.प्र., 4/27-28
2. ना. शा. 6/16

कि रस नौ ही होते हैं। **एवं ते नयैवरसाः**। न कम और न ज्यादा।

रूद्रट ने स्वीकृत संख्या में प्रेयान् रस की वृद्धि की है।

श्रृंगारवीरकरुणा बीभत्सभयानकाद्भुता हास्यः।
रौद्र शान्तः प्रेयानिति मन्तव्या रसाः सर्वे॥[1]

विश्वनाथ वात्सल्य को रस मानने के पक्षधर है। साहित्य में रस की महत्ता है। लौकिक संस्कृत का प्रथम श्लोक जो क्रोचवध के शोक भावना के अधिक भर जाने पर आवेश के कारण वाल्मीकी का शोक श्लोक में परिणत हो गया वह रसमय ही था।

रस को सब सम्प्रदायों ने अपनाया है। रस काव्य का प्राणतत्व है काव्य का जन्म ही रस दशा में हुआ था।

काव्यशास्त्रियों के मतानुसार नव प्रकार के स्थायी भाव हैं और उन्हीं भावों के अनुसार 9 रस है।

रस	स्थायी भाव
श्रृंगार	रति
हास्य	हास
करुम	शोक
रौद्र	क्रोध
वीर	उत्साह
भयानक	भय
वीभत्स	जुगुप्सा
अद्भुत	विस्मय
शान्त	निर्वेद

आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने **जयोदय** महाकाव्य में सभी रसों का प्रयोग किया है। लेकिन शान्त रस महाकाव्य का अंगीरस है। शेष श्रृंगारादि रस अंग रस के रुप में प्रयुक्त हुए है।

श्रृंगार रस

श्वशुरालयवर्तिनो निजे पतितां दृग्भ्रमरीं मुखाम्बुजे।
अवरोद्धुमिवावगुण्ठतः सुदृगाच्छादयदप्यकुण्ठतः॥[2]

1. हिन्दी अभिनवभारती, पृ. 640 2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 10/70

राजा जयकुमार जब विवाह के लिए राजमार्ग से निकलते है तो स्त्रियों में उनको देखने की उत्सुकता इतनी प्रबल होती है कि सुन्दर नेत्रों वाली किसी स्त्री ने वर देखने की अभिलाषा की, इसी बीच ससुराल के किसी पुरुष ने उसकी और देखा तो उसने अपना घूंघट आगे कर लिया, मानो उसकी दृष्टि ने भौरों को दबा रखने के लिए ही ऐसा किया।

इस श्लोक में नायिका आलम्बन विभाव तथा सुन्दर नेत्र उद्दीरन है। पुरुष की और देखना, घूंघट आगे करना अनुभाव है। लज्जित होना व्यभिचारी भाव है। रति स्थायी भाव होने से श्रृंगार रस निष्पन्न होता है।

तरलायतवर्तिरागता सा भवदत्रस्मरदीपिका स्वभासा।
अभिभूततमाः समा जनानां किमिव स्नेहमिति स्वयं दधाना॥[1]

सुलोचना के सौन्दर्य का निरुपण करते हुए कवि कहते हैं कि जब सुलोचना को विवाह के लिए मण्डप में लाया गया तो सम्पूर्ण वातावरण प्रकाशित हो गया।

चंचल एवं विशाल नेत्रों से युक्त सुलोचना ज्योंही मण्डप में प्रवेश करती है त्यों ही उसने अपनी कान्ति से वहाँ के अन्धकार को दूर कर दिया, वह सुलोचना दर्शकों के लिए स्वयं ही स्नेह को धारण करती हुई कामदेव की दीपिका (उद्दीपन करने वाली) सिद्ध हुई।

इस श्लोक में सुलोचना आलम्बन विभाव, चंचल एवं विशाल नेत्रों से युक्त मुख उद्दीपन है। अन्धकार को दूर करना अनुभाव है। रति स्थायी भाव होने से श्रृंगार रस है।

एक अन्य उदाहरण दर्शनीय है –

उत्क्रान्तवती कोमारमेषा चञ्चललोचना।
स्नेहादिव तथाप्येनां नेव भारःस बाधते॥[2]

जयकुमार की राज्यसभा में काशी नरेश का दूत उनकी पुत्री राजकुमारी सुलोचना के स्वयंबर की सूचना देकर उसके रूप सौन्दर्य के बारे में बताता है कि हाव-भाव भरे चंचल नेत्रोवाली यह सुलोचना को मार अवस्था पार कर चुकी है, पृथ्वी पर कामदेव को भी तिरस्कृत कर रही है। फिर भी मानों स्वाभाविक स्नेह के वश कामदेव उसे जरा भी कष्ट नहीं दे रहा है। अर्थात् युवावस्था में भी वह निर्विकार चेष्टावाली है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 10/113
2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/42

सुलोचना आलम्बन विभाव, चंचल नेत्र अनुभाव, रुप सौन्दर्य उद्दीपन विभाव, लज्जा व्यभिचारी बाव है। रति स्थायी भाव होने से श्रृंगार रस की धारा प्रवाहित होती है।

श्रृंगार रस का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

भूयो विरराम करः प्रियोन्मुखः सन् रुगन्वितस्तस्याः।
प्रत्याययो दृगन्तोऽप्यर्धपथा चपलताऽऽलस्यात्॥[1]

जब सुलोचना स्वयंबर सभा में आती है तो विद्या देवी अनेकों राज्यों के राजाओं से परिचय कराती है। अन्त में जयकुमार के पास पहुँचती है। विद्यादेवी ने जब सुलोचना के चित्त को जयकुमार के अनुकूल पाया तो वह जयकुमार के गुणों का वर्णन करने लगी। उसे सुनकर सुलोचना के हृदय में जयकुमार के प्रति और भी अतिशय प्रेम उमड़ पड़ता है और वह उसे (जयकुमार) को गले में वर माला डालना चाहती है, किन्तु उसका वरमाला वाला हाथ जयकुमार के सम्मुखहोकर भी बार-बार बीच में रुक जाता था। इसी तरह उसकी पलकें भी चपलता तथा आलस्यवश बीच रास्ते से वापस लौट आती थी।

इस श्लोक में आलम्बन, उद्दीपन, अनुभावों और व्यभिचारी भावों के स्वाभाविक वर्णन से श्रृंगार रस अभिव्यक्त होता है।

पुनः द्रष्टव्य है –

श्लथीकृताश्लेषरसे हृदीश्वरे विनिद्रनेत्रोदयमेति भास्करे।
सखीजने द्वारमुपागतेऽप्यहो चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सती॥[2]

स्वयंबर के पश्चात् काशी से हस्तिनापुर प्रयाण करते समय समस्त सेना गङ्गा तट स्थित एक वन में ठहरे वहाँ रात्रि निवास किया, जब प्रातः काल हुआ, उसका वर्णन किया।

वल्लभ का अलिङ्गन प्रेम शिथि हो गया, सूर्य उदयाचल पर पहुँच गया और सहेलियाँ द्वार पर आ गई, फिर भी जागृत सती सुलोचना आलिङ्गन से चलायमान नहीं हुई। भाव यह है कि पति की निद्रा भग्न न हो जावे, इस भय से उसने आलिङ्गन नहीं छोड़ा।

इस श्लोक में सुलोचना आलम्बन विभाव है, युगल दम्पत्ति के विलास

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 6/199
2. वही, उत्तरार्ध 18/92

उद्दीपन विभाव है, गाढ़ आलिङ्गन अनुभाव है, रति स्थायी भाव तथा विभाव, अनुभाव, संचारी के संयोग से श्रृंगार रस बनता है।

मुखारविन्दे शुचिहासकेशरेऽलिवत् स मुग्धो मधुरे मृगीदृशः।
प्रसन्नयोः पादसरोजयोर्दृशं निधाय पद्मापि जयस्य सम्बभो॥[1]

वह जयकुमार मृगनयनी सुलोचना के उज्जवल हास रुपी केशर से युक्त सुन्दर मुखकमल पर भ्रमर के समान मुग्ध होते हुए सुशोभित हो रहे थे और सुलोचना उनके प्रसन्न चरम कमलों में अपनी दृष्टि लगा कर शोभायमान हो रही थी।

इस श्लोक से श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति हो रही है। इसका स्थायी भाव रति है। इसमें सुलोचना आलम्बन विभाव, माधुर्य से भरा मुख कमल उद्दीपन है। सुलोचना के नेत्र चरण कमलों में पड़े हैं अनुभाव है। हास्य संचारी भाव है।

हास्यरस -

दृशि चैणमदः कपोलकेऽऽजनकं हारलतावलग्नके।
रशना तु गलेऽबलास्विति रयम्बोधकरी परिस्थितिः॥[2]

जब काशी नगरी में जयकुमार की बारात निकली, तब जयकुमार को देखने की प्रबल अभिलाषा से स्त्रियों का समूह राजमार्ग में आ गया, जयकुमार को देखने की घबराहट में स्त्रियों ने अपने आभूषणों को ठीक जगह न पहन कर गलत स्थान पर धारण करने लगी।

नारियों का अनौचित्य पूर्ण ढंग से आभूषण धारण करना हास्य रस की पुष्टि करता है। उस समय स्त्रियों में हड़बड़ी प्रकट करने वाली यह स्थिति पैदा हो गयी कि किसी ने आँखों में कस्तूरी लगा ली, दूसरी ने कपोलों पर अंजन पोत लिया, किसी के कमर में हार धारण कर लिया तो किसी ने गले में करधनी पहन ली।

वेश विकृति के कारण हास्य की व्यंजना हो रही है।

निपयो चष्कार्पितं न नीरं जलदायाः प्रतिबिम्बतं शरीरम्।
समुदीक्ष्य मुद्दीरितश्चकम्पे बहुशे त्यमितीरयंल्ललम्बे॥[3]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 23/5
2. जयोदय पूर्वार्ध 10/59 3. वही, 12/120

जयकुमार व सुलोचना के विवाह में पंक्ति भोज के अवसर पर बारातियों और कन्यापक्ष की महिलाओं के बीच हास-परिहास होता है। जब कोई स्त्री जल को परोस रही थी उसका स्वाभाविक चित्रण कवि ने इसमें किया है।

जल को परोसने वाली जिस स्त्री का प्रतिबिम्ब जल में पड़ रहा था अतः उस जल को बाराती ने नहीं पिया, किन्तु उसके प्रतिबिम्बत शरीर को देखकर यह बहुत ठंडा है ऐसा कहते हुए उसके अद्भुत सौन्दर्य के देखने के बहाने से उस जल पात्र को उसने हाथ से उठा लिया।

हास्य की एक और अभिव्यजंना देखिए -

अपि सात्विकसिप्रभागुदीक्ष्य व्यंजन कोऽपि विधुन्वतीं सहर्षः।[1]
कलितोष्ममिषोऽभ्युदस्तवक्त्रो हियमुज्झित्य तदाननं ददर्श॥

किसी बाराती को पसीना आ गया उसे गर्मी से उत्पन्न हुआ समझकर कोई युवती पर पंखा करने लेगी तो उस समय वह भी गर्मी का बहाना करके अपने मुँह को ऊँचा करके उस स्त्री के मुख को सहर्ष देखने लगा।

गर्मी के कारण पसीना आना आलम्बन विभाव, पंखा करना उद्दीपन विभाव है, मुख को ऊपर करना अनुभाव, मनोवृत्ति को छिपाना व्यभिचारी भाव है। हास्य स्थायी भाव होने से हास्य रस निष्पन्न होता है।

हास्य रस की एक अन्य बानगी द्रष्टव्य है -

उपपीडनतोऽस्मि तन्वि भावादनुभूष्णुस्तवकाभ्रकाम्रतां वा।
वत वीक्षत चूषणेन भागिन्निति सा प्राह च चुलदा शुभाङगी॥[2]

कोई स्त्री आम परोस रही थी उसे देखकर कोई बाराती कहने लगा कि तुम्हारे आमों को मैं दाबकरदेख लूं कि ये कैसे कोमल हैं। इस पर वह बोली चूस कर ही देख लो ना। भाव यह है कि वह तो उसे पत्नी रूप में बनाना चाहता ह किन्तु वह उसे माता का भाव प्रकट कर निरुत्तर कर देती है।

इस श्लोक में आम्रफल को खाना आलम्बन विभाव है, उसकी ैर देखना उद्दीपन विभाव, मनोवत्ति को तिरोहित करना व्यभिचारी भाव है। हास्य स्थायी भाव होने से हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है। वाणी की विकृति ही हास्य रस का परिचायक है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 12/122
2. वही, 12/127

हास्य का मनोहारी उदाहरण -

अथं कम्पनाधिनाथो भवेद् भवानेव देव भूमितले।
भवदपरः कश्च नरोऽकम्पनसुततां व्रजेद् बन्धो।।[1]

जयकुमार व सुलोचना अपनी सेना सहित जब विदा होकर हस्तिनापुर पहुँचते हैं तब उनके साथ हेमाङ्गद आदि साले भी होते हैं। वहाँ पर हेमाङ्गद आदि सालों के साथ जयकुमार की विनोदगोष्ठी चल रही है। किसी ने जयकुमार से कहा कि हे देव इस भूतल पर आप ही कम्पन भीरूता के अधिनाथ स्वामी हैं तथा कम्पनरुप आधिमानसिक व्यथा के नाथ हैं। जयकुमार ने कहा हे बन्धो आपके सिवाय दूसरा कौन मनुष्य अकम्पन सुतता-यमराज के पुत्र क प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् मैं तो कम्पन का ही अधिनायक हूँ पर आप तो अकम्पन यम के पुत्र होकर उसके उत्तराधिकारी बन रहे हैं। आपके सिवाय अकम्पन काशी नरेश की पुत्रता को कौन प्राप्त हो सकता है।

यहाँ पर अकम्पन का दूसरा अर्थ यम लिया गया है। हास्योत्पादक विभावों, अनुभावों एवं संचारी के वर्णन से हास्य रस की व्यजंना होती है।

करुण रसः -

मृताङगनानेत्रपयः प्रवाहो मदाम्भसा वा करिणां तदाहो।
योऽभूच्चयोऽदोऽस्ति ममानुमानुमदगीयतेऽसो यमुनाभिधानः।।[2]

अर्ककीर्ति व जयकुमार के बीच महायुद्ध हो रहा था। दोनों सेनाओं के लोग मर रहे थे। उस समय युद्ध भूमि का वातावरण बड़ा दयनीय था।

उस समय मृत शत्रुवीरों की स्त्रियों के आसुओं का जल अथवा हाथियों के मदजल का समूह बहा, आश्चर्य है कि वही **यमुना नदी** के नाम से आज कहा जाता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

इस श्लोक में मृत शत्रु आलम्बन विभाव है, उनका दर्शन उद्दीपन है, स्त्रियों के नेत्रों से आसुओं का निकलना अनुभाव है। चिन्ता व्यभिचारी भाव है। शोक स्थायी भाव होने से करुण रस की अभिव्यक्ती होती है।

करुण रस की एक और बानगी दर्शनीय है -

तनये मन एतदातुरं तव निर्योगविसर्जने परम।
ललनाकलनाम्नि किन्त्वसौ व्यवहारोऽव्यवहार एत्र भोः।।[3]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 21/83
2. वही, 8/40   3. जयोदय पूर्वार्ध 13/9,10

अयि याहि च पूज्यपूजया स्वयमस्मानपि च प्रकाशय।
जननीति परिसूताश्रुभिर्बहुलाजां स्तनुते स्म योजितान्। युग्मम॥

इस श्लोक में उस समय का वर्णन है जब सुलोचना विवाह के पश्चात् अपने घर से विदा हो रही है और उसकी माता उसको कर्तव्यता का ज्ञान कराती है।

सुलोचना की माता विदाई के समय बोली है पुत्री, तुझे विदा करते समय मेरा मन बहुत खिन्न हो रहा है, किन्तु किया क्या जाय, ललना जाति के लिए यह व्यवहार तो अनिवार्य ही है। इसलिए हे तनये जाओ और पूज्य पुरुषों की पूजा करके अपने आपको भी और हमें भी उज्जवल बनाओ। इस प्रकार कहते हुए आँखों से निकले आँसुओं से मिश्रित खील सुलोचना के मस्तक पर डाले।

कवि ने करुण रस का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है।

रौद्र रस -

कल्यां समाकलय्योग्रामेनां भरतनन्दनः।
रक्तनेत्रो जवादेव बभूव क्षीबतां गतः।[1]

राजकुमारी सुलोचना स्वयंबर सभा में उपस्थित अनेक राजकुमारों के स्थान पर जयकुमार का वरण कर लेती है। इससे दुर्मर्षण खिनन हो जाता है और अपने स्वामी अर्ककीर्ति का अपमान समझकर उनको जयकुमार के प्रति उकसाता है। इससे अर्ककीर्ति जयकुमार व सुलोचना के पिता अकम्पन के प्रति क्रोध से प्रज्वलित हो जाता है।

इस प्रकार दूर्मर्षण की उग्र वाणी रुप तेज मदिरा पीकर भरत सम्राट का पुत्र शीघ्र ही मदमत्त होता हुआ लाल नेत्रों वाला बन गया।

अर्ककीर्ति इस रस का आश्रय है। दुर्मषण के वचन उद्दीपन विभाव हैं। नेत्रों का लाल होना अनुभाव है, मदमत्त होना व्यभिचारी भाव है। क्रोध स्थायी भाव होने से रौद्र रस निष्पन्न होता है।

एक दूसरा मंजुल उदाहरण द्रष्टव्य है -

राज्ञामाज्ञावशोऽवश्यं वश्योऽयं भो पुनः स्वमम।[2]
नाश काशीप्रभोः कृत्वा कन्या धन्यामिहानयेत्॥

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/17

2. वही, 7/22

अर्ककीर्ति को अपने खड्ग पर गर्व है कि वह सबको अपने अधीन कर सकता है। यह मेरा खड्ग राजाओं की मेरी आज्ञा में रखने वाला और मेरे वश में है। इसलिए यह काशीपति अकम्पन का नाश कर उस भाग्यशालिनी कन्या को मेरे पास यहाँ ला देगा।

अर्ककीर्ति के क्रुद्ध होने से रोद्ररस की अभिव्यक्ति होती है। अपनी वीरता की प्रशंसा करना अनुभाव है, उग्रता, मोह व्यभिचारी भाव है।

रौद्र रस का चमत्कार देखिए -

क्षमायामस्तु विश्रामः श्रमणानां तु भो गुण।[1]
सुराजां राजते वंश्यः स्वंय माञ्चकमूर्धनि॥

अर्ककीर्ति जयकुमार से युद्ध की घोषणा करता है तो उसका मंत्री स्वामी का हित चाहता हुआ शुभ वचनों के द्वारा उनको समझाता है, लेकिन मद अभिमानी अर्ककीर्ति पर उसके वचनों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है और वह मंत्री से कहता है सुनो। क्षमा बोलकर विश्राम लेने वाले तो श्रमण होते हैं। क्षत्रियों का पुत्र तो अपने बल द्वारा सिंहासन के सिर पर आरूढ़ होता है।

मन में स्थित जयकुमार विभाव, सुलोचना के द्वारा माला पहनाना उद्दीपन विभाव है, प्रतिशोध की भावना अनुभाव है। ईर्ष्या संचारी भाव है।

द्रौद्र का एक और निदर्शन -

यत्यतेऽथ सदपत्यतेजसा सार्पिता कमलमालिकाऽञ्जसा।[2]
मूर्छिताऽस्तु न जयाननेन्दुना तावतार्ककरतः किलामुना॥

अर्ककीर्ति दूत से कहता है कि हे सज्जनात्मज! जयकुमार के कण्ठ में सुलोचना द्वारा अर्पित वह पद्ममयी वरमाला जयकुमार के मुख चन्द्र से मुरझाने न पाये, निश्चय ही इसलिए सूर्य के कर स्वरूप अर्ककीर्ति के हाथों, तेज से यह प्रयत्न किया जा रहा है।

जयकुमार आलम्बन विभाव है। अर्ककीर्ति इसका आश्रय है। सुलोचना द्वारा वरमाला डालना उद्दीपन विभाव है, वीरता की प्रशंसा करना अनुभाव है, मोह आदि व्यभिाचीर भाव है।

क्रोध स्थायी भाव होने से रौद्र रस निष्पन्न होता है।

---

1. जयोदय पूर्वार्ध 7/46
2. वही, पूवार्ध, 7/64

वीररस -

निर्गमेऽस्य पटहस्य निःस्वनो व्यानशे नभसि सत्वरं घनः।[1]
येन भूभृदुभ्यस्य भीमयः कम्पमाप खलु सत्तवसञ्चयः॥

जयकुमार व अर्ककीर्ति के बीच युद्ध की जब घोषणा कर दी गयी तब जयकुमार अपने दल-बल के साथ अर्ककीर्ति से युद्ध के लिए जाने लगा।

इस प्रकार सज धन के साथ जयकुमार निकला तो उसके भैरी की तेज आवाज शीघ्र ही सारे ब्रह्माण्ड मं फैल गयी। फलतः दोनों तरफ से भूभृतों (राजा और पर्वतों का) आत्मभाव व प्राणिवर्ग निश्चय ही भयभीत होकर कांपने लगा।

इसमें वीररस का सागर लहराता हुआ प्रतीत होता है।

निम्नाङ्कित श्लोक में वीर रस की व्यंजना देखिए -

अश्रुनीरमधुना सकज्जलमादधो रिपुवधूपयोधरः।
दिक्कुलं खलु रजोऽन्वितं तदुत्पातमस्य गमनेऽरयो विदुः॥[2]

जयकुमार व सेना को देखकर शत्रु पक्ष अपने आपको निर्बल समझने लगा और उनकी स्त्रियों की बड़ी कारुणिक दशा हो गयी।

जयकुमार के द्वारा प्रयाम के समय शत्रुओं की वधुओं के पयोधर कज्जलयुक्त आसुओं की बूंदों से छा गये। दसों दिशाएँ एवं आकाश धूलि से व्याप्त हो गया, तो शत्रुओं ने समझा कि उनकी यात्रा में उत्पात हो गया।

अर्ककीर्ति इसका आलम्बन विभाव है। युद्ध के प्रयाण अनुभाव गर्व आदि व्यभिचारी भाव है। उत्साह स्थायी भाव होने से वीर रस निष्पन्न होता है।

समुद्ययो संगजगं गजस्थः पत्तिः पदातिं रथिनं रथस्थः।[3]
अश्वस्थितो श्वाधिगतं समिद्धं तुल्यप्रतिद्यन्द्वि बभूव युद्धम्॥

जयकुमार व अर्ककीर्ति के बीच जब युद्ध हो रहा था तब उनकी सेना में परस्पर इस प्रकार युद्ध हो रहा था कि गजाधिर के साथ गजाधिप, पदाति के साथ पदाति, रथारूढ़ के साथ रथारुढ़ और घुडसवार के साथ घुडसवार जूझ पडे। इस प्रकार अपने अपने समान प्रतिस्पर्धी के साथ भीषण युद्ध हुआ।

इस श्लोक में प्रतिपक्षी योद्धा आलम्बन विभाव है, उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/97
2. वही, पूवार्ध, 7/99 3. वही 8/11

विभाव है। प्रतिद्वन्द्वी के साथ युद्ध प्रवृत्ति अनुभाव है, आवेग व्यभिचारी भाव है। उत्साह स्थायी भाव होने से वीर रस की अभिव्यक्ति होती है।

वीर रस का चमत्कार देखिए -

इतोऽयमर्कः स च सौम्य एष शकुः समन्ताद् ध्वजवस्त्रलेशः।
रक्तःस्म को जायत आयतस्तु गुरुर्भटानां विरवः समस्तु॥
केतुः कबन्धोच्वलनैकहेतुस्तमो मृतानां मुखमण्डले तु।
सोमो वरासिप्रसरः स ताभिः शनेश्चरोऽभूत्कटको घटाभिः।
मितिर्यतः पञ्चदशत्वमा ख्यन्नक्षत्रलोकोऽपि नवत्रिकाख्यः।
क्वचित्परागो ग्रहण च कुत्रि खगोलता भूत्यमरे तु तत्र॥[1]

युद्ध भूमि हमें खगोल की भाँति दिख रही थी क्योंकि एक ओर तो अर्क (सूर्य और अर्ककीर्ति) था तो दूसरी ओर सोम का पुत्र बुद्धिमान (बुध) जयकुमार। ध्वजाओं का वस्त्र शुक्र (सफेद) था तो योद्धाओं के शरीर से बहा रक्त (मंगल) तो भूमि पर हो रहा था योद्धाओं का शब्द गुरु (गुरुग्रह) था, अनेक कबन्धों का उछलना केतु का काम कर रहा था। मरे योद्धाओं के मुख पर तम (राहु) था और चमकती तलवारें चन्द्रमा का काम कर रही थी। साथ ही हाथियों की घटा से व्याप्त होने के कारण सारा सेना समूह शनेश्चर बन रहा था, अर्थात् धीरे धीरे चल रहा था। वहाँ का अनुमान अन्त में मरणरुपी पन्द्रह तिथियों का स्मरण कराता था। रणभूमि में क्षत्रिय लोग पीठ नहीं दिखाते थे। अतः 27 नक्षत्र थे। कहीं तो पराग-चन्द्रमा का ग्रहण (राग से रहित होना) था तो कहीं धर-पकड़ होती थी जो सूर्यग्रहण का स्मरण कराती थी।

कवि वीर रस के माध्यम से युद्ध स्थल का कितना स्वाभाविक चित्रण किया है। इस श्लोक में जयकुमार व अर्ककीर्ति आलम्बन विभाव है, योद्धाओं के शरीर से बहता रक्त उद्दीपन विभाव, रणभूमि अनुभाव है, कोलाहल होना व्यभिचारी भाव है। उत्साह इसका स्थायी भाव है।

वीररस का अन्य निदर्शन -

निपातयामास भटं धरायामेकः पुनः साहसितामथायात्।[2]
स तं गृहीत्वा पदयोश्च जोषं प्रोत्क्षिप्तवान् वायुपथे सरोषम्॥

सेनानियों के साहसिक कार्य का वर्णन इस श्लोक में किया गया है कि एक वीर ने दूसरे वीर को जमीन पर गिरा दिया। वह गिरा हुआ मनुष्य

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/20-22

2. वही, 8/25

एकदम साहस कर उठा और उसने दूसरे भट के पैर पकड़ कर उसे आकाश में उछाल दिया।

इस श्लोक में वीर पुरुष आलम्बन विभाव है। जमीन पर गिरना उद्दीपन विभाव, साहस कर उठना अनुभाव है, चपलता पूर्वक उछालना व्यभिचारी भाव है। उत्साह स्थायी भाव होने से वीर रस की पुष्टि होती है।

एक अन्य रमणीय निदर्शन देखिए –

रणोऽनणीयाननयो रभाद्वै सदिव्यशस्त्रप्रतिशस्त्रभावैः।[1]
समुत्स्फुरद्विक्रमयोरखण्डवृत्तया तदाश्चर्यकरः प्रचण्डः॥

उस समय प्रस्फुरित बलशाली उन दोनों सूनमि अर्ककीर्ति की ओर से और मेघप्रभ जयकुमार की तरफ से दोनों का बड़े वेग से दिव्य शस्त्र और प्रतिशस्त्रों द्वारा अखण्डवृत्ति से बड़ा ही आश्चर्यकारी प्रचण्ड घोर युद्ध हुआ।

जयकुमार व अर्ककीर्ति आलम्बन विभाव, दोनों योद्धाओं का युद्ध उद्दीपन विभाव है, युद्ध में प्रवृत्त होना अनुभाव है। क्रोध व्यभिचारी भाव है तथा उत्साह स्थायी भाव होने से वीर रस निष्पन्न होता है।

वीररस की एक और बानगी –

रथसादथ सारसाक्षिलब्धपतिना सम्प्रति नागपाशबद्धः।[2]
शुशुभेऽप्यशुभेन चक्रितुक् तत्तमसा सन्तमसारिरेव भुक्तः॥

जब जयकुमार व अर्ककीर्ति का परस्पर युद्ध होता है और जयकुमार विजय श्री को प्राप्त करता है तथा वह अर्ककीर्ति को पराजित करके अपने रथ में डाल लेता है। उस समय नागपाश में बांधकर जयकुमार ने अर्ककीर्ति को अपने रथ में डाल दिया। उस समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था कि राहु द्वारा आक्रान्त सूर्य ही हो। जैसे नागरपाश तो राहु हुआ और अर्ककीर्ति हुआ सूर्य।

आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव व व्यभिचारी भाव के माध्यम से व उत्साह नामक स्थायी भाव होने से वीर रस के दर्शन होते हैं।

भयानक रस –

जयोदय महाकाव्य का यह सुन्दर श्लोक भयानक रस की अभिव्यक्ति करता है –

प्राप्य कम्पननमकम्पनो हृदि मन्त्रिणां गणमवाप संसदि।[3]
विग्रहग्रहसमुत्थिव्यथः पान्थ उच्चलति किं कदा पथः॥

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/73   2. वही, 8/81   3. वही, 7/55

स्वयंबर सभा में सुलोचना के द्वारा जयकुमार के गले में स्वयंबर माला डालने से अर्ककीर्ति रोष में आ जाता है तथा सुमति नाम के मंत्री के भडकाये जाने पर वह युद्ध की घोषणा कर देता है।

अकम्पन यह समाचार सुनकर हृदय से काँप उठा और उसने सभा में मंत्रियो के समुदाय को बुलाया। कारण झगड़े की बात सुनकर उसके मन में व्यथा पैदा हो गयी। ठीक ही है, क्या कभी कोई पथिक उचित मार्ग से हट सकता है।

भय नामक स्थायी भाव होने से भयानक रस निष्पन्न होता है।

एकअन्य निदर्शन अवलोकनीय है –

विलूनमन्यस्य शिरः संजोष प्रोत्पत्तयखात्संपतदिष्टपौषम्।
वक्रोडुपे किम्पुरुषाङगनाभिः क्लृप्तावलोक्याथ च राहुणा भीः॥[1]

जब जयकुमार व अर्ककीर्ति के बीच युद्ध हो रहा था तो युद्ध स्थल पर योद्धाओं के विदीर्ण का चित्रण कवि ने भयानक रस के माध्यम से किया है।

जोश के साथ छेदा गया किसी योद्धा का सिर आकाश में उछल कर वापस पृथ्वी पर गिरने जा रहा था। उसे उस तरह आता देख कर वहाँ स्थित किन्नरियाँ भयभीत हो उठी कि कहीं हमारे मुख चन्द्र को राहु ग्रसने के लिए तो नहीं आ रहा है।

भयमय विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के माध्यम से तथा भय स्थायी भाव होने से भयानक रस की पुष्टि होती है।

बीभत्स रस :

अप्राणकैः प्राणभृतां प्रतीकेरमानि चाजिःप्रतता सतीकैः।
अभीष्टसंभारवती विशालऽसौ विश्वस्त्रष्टुःखलु शिल्पशाला॥[2]

जयकुमार व अर्ककीर्ति के युद्ध के पश्चात् रण भूमि की स्थिति इतनी करुणामयी हो गयी थी जिनके प्राण निकल कर हाथ – पैर कट गये थे वे बीभत्स रस की पुष्टि करा रहे थे।

वह रणभूमि योद्धाओं के कटे निष्प्राण हाथ, पैर, सिर आदि अवयवों से भर गयी थी। कुछ लोगों को वह ऐसी प्रतीत होती थी मानों वांछित सामग्रीपूर्ण विश्वकर्मा की शिल्पशाला हो।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/55 2. वही, 8/37

इस श्लोक में हाथ पैर कटे आलम्बन विभाव है, उनको देखना उद्दीपन विभाव है। शून्यता मोह व्यभिचारी है। जुगुप्सा स्थायी भाव होने से बीभत्स रस की अभिव्यक्ति हो रही है।

बीभत्स का चमत्कार द्रष्टव्य है -

पित्सत्सपक्षाः पिशिताशनायायान्तस्तदानीं समरोर्वरायाम्।
चराश्च पूत्कारपराः शवानां प्राणा इवाभुः परितः प्रतानाः॥[1]

युद्ध के उपरान्त युद्ध भूमि में गिद्ध शवों का मांस निकाल कर खा रहें हैं। वे हमें बीभत्स रस की प्रतीति करा रहे हैं। उस समय उस समरभूमि में पक्षियों के समूह वहाँ मांस खाने के लिए आये थे। वे उन शवों पर ऐसे प्रतीत होते थे मानों फूत्कारपूर्वक निकलते उनके प्राण ही हों।

इसमें शव दर्शन आलम्बन विभाव है, गिद्धों के द्वारा मांसादि भक्षण उद्दीपन रुप से चित्रित है, ऐसा भयानक दृश्य देखकर आँखे बन्द करना अनुभाव है। व्याधि, आवेग संचारी भाव है। जुगुप्सा स्थायी भाव होने से बीभत्स रस है।

अद्भुत रस -

नभः सदां तं विचरन्तभुज्जवलं विहायसा व्योमरथं विलोकयन्।[2]
प्रभावतीत्युक्तवचा विचक्षणो मुमूर्च्छ जातिस्मरणं जयो व्रजन॥

जयकुमार व सुलोचना अपनी छत पर बैठे थे, उस समय उन्होंने आकाश में देव विमान देखा, उसको देखकर उनको पूर्व जन्म का स्मरण होते ही जयकुमार को अवधि ज्ञान, व सुलोचना को जाति स्मरण।

विचारशील जयकुमार वहां आकाश मार्ग से जाते हुए विद्याधरों के विमान को देखकर जातिस्मरण को प्राप्त हुए तथा प्रभावती यह वचन कहकर मूर्छित हो गये।

इस श्लोक में देवविमान का दर्शन आलम्बन विभाव है, पूर्व जन्म का स्मरण उददीपन विभाव है, मूर्छित होना अनुभाव है, चिन्ता होना व्यभिचारी भाव है। विस्मय स्थायी भाव होने से अद्भुत रस निष्पन्न होता है।

अद्भुत रस का सौन्दर्य दर्शनीय है -

जयोऽथ जातिस्मृतिमेव ता प्रियामलब्धसूर्वामिव सुन्दरी श्रिया।
उपपेत्य रन्तुं परदाभिदां ह्रिया बभार मूर्च्छामपि चावृतिक्रियाम्॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/39 2. वही उत्तरार्ध 23/10 3. वही, 23/11

जयकुमार को अपना पूर्वजन्म क्या प्राप्त किया था, मानों अलब्ध पूर्व सुन्दरी ही प्राप्त की थी। उसे पाकर रमण करने के लिए मानों लज्जावश परदा रूप मूर्च्छा को स्वीकृत किया था।

प्रभावती रूप में ज्ञान होना आलम्बन विभाव है, जन्म स्मरण उद्दीपन विभाव, इच्छाएँ व्यभिचारी भाव है। विषमय स्थायी भाव से अद्‌भुत रस की प्रतीति होती है।

अद्‌भुत रस का चमत्कार द्रष्टव्य है –

कमनः शमनन्दिनामुनाऽपहतास्त्रसत्वनुकम्पयाऽधुना।
समिताश्च मिताः सुमश्रेयामृतवस्तद्धितवस्तुदित्सया॥[1]

राजा जयकुमार ने अपने पुत्र अनन्तवीर्य का राज्याभिषेक करके उसे राजनीति सम्बन्धी ज्ञान दिया, उसके पश्चात् वे भगवान् आदिनाथ के समवसरण गए व उसका वर्णन।

वहाँ सभी ऋतुएँ एक साथ प्रकट हुई थी उससे ऐसा जान पड़ता था कि शान्ति में आनन्द की अनुभूति करने वाले अर्हन्त भगवान् कामदेव को शस्त्ररहित कर दिया था, अब करुणाबुद्धि से उसकी हितकारी वस्तु देने की इच्छा से पुष्पों की शोभा में पूर्णता को प्राप्त छहों ऋतुएं मानों एक साथ आई है।

इसमें समवसरण मण्डप आलम्बन विभाव है, रोमांच अनुभाव है। एक अन्य उदाहरण देखिए –

समवसरणमेवं वीक्षमाणोऽथं देवं
गुणमणिमनुलेभे हर्षमेतेन रेभे।
पुलककुलकशंसा अन्तरेनोदुरंशाः
सपदि बहिरूदीर्णा पुण्यपाकेऽवतीर्णात्॥[2]

समवसरण में पहुँचने के पश्चात् वह आदिनाथ के चरणों के सानिध्य में गये। इस प्रकार समवसरण को अच्छी तरह देखते हुए जयकुमार गुणरुपी मणियों से सहित भगवान् आदीश्वर को प्राप्त हुए, अर्थात् उनके समीप पहुँचे। इसलिए उन्होंने बहुत भारी हर्ष प्राप्त किया और उस हर्ष से उनके शरीर में रोमांच निकल आये। वे रोमांच ऐसे जान पड़ते थे मानो पुण्योदय में अवतीर्ण

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 26/47
2. वही, 26/68

होने से उनके भीतर जो पाप के कुत्सित अंश थे वे रोमांच समूह के छल से बाहर निकल आये हों।

शान्त रस -

जयोदय महाकाव्य का अङ्गी रस शान्त रस ही है अतः इनके प्रचुर उदाहरण यहाँ उपलब्ध है। यथा -

यस्यान्तरङ्गेऽदुतबोधदीपः पापप्रतीपं तमुपेत्य नीपः।
स्वयं हि तावज्जडताभ्यतीत उपेति पुष्टिं सुमनऽप्रतीतः॥[1]

जयकुमार वन क्रीड़ा के लिए जाते हैं। वहाँ उन्हें मुनिराज के दर्शन होते है। जब वे दर्शन के लिए जाते है तो देखते हैं कि समस्त वन मुनि राज के आतिथ्य में संलग्न हो जाता है।

जिसके अन्तर में अद्‌भुत ज्ञानरुपी दीपक जगमगा रहा है उस पाप के शत्रु महर्षि को प्राप्त कर यह कदम्ब का वृक्ष अपने आप जड़ता से रहित हो फूलों से व्याप्त होता हुआ पुष्ट हो रहा है।

इसमें मुनिराज शान्त के आलम्बन विभाव के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वन उद्दीपन विभाव है, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव रुप से हैं। शम नामक स्थायी भाव होने से शान्त रस की अभिव्यक्ति करता है।

शान्त रस का रम्यरुप देखिए -

भुवि महागुणमार्गगणशालिना सुविधधर्मधरेण च साधुना।
अभयमङिगजनाय नियच्छता यद्यपि मोक्षपरस्वतयास्थितम्॥[2]

ये मुनिराज इतने गुण सम्पन्न हैं कि प्राणियों को जीवन देना इनके वश में है। इस भूमण्डल पर ये साधू मुनिराज गुणस्थान और मार्गणाओं की चर्चा से सम्पन्न हैं, उत्तम विधियुक्त धर्म के धारक हैं। तथा प्राणिमात्र को अभ्य दान देते हैं। फिर भी ये मुक्ति प्राप्त करने में तत्परता से लगे हुए हैं।

गुण (प्रत्यंचा) और मार्गणों (बाणों) से युक्त, उत्तम र्ध (धनुष) के धारक ये साधुराज प्राणिमात्र को अभयदान देते हुए भी अचूक निशाना लगाने में भी तत्पर हैं।

आत्मने हितमुशन्ति निश्चय व्यावहारिकमुताहितं नयम्।
विद्धि त पुनरदः पुरस्सरं धान्यमतिस्त न विना तृणोत्करम्॥[3]

जयकुमार के पूछने पर मुनिराज ने गृहस्थों के हित के लिए कल्याणकारी

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/85 2. वही, 1/98 3. वही, 2/3

उपदेश व्यवहारनय के साथ उनकी उपयोगिता और उपादेयता बतलाते हुए कहते हैं कि यद्यपि महात्मा लोग निश्चय नय को अपना हितकर तथा व्यवहारनय को अहितकर कहते हैं फिर भी हे शिष्य यह समझ लें कि निश्चय - नय व्यवहार नय पूर्वक ही होता है, क्योंकि धान्य भूसे के बिना नहीं होता।

शान्त रस का एक और निदर्शन -

कर्मनिर्हरणकारणोद्यमः पोरुषोऽर्थ इति कथ्यतेऽन्तिमः।
सत्सुतत्स्वकृतमात्र सातनः श्रावकेषु खलु पापहापनम्॥[1]

मुनिराज मोक्ष की उपादेयता बताते हुए कहते है कि पुरुषार्थों में अन्तिम मोक्ष-पुरुषार्थ कर्मो के अभाव का कारणरुप उद्यम है। वह त्यागी तपस्वियों में तो अपने किये विहित कर्म मात्र का नाशक है। किन्तु श्रावकों के लिए निश्चय ही वह पापों का नाशक है।

संसार की निःसारता आलम्बन विभाव है, मुनिराज का उपदेश उद्दीपन विभाव है, मोक्ष की महत्ता अनुभाव है। शम स्थायी भाव होने से शान्त रस की पुष्टि होती है।

शान्त रस की एक और बानगी द्रष्टव्य है -

क्षणरूचिः कमला प्रतिदिडमुर्ख सुरधनुश्चलमेन्द्रियिकं सुखम्।
विभव एष च सुप्तविकल्पवदहह दृश्यमदोऽखिलमँश्रुवम्॥[2]

जब जयकुमार व सुलोचना तीर्थयात्रा पर जाते है तब वहाँ कांचना नामक देवी जयकुमार के सील की परीक्षा के लिए आती है लेकिन जयकुमार अपने सदाचरण से विचलित नहीं होते हैं। इस घटना से उनके मन में वैराग्य भाव की उत्पत्ति होती है और वह अपने पुत्र का राज्याभिषेक करके वन में चले जाते हैं। उनको संसार की निःसारता का पता चलता है और दिगम्बर मुनि बन जाते हैं।

धन सम्पत्ति प्रत्येक दिशाओं में चमकने वाली बिजली के समान है, इन्द्रियजन्य सुख चंचल है और पुत्र पौत्रादि रुप वह वैभव स्वप्न के समान है। खेद है कि दिखायी दे वाला सब कुछ अनित्य है, स्थिर रहने वाला नहीं है। शान्तरस की शीतलता देखिए -

हे देव दोषा वरणप्रहीण! त्वामाश्रयेद् भक्तिवशः प्रवीणः।
नमामि तत्वाधिगमार्थमारान्न भामितः पश्यतु भारधारा॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 2/22
2. वही उत्तरार्ध, 25/3 3. वही 26/72

संसार की क्षण भंगुरता को जानकर जयकुमार वन में चले जाते हैं। वन में भगवान् आदिनाथ के समवसरण में पहुँच कर मोक्ष के लिए ऋषभदेव से विनयपूर्वक स्तुति की कि है रागादि दोष तथा ज्ञनावरणादि कर्मो से रहित देव! भक्ति के वशीभूत चतुर मनुष्य आपका ही ? आश्रय लेते हैं, अतः तत्त्वज्ञान के लिए में शीघ्र ही आपको नमस्कार करता हूँ और चाहता हूँ कि अब कामदेव के अस्त्र शस्त्रों की धारा मुझे न देखे।

जग्मुर्निर्धूतिसत्सुखं समधिकं निर्देशतातीतिपं
यस्मादुत्तमधर्मतः सुमनसस्ते शश्वदुद्भासितम्।
कुज्ञानातिगमन्तिमं स मनसा तेनार्जितः सिद्धये
येनासो जनिरायतिः सकुशला पंचायतच्छित्तये॥[1]

जयकुमार ने जिनेन्द्रदेव के धर्मोपदेश को बड़ी श्रद्धा से ग्रहण किया व निर्ग्रन्थ दीक्षआ धारण की।

पवित्र चित्तवाले वे प्रसिद्ध महापुरुष समता के समुद्र वचनागोचर स्थायी, कुज्ञान से रहित और अन्तिम सर्वोत्कुष्ट निर्वाण सुख को प्रात हुए थे ैर जिसके द्वारा वर्तमान जीवन तथा आगामी जीवन कुशलता से युक्त होता है, उस उत्तम धर्म को जयकुमार ने पंचन्द्रियों की प्रकृति का विघात करने एवं मुक्ति प्रात करने के लिए हृदय से स्वीकृत किया।

शान्तरस का चमत्कार -

सदाचारविहीनोऽपि सदाचारपरायणः।
स राजापि तपस्वी सन् समक्षोऽप्यक्षरोधकः॥[2]

जयकुमार ने भगवान् ऋषभ देव से धर्म उपदेश सुनकर तपस्वी हो जाते हैं व दिगम्बर मुद्रा को धारण कर लेते हैं।

वह मुनि जयकुमार सदाचार-निरन्तर परिभ्रमण से रहित होकर भी सदाचारपरायण थे, निरन्तर परिभ्रमण करने में तत्पर रहते थे। (परिहार पक्ष में स्वाध्याय आदि समीचीन आचरण में तत्पर थे) राजा होकर भी तपस्वी थे (परिहार में राजा-सुन्दर शरीर वाले होकर भी तपस्वी थे) और समक्ष पंचेन्द्रियों से सहित होकर भी अक्षरोधक इन्द्रियों का निरोध करने वाले थे (परिहार पक्ष में समक्ष-सर्वसाधारण के गोचर-मिलने के योग्य अथवा समीचीन अक्ष आत्मा से सहित थे) शम स्थायी भाव होने से शान्त रस निष्पन्न होता है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 27/66
2. वही उत्तरार्ध, 28/5

शान्त रस का एक और श्लोक -

श्रीयुक्तदशधर्मोऽपि नवनीताधिकारवान्।
तत्वस्थिति प्रकाशाम स्वात्मनेकायितोऽप्यभूत्।।[1]

जयकुमार के तपस्वी होने के पश्चात् उनके आन्तरिक गुणों में और वृद्धि हो गयी।

शोभा सहित क्षमादि दश धर्मो से युक्त होकर भी वे नो धर्मो के अधिकार से सहित थे जीवादि सात तत्वों की स्थिति का प्रकाश करने के लिए एक स्वकीय आत्मा के साथ ही एकत्व को प्राप्त थे।

परिहार पक्ष में - वे दश धर्मो के अधिकार से युक्त होकर भी नवनीत मक्खन के समान कोमलता के अधिकारी थे। संसार का उच्छेद करने वाली वास्तविक स्थिति का प्रकाश करने के लिए वे स्वकीय आत्मा के साथ एकत्व को प्राप्त हुए थे।

शान्त रस के माध्यम से मोक्ष की महत्ता दर्शायी गयी है।

आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने जयोदय महाकाव्य में सभी रसों का बड़ी सुगमता से वर्णन किया है। इनको अगर रससिद्ध कविश्वर कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जयोदय महाकाव्य में श्रृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, करुण, भयानक अद्भुत एवं बीभत्स सभी रसों की व्यंजना की गयी है। कोई भी रस अछूता नहीं रहा है। शान्त रस काव्य का अंगी रस है।

जयोदय महाकाव्य में शान्तरस की धारा गंगा के रूप में और श्रृंगार रस की धारका यमुना रुप में तथा वीररस की धारा सरस्वती रुप में प्रवाहित किया है। त्रिवेणी का संगम हमें महाकाव्य के माध्यम से हो जाता है। शान्तरस रुपी गंगा ने अपने प्रवाह से सभी को अभिष्कित किया है। तो हास्य, अद्भुत, बीभत्स, रौद्र आदि रस छोटी-मोटी पहाड़ी नदियां हैं जो समय समय पर इस गंगा में मिलकर उसकी और महत्ता बढ़ा देती है।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 28/40

अष्टम अध्याय

प्रख्यातवृत्त चमत्कार तथा जयोदय

प्रख्यातवृत्त चमत्कार – प्रख्यातवृत्त चमत्कार उसे कहते हैं जहाँ पर प्रख्यात व्यक्ति के चरित्र पर आधृत कथावस्तु में चमत्कार है, जिससे उसका कथांश प्रभावपूर्ण हो जाये। यह काव्य के प्रख्यात विषय में रहने वाला चमत्कार है। जयोदय महाकाव्य की कथा भी ऐतिहासिक व प्रख्यात है। इसके यशस्वी नायक जयकुमार के चरित्र से कथानक और भी समुज्जवल व चमत्कारपूर्ण हो गया है।

प्रख्यातवृत्त का चमत्कार देखिए –

पुरा पुराणेषु धुरा गुरुणां यमीश इष्टः समये पुरुणाम्।
श्रीहस्तिनागाश्रयणश्रियो भूर्जयोऽथ योऽपूर्वगुणोदयोऽ भूत ॥[1]

प्राचीन काल में पुराणों में प्रसिद्ध आचार्यों में प्रधान भगवान जिनसेन ने श्रीवृषभदेव तीर्थङ्कर के समय संयमियों के रुप में जिसे चाहा अपूर्व गुणों से सम्पन्न वे जयकुमार महाराज हस्तिनापुर का शासन कर रहे थे। अर्थात् हस्तिनापुर के नरेश थे।

अलंकार का अर्थ महादेव करने का यह अर्थ होगा कि वह राजा महादेव के तुल्य गुणों से समन्वित था इसी तरह श्रीः पार्वती, हस्तीगणेश, नागः–शेष तीनों के पुर अर्थात् शरीरों की शोभा के स्वामी यह रुद्रपक्ष में अर्थ होगा। वह गुणों में महादेव के समान था।

जयकुमार की कथा का प्रख्यात होना इस श्लोक से ज्ञात होता है।

अन्य उदाहरण देखिए –

तनोति पूते जगती विलासात्स्मृता कथा याऽथ कर्थ तथा सा।
स्वसेविनीमेव गिरं ममाऽऽराव पुनातु नाऽतुच्छरसाधिकारात् ॥[2]

जयकुमार की कथा की उपयोगिता बताते हुए कवि कहते हैं कि जयकुमार की जो कथा लालावश स्मरण मात्र से इहलोक और परलोक दोनों लोकों को पवित्र कर देती है वह उसी कथा की सेवा करने वाली मेरी वाणी को नवरसों के विपुल अनुग्रह द्वारा शीघ्र ही क्यों न पवित्र करेगी अर्थात् अवश्य करेगी।

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/2   2. वही, 1/4

यहाँ प्रख्यात पुरुष चरित्र पर आधृत कथाश में चमत्कार है। एक और बानगी द्रष्टव्य है –

यस्य प्रतापव्यथित:पिनाकी गङगमभङगां न जहात्यथाकी।
पितामहस्तामरसान्तराले निवासवान् सोऽप्यभवद्विशाले॥
रसातले नागपतिर्निविष्टः पयोनिधो पीतपटः प्रविष्टः।
अनन्यतेजाः पुनरस्ति शिष्टः को वेह लोके कथितोऽवशिष्टः॥[1]

इस प्रकार हाथ में खड्ग उठाने के अनन्तर महाराज जयकुमार के तेज से पीड़ित, अतएव दुःखी हो शङ्कर नित्य प्रवाहित होने वाली गंगा को कभी नहीं छोड़ते। पितामह ब्रह्मदेव ने विशाल कमल में डेरा जमा लिया। शेषनाग पाताल में जा छिपा। पीताम्बर धारी विष्णु समुद्र में जाकर सो गये। अथवा इस संसार में कौन ऐसा बचा हुआ है जो इसकी तरह बेजोड़ तेज वाला है।

जयकुमार के तेज से कथावस्तु में चमत्कार उत्पन्न हो गया है। अन्य निदर्शन अवलोकनीय है –

भवाद्भवान भेदमवाप चङगं भवः स गौरीं निजमर्धमङगम्।
चकार चादो जगदेव तेन गौरीकृतं किन्तु यशोमयेन॥[2]

कवि जयकुमार के चरित्र का यशोगान करते हुए कहते हैं कि यह राजा महादेव से भी बहुत बड़ा चढ़ा हुआ था, क्योंकि महादेव तो अपने आधे अङग को ही गौरी (पार्वती) बना सके, किन्तु इस राजा ने तो अपने अखण्डयश द्वारा सम्पूर्ण जगत को ही गौरी कर दिया अर्थात् उज्जवल बना दिया।

यहाँ जयकुमार के यशस्वी व्यक्तित्व के वर्णन में चमत्कार है।

एक अन्य निदर्शन देखिए –

प्रवर्तते किञ्च मतिर्ममेयं नभस्यभूद्र व्याप्ततयाऽप्यमेयम्।
तेजः सतो जन्मवतोऽग्रवर्तिं ध्नायितं तद्रवितामियर्ति॥[3]

जयकुमार के वृत्तगत चमत्कार से इस श्लोक में भी लालित्य आ जाता है।

मेरी (कवि की) बुद्धि तो ऐसा मानती है कि उन राजा जयकुमार का तेज सारे आकाश में फैलकर भी कुछ शेष बच गया था, जो इकट्ठा होकर

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/8–9
2. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 1/15
3. वही, 1/23

सर्व-साधारण के समक्ष दृश्यमान रवि (सूर्य) का रुप धारण कर रहा है।

जयकुमार का जो तेज बचा उससे सूर्य का निर्माण हुआ। जयकुमार की चारित्रिक विशेषताओं से ही **जयोदय महाकाव्य** की कथा में चमत्कृति के दर्शन होते हैं।

प्रख्यातवृत्तगत चमत्कार इस श्लोक में भी अवलोकनीय है -

यस्य प्रसिद्धं करणानुयोगं समेत्य तद्दिव्यगुणप्रयोगम्।
बभूव तावन्नवतानुयोगचतुष्टये हे सुग्दृढोपयोग॥[1]

उन दिव्य गुणों के धारक महाराज जयकुमार के कर्तव्य का संसर्ग पाकर प्रथमानुयोगादि चार अनुयोगों में नवीनता प्राप्त हो गयी है। उस राजा जयकुमार की पांचों इन्द्रियों का समागम पाकर चार अनुयोग नौ संख्या को प्राप्त हो गये। कारण, राजा जयकुमार ऋषभदेव भगवान् के गणधर थे। अतः उन्होंने अपने प्रयास से प्रथमादि चार अनुयोगों का निर्माण किया था।

जयकुमार के चरित्र पर आधृत कथांश में चमत्कार है।

एक अन्य ललित उदाहरण देखिए -

भालेन सार्धं लसता सदास्यमेतस्य तस्येव समेत्य दास्यम्।
सिन्धोः शिशुः पश्यतु पूर्णिमास्यं चन्द्रोऽधिगन्तुं मुहुरेव भाष्यम्॥[2]

जयकुमार की चारित्रिक विशेषताओं से कथानक में चमत्कार उत्पन्न हुआ है।

चमकने वाले ललाट के साथ इस राजा का मुख डेढ चन्द्रमा के समान था। वह बड़ा सुन्दर था। अतः समुद्र का पुत्र यह चन्द्रमा आह्लादनीय प्रभा के भाष्य का अध्ययन करने के लिए इस राजा के मुख का शिष्य बनकर बार-बार पूर्णिमा को प्राप्त हो, अर्थात् जयकुमार का मुख डेढ़ चन्द्रमा के समान था। उसकी समानता पाने के लिए चन्द्रमा यद्यपि बार-बार पूर्णिमा तक पहुँचता था, फिर भी उसकी दासता स्वीकार न करने के कारण एक चन्द्रमा ही रहकर उसके समान प्रभा न पा सका।

प्रख्यातवृत्त का मनोहारी उदाहरण देखिए -

कण्ठेन शङखस्य गुणो व्यलोपि वरो द्विजाराध्यतयाऽधराडेपि।
कर्णो सवर्णो प्रतिदेशमेष बभूव भूपो मतिसन्निवेशः॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, पूवार्ध, 1/34
2. वही, 1/55 3. वही, 1/62

हस्तिनापुर के अधिपति राजा जयकुमार के रुपवान् व विद्वता का गुणगान करते हुए कवि कह रहा है कि -

उस राजा के कंठ ने तो शंख की शोभा हरण कर ली और उसका उधर प्रशंसनीय दांतों वाला था। उसके कान अच्छी तरह सुनने वाले थे। इस तरह वह राजा जयकुमार अपने प्रत्येक अंगों से सुन्दर होते हुए वृद्धि से संयुक्त था। कारण उसका कंठ शंख का गुण मूर्खता को नष्ट करने वाला था, उसका अधर ब्राह्मणों की अर्थात् पण्डितों की संगति में रहने से श्रेष्ठ था और उसके कान तो स्वयं ही सवर्ण वर्ण श्रवणशील अर्थात् विद्वान थे।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

प्रातरादिपदपद्मयोर्गतः श्रीप्रजाकृतिनिरीक्षणे न्वतः।
नवक्तमात्मवनिताक्षणे रतः सर्वदेव सुखिनां स सम्मतः॥[1]

महाराज जयकुमार प्रातःकाल तो आदिजिनेश्वर ऋषभदेव के चरणों की सेवा पूजा में लगा रहा था। उसके बाद दिन में चारों वर्णों की प्रजा के कार्यों का निरीक्षण किया करता था। रात्रि में अपनी स्त्रियों के साथ विलासादि उत्सव में निमग्न रहता था। इस प्रकार वह सर्वदा सुखी जनों में श्रेष्ठ माना जाता था।

इससे जयकुमार की भगवान् के प्रति आस्था, प्रजा के प्रति कर्तव्य पालन, व सासांरिक सुखों में रूचि से उसका चरित्र उत्कृष्टता की श्रेणी में आता है।

मंजुल निदर्शन वक्ष्यमाण पंक्तियों में -

राजत्तवविशदस्य या स्वतः क्षीरनीरसुविवेचनावतः।
साथ मानसमय स्म रक्षति संस्तवं सुखगताय पक्षतिः॥[2]

जिस प्रकार **सुखगतायपक्षतिः** यानी सुन्दर खगता प्राप्ति के साधन पंख का मूल राजहंस की मानसरोवर की घनिष्ठता की रक्षा किया करता है, उन्हीं पंखमूलों के बदौलत गगन में उड़कर वह मानसविहार की अपनी प्रसिद्धि बनाये रखता है। वैसे ही जयकुमार की **सुखागताय पक्षतिः** अर्थात् सुख से जीवन-निर्वाह के लिए संघटित शासन-परिषद उसके सम्मानपूर्ण परिचय की रक्षा करती थी, वह सम्मान दृष्टि से ही परिचित हुआ करता था। जैसे राजहंस स्वभावतः दूध का दूध और पानी का पानी कर देता था वैसे ही यह राजा भी

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/3
2. वही, 3/7

स्वभावतः गुण और दोष का विवेक करने वाला था। इसी प्रकार राजहंस चांदी के पात्र की तरह श्वेतवर्ण का होता है वैसे ही यह राजा भी राजतत्व का पण्डित है।

इससे हमें जयकुमार के विवेकवान् होने का परिचय मिलता है। इनसे कथानक में चमत्कार उत्पन्न होता है।

समुदङ्गः समुदगाद् मार्गलं मार्गलक्षणम्।
नरराद पराड्वैरी सत्वरं सत्तवरञ्जितः॥[1]

इसमें उस समय का वर्णन है जब जयकुमार स्वयंबर सभा के लिए काशी प्रस्थान करते हैं।

प्रसन्नचित्त दूसरे राजाओं का शत्रु साहसी और बलवान् वह जयकुमार काशी गमन रुप वांछितसिद्धिरुप लक्ष्मी के बाधक मार्ग को शीघर ही पार कर गया।

प्रख्यात पुरुष जयकुमार के चरित्र पर आधृत इस कथांश में चमत्कार है।

एक और बानगी द्रष्टव्य है –

वाजिनं भजति तु भजति मुञ्चति कोषं च मुञ्चति हयरातिः।
त्यजति क्षमां त्यजत्यपि बद्धैर्ष्योऽस्मिन् यथा ख्यातिः॥[2]

बुद्धिदेवी सुलोचना को स्वयंबर सभा में जयकुमार की वीरता का गुणगान करती हुयी कहती है –

यह राजा जब प्रयाण के लिए घोड़े पर चढ़ता है तो इसका वेरी भी भयवश आत्मरक्षार्थ जिन भगवान् को भजने लगता है। जब वह कोष (म्यान) को तलवार निकालकर फेंक देता अर्थात् तलवार को नंगी कर बताता है तो वेरी भी अपना कोष (खजाना) त्याग देता है। इसी प्रकार जब यह क्षमा त्याग कर रुष्ट होता है, तो इसका वेरी भी क्षमा (पृथ्वी) छोड़ देता है। इस तरह जैसा यह राजा करता है मानो स्पर्धावश इसका वेरी भी वैसा ही करता है।

जयकुमार के पराक्रम से कथावस्तु में चमत्कार उत्पन्न होता है।

अभ्याप सुस्नेहदशाविशिष्टं सुलोचना सोमकुलप्रदीपम्।
मुखेषु सत्तां सुतरां समाप सदञ्जनं चापरपार्थिवानाम्॥[3]

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 3/109
2. वही, 6/111 3. वही, 6/131

जब सुलोचना जयकुमार का वरण करती है तब राजाओं की क्या दशा होती है उसका इसमें वर्णन है –

जब सुलोचना ने उत्तम स्नेह की दशा से विशिष्ट सोमकुल के दीपक जयकुमार को प्राप्त कर लिया तो उसी समस दूसरे राजाओं के मुखों पर सहज में ही गाढ़ अंजन ने अपनी सत्ता जमा ली, अर्थात् उनके मुख काले पड़ गये।

यहाँ पर कवि ने जयकुमार को सोमकुल का दीपक बतलाया है, दीपक में तेल और बत्ती हुआ करती है। यहां भी **स्नेह** तेल का नाम है और **दशा** बत्ती का नाम है। उससे शराब में काजल लगता ही है। एक और मनोहारी उदाहरण देखिए –

किञ्च मेघसहितप्रभोऽव्रणी खेचरैः कतिपयैः खगाग्रणाः।
मेघंनाथकतयैवेव तं तदाऽवाप्य तत्र सहकारितामदात्॥[1]

जब जयुकमार व अर्ककीर्ति के युद्ध की घोषमा रुयी तब मेघप्रभ नाम का राजा जयकुमार के शौर्यादि गुणों से प्रभावित होकर उसकी सेना में मिल गया। वह मेघप्रभ नामक विद्याधर जो कि बड़ा शक्तिशाली, दोष रहित और विद्याधरों का मुखिया था, अपने योद्धाओं के साथ जयकुमार से आ मिला और उसकी सहायता करने लगा, क्योंकि जयकुमार मेघेश्वर था।

जयकुमार के पराक्रम की ख्याति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मं व्याप्त थी। जिसके वीरतापूर्ण कार्यों से जयोदय महाकाव्य में चमत्कृति व्याप्त हो गयी है।

एक अन्य उदाहरण देखिए –

निर्गमेऽस्य पटहस्य निःस्वनो व्यानशे नभसि सत्वरं घनः।
येन भूभ्रदुभयस्य भीमयः कम्पमाप खलु सत्तवसञ्चयः॥[2]

जब जयकुमार सजधज के युद्ध के लिए प्रयाण करता है, तो उसकी भेरी की तेज आवाज शीघ्र ही सारे ब्रह्माण्ड में फैल गयी। फलतः दोनों तरफ के भूभृतों (राजाओं और पर्वतों का) सत्व संचय (आत्मभाव और प्राणिवर्ग) निश्चय ही भयभीत होकर काँपने लगा।

जयकुमार के चरित्र पर आधृत इस कथावस्तु में पराक्रम और वीरतापूर्ण कार्यों से चमत्कार आ गया है।

प्रख्यातवृत्त चमत्कार का ललित उदाहरण देखिए –

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 7/89
2. वही, 7/97

यदाशुगस्थानमितः स धीरः प्राणप्रणेता जयदेववीरः।
अरातिवर्गस्तृणतां बभार तदाऽथ काष्ठाधिगतप्रकारः॥[1]

जब प्रजा के प्राणों की रक्षा करने वाले धीर वीर जयकुमार ने धनुष उठाया तब नाना दिशाओं से आये शत्रुवर्ग ने तृणता स्वीकार की। जयकुमार के सामने शत्रु टिक नहीं सके जैसे हवा से तृण उड़ जाता है। वैसे ही वे तितर - बितर हो गये।

यहाँ प्रख्यात पुरुष जो जयकुमार है उसके चरित्र वर आधृत कथांश में चमत्कार है।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

आसीत्किलासौ बलिसप्रयोगेऽपि स्फीतिमाप्तो ग्रहणानुयोगे।
जयश्रियो देवतया प्रणीतहेतिप्रसङ्गगोऽथ जयस्य हीतः॥[2]

जयकुमार के वीरतापूर्ण महनीय कार्यो के वर्णन से प्रख्यात वृत्तगत चमत्कार उत्पन्न होता है।

जब जयकुमार व अर्ककीर्ति के बीच युद्ध हो रहा था, तो अर्धचन्द्र नामक बाण जयकुमार को विजय श्री दिलाने में कारण बना।

यह बाण देवताओं द्वारा प्रद्धत्त और बलियों के संप्रयोग से स्फूर्तिशाली हो गया था। अतः जयकुमार को विजय प्राप्त कराने में समर्थ था जैसे कि प्रणीताग्नि में बलि डालने पर वह और बढ़ती है तथा पाणिग्रहण कराने में समर्थ भी होती है उसी प्रकार इस अर्धचन्द्र बाण से जयकुमार का साथ दिया।

जगतीजयवान् भुजोरसी समवर्षतसुयशः सुतेजसी।
सितशोणमीत्विषां भिषात्स्वविभूषां ग्रजुषां प्रभोर्विशाम्॥[3]

जयकुमार के शौर्यादि का पराक्रम सारे संसार में व्याप्त था। जिससे जयकुमार के चरित्र से कथानक में चमत्कार के दर्शन होते हैं।

जगत् पति जयकुमार की भुजाओं ने सारे संसार पर विजय प्राप्त कर ली थी, इसलिए मानो अपने आभूषणों के अग्रभाग में विद्यमान, श्वेत और लाल मणियों की प्रभा के व्याज से सुयश और प्रताप की वर्षा कर रही थी।

प्रख्यात वृत्त की एक और बानगी द्रष्टव्य है -

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 8/47
2. वही, 8/79 3. वही, 10/46

अध्यात्मविद्यामिव भव्यवृन्दः
सरोजराजिं मधुरा मिलिन्दः।
प्रीत्या ययौ सोऽपि तकां सुगौर -
गात्रीं यथा चन्द्रकलां चकोरः॥[1]

जब जयकुमार व सुलोचना को पाणिग्रहण संस्कार के लिए विवाह मण्डप में लाया जाता है तब जयकुमार ने सुलोचना को उसी प्रकार देखा जिस प्रकार मुक्ति के इच्छुक भव्यजीवों का समूह अध्यात्मविद्या को, भ्रमर जैसे कमल पंक्ति प्राप्त करके, तथा चकोर पक्षी जैसे चन्द्रमा की कला पाकर प्रेम से पीता है वैसे ही उस जयकुमार ने उस सुन्दराङ्गी सुलोचना को प्रेम से पिया अर्थात् अत्यधिक आदरपूर्वक देखा।

यहाँ प्रख्यात स्त्री पुरुष सुलोचना व जयकुमार के प्रणय चित्रण से कथावस्तु में चमत्कार है।

अस्या हि सर्गाय पुरा प्रयासः परः प्रणामाय विधेर्विलासः।
स्त्रीमात्रसृष्टावियमेव गुर्वी समीक्ष्यते श्रीपदसम्पदुर्वी॥[2]

इस सुलोचना के निर्माण के लिए निश्चय ही पूर्वकाल में निर्मित स्त्रियों की सृष्टि में ब्रह्मा को महान् प्रयास करना पड़ा, उसी प्रयास से दक्षता को प्राप्त कर इस अनुपम सुलोचना की रचना की। सुलोचना को प्रणाम करने के लिए भविष्य में स्त्री सृष्टि के लिए अगला प्रयास ब्रह्मा का विलासमात्र होगा, विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। यह सुलोचना लक्ष्मीपद की शोभा के लिए आश्रय भूमि है और यही स्त्रीमात्र की सृष्टि में सर्वोत्तम प्रतीत हो रही है।

यह स्त्रियों में सर्वोत्तम रत्न है। इसके समक्ष कोई दूसरी स्त्री नहीं है। सुलोचना के अलोकसामान्य सौन्दर्य वर्णन से कथावस्तु में चमत्कार आ गया है।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

गुणिनो गुणिने त्रयीधराय मृदुवंशाय तु दीयते वराय।
त्रिविशुद्धिमता मया जयाय ह्यसको कर्मकरी शरीव या यत्॥
तन्नया विनयन्वितेति राज्ञः नयमाकर्ण्य समर्थनेकभाग्यः।
कृतवास्तदिति प्रमाणमेव वरपक्षो गुणकारि सम्पदेऽवन्॥[3]

हे सज्जनो! त्रयी विद्या के जानने वाले और उत्तम वंश वाले ऐसे इस

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूर्वार्ध, 10/118
2. वही, 11/84
3. वही 12/29-30

(धनुष) गुणवान् पर (जयकुमार) के लिए तीन पीढ़ियों में विशुद्धि वाले मेरे द्वारा यह कन्या जो कि बाण का काम करने वाली है, वह दी जा रही है, अर्थात् धनुष की सफलता जिस प्रकार बाण के द्वारा होती है उसी प्रकार इस जयकुमार का त्रिवर्ग जीवन इस सुलोचना के द्वारा सफल होगा। यह पुत्री विनय युक्त है। इस प्रकार राजा की वाणी को सुनकर उसी का समर्थन करते हुए वरपक्ष के लोगों ने अपने समाज के अभ्युदय के लिए स्वीकार किया।

जयकुमार के चरित्र में चमत्कार है। उसके गुणवान् बताया गया है।

जयतादयतावशतो रसतोऽसौ नरेन्द्रसंयोगं
य इह शारदासारधारणः पदमाभिरुचिः शुचिगः।
गगननदीमद्यापसूललितां राजहंस आख्यता -
स्तत्राम्भोजनिकायकायगतमार्गाधिरगतयातः॥[1]

जब जयकुमार स्वयंबर के पश्चात् सुलोचना व सेना के सहित हस्तिनापुर प्रयाण करता है तो रास्ते में गंगा नदी के तट पर विश्राम करता है।

यह जयकुमार जो सरस्वती के सार को धारण करने वाला है, सुलोचना के प्रति रूचि रखने वाला है और पवित्र है राजाओं में प्रमुख गिना जाता है वह आज जब नरेन्द्र के संयोग वाली सुन्दर गंगा नदी के तट पर आया तब वहाँ के कमलों के समूहों से उसके मार्ग का खेद दूर हो गया अर्थात् वह वहाँ विश्राम करने लगा।

जयकुमार के चरित्र वर्णन से कद्यांश में चमत्कार है।

एक मनोहारी उदाहरण और द्रष्टव्य है -

भवाभियं प्राप्य धियं श्रियंच सतामियन्तं सहकारिणं च।
नीतिं स लेने चतुरङगतानां रुचां स नाथश्चतुरङगतानाम्॥[2]

ज्ञानी जनों को प्राप्त शोभाओं के स्वामी उन जयकुमार ने संसार से निर्भय जिनेन्द्रदेव, सरस्वती, लक्ष्मी और सत्पुरुषों के सहकारी गणधर देव इन्हें प्राप्तकर इनकी स्तुति कर साम, दाम, दण्ड और भेद नामक चार अङ्गों के विस्तार से सहित नीति को प्राप्त किया।

जयकुमार का धर्म के प्रति निष्ठा भक्ति भावना व देव पूजन से उसके चरित्र में चमत्कृति के दर्शन होते हैं जिससे कथा वस्तु में भी चमत्कार उत्पन्न हुआ।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, पूवार्ध, 13/116
2. वही, उत्तरार्ध 19/47

एक अन्य उदाहरण देखिए –

सदनुमानिते तरलितो हिते परिषदास्पदे भरतमाददे।
यदिव खञ्जनः परमरञ्जनमथ नभस्तले शशिनमुज्ज्वले॥
अनुसमग्रहीत्तमपि किन्नहिं स च तमोऽभिमित् स्वमृदुरश्मिभिः।
कौमुदस्थितिं वर्द्धयन्निति सम्बभावतीद्धा परिस्थितिः॥[1]

जयकुमार स्वयंबर के पश्चात् अयोध्या प्रयाण करते हैं। सर्वप्रथम वे भरत चक्रवर्ती से काशी में अपने व अर्ककीर्ति के साथ हुए युद्ध के लिए क्षमा याचना के लिए उनकी सभा में जाते है।

जिस प्रकार स्वकीय हित में उत्सुक चकोर सदनुमानित नक्षत्रों से सुशोभित उज्जवल आकाश तल में परमाह्लादकारी चन्द्रमा को प्रेम भरी दृष्टि से देखता है और अपनी कोमल किरणों से अन्धकार को नष्ट करता तथा कुमुद समूह की विकास रुप स्थिति को वृद्धिगत करता हुआ चन्द्रमा उस चकोर को अनुगृहीत करता है, अपनी निर्मल चांदनी से प्रसन्न करता है और उस समय की वह स्थिति अत्यन्त सुशोभित होती है। उसी प्रकार आत्म हित में उत्कण्ठित जयकुमार ने भी सदनुमानित–सभ्य जनों से परिपूर्ण एवं पवित्र सभा स्थान में अतिशय आनन्दकारी भरत महाराज को प्रेम भरी दृष्टि से देखता है। मन्द मुस्कान तथा मधुर भाषण आदि के द्वारा अर्ककीर्ति के पराजय से कहीं महाराज भरत कुपित तो नहीं है, इस प्रकार संशय रुपी तिमिर को नष्ट करने वाले एवं कौमुदः स्थिति पृथ्वी पर प्रसन्नता की स्थिति को बढाते हुए भरत महाराज ने क्या जयकुमार को अनुगृहीत नहीं किया था ? अवश्य किया था। इस प्रकार जयकुमार व भरत के मिलने की यह परिस्थिति अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

इससे हमें जयकुमार का भरत के प्रति आदर भाव दृष्टिगोचर होता है। इससे कथावस्तु में चमत्कार उत्पन्न होता है। प्रख्यातवृत्त की एक और बानगी दृष्टव्य है –

तत्र स प्रभविधेनुगत्वतः स्नेहमाप वृषवत्सलत्वतः।
शस्यतोयजनसश्रयत्वतस्तुल्यतामनुभवन् महत्वतः॥[2]

राजा जयकुमार अयोध्या में भरत से मिलने के पश्चात् हस्तिनापुर प्रयाण करते हैं। वहाँ कवि ने हस्तिनापुर व जयकुमार उन दोनों की तुलना की है। इससे जयकुमार के चरित्र से कथावस्तु में चमत्कृति के दर्शन होते हैं।

---

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 20/8–9
2. वही, 21/44

जयकुमार उस देश में तुल्यता का अनुभव करते हुए स्नेह को प्राप्त हुए। तुल्यता निम्न प्रकार थी – जिस प्रकार जयकुमार सप्रभविधेनुग सदाचारी जनों में विनयशील थी, उसी प्रकार वह देश भी सप्रभविधेयुग अच्छी नस्ल की गायों को प्राप्त था। जिस प्रकार जयकुमार वृषवत्सल-धर्मस्नेह से सहित थे, उसी प्रकार वह देश भी वृषसत्सल-बैल तथा बछड़ों को स्वीकृत करने वाला था तथा जिस प्रकार जयकुमार शस्यतोजयनसंश्रय – प्रशंसा योग्य देश से परमात्मा की आराधना के आधार थे, उसी प्रकार वह देश भी शस्यतोयजनसंश्रय-धान्य, जल और मनुष्यों का आधार था।

सदसि यदपि भूभुजां च मान्यः सेवक इव खलु भुवो भवान्यः।
आत्मानं पश्यतोऽपि तस्य नान्यः कोऽपि बभूत दृशि ज्ञस्य॥[1]

जो राजा जयकुमार निश्चय से पृथ्वी के सेवक के समान थे अर्थात् सब लोगों के सुख-दुःख में सम्मिलित हो उनका दुःख दूर करते थे, वे राजाओं की सभा में सम्माननीय थे और जब वे सन्ध्या वन्दनादि के समय आत्मावलोकन करते थे तब उस ज्ञानी राजा की दृष्टि में कोई दूसरा नहीं रहता था, सबको वे अपने समान ही देखते थे। प्रसिद्ध भी है-

जो सबको अपने समान देखता है वही पण्डित, ज्ञानी कहलाता है। इसमें प्रख्यात पुरुष जो जयकुमार हैं उनके चरित्रोत्कर्ष से कथांश में चमत्कार है।

एक मनोहारी उदाहरण द्रष्टव्य है –

गिरं विचारेण गिरा श्रियं श्रिया सुलोचनामात्मवशं नयन्नयम्।[2]
मिथः प्रतिष्ठाप्रदया दयाश्रयस्त्रिवर्गशक्त्या स रराज राजघः॥

अनीतिकारक शक्ति सम्पन्न राजाओं को नष्ट करने वाले राजाधिराज तथा दया के आधारभूत जयकुमार विचार से वाणी को, वाणी से लक्ष्मी को और श्री शोभा से सुलोचना को अपने वश में करते हुए परस्पर सापेक्ष त्रिवर्ग शक्ति से सुशोभित हो रहे थे।

जयकुमार ने अपनी तर्कशक्ति के द्वारा सब को सम्मानित किये हुए थे तथा धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग को भोग रहे थे।

जयकुमार की चारित्रिक विशेषताओं से जयोदय महाकाव्य की कथावस्तु में चमत्कार आ गया है।

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध 22/26
2. वही, 23/4

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

समुन्नामातिलघु प्रभोः पुरो द्वयं मिलित्व शययोश्च साम्प्रतम्।[1]
शिरः स्वयं भक्तितुलाधिरोपितं गुरूत्वतश्चावननाम भूपतेः॥

राजा जयकुमार व सुलोचना पर्वतों की यात्रा पर जाते हैं। वहाँ केलाश पर्वत पर जाते हुए रास्ते में जिन मन्दिरों को देखते हैं, वहाँ जाकर वे जिनेन्द्रदेव को प्रणाम करते हैं।

इस समय भक्ति की तराजू पर चढ़े हुए राजा जयकुमार के दोनों हाथ परस्पर मिल कर प्रभु के आगे शीघ्र ही ऊपर उठ गये, परन्तु भक्ति रुप तराजू पर चढ़ा हुआ राजा का शिर गुरुता-महत्ता के कारण स्वयं नीचे की और झुक गया। तात्पर्य यह है कि राजा ने हाथ जोड़कर तथा शिर झुकाकर प्रभु को नमस्कार किया।

इससे जयकुमार की जिनेन्द्रदेव के प्रति भक्ति भावना दृष्टिगोचर होती है।

एक ललित उदाहरण देखिए -

य उपश्रुति निर्वृतिश्रिया कृतसंकेत इवाथ भूर्धियाम्।
विजनंहि जनेकनायकः सहसेवाभिललाष चायकः॥[2]

जब कांचना नामक देवी जयकुमार के सामने हाव भाव प्रकट करके संभोग की याचना करती है तो इस घटना से जयकुमार के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

जो विचार शक्तियों के स्थान थे, जनसमूह के अद्वितीय नायक थे तथा चन्द्रमा के समान शुभ भाग्य को धारण करने वाले थे। ऐसे जयकुमार ने अकस्मात् ही निर्जन वन में जाने की अभिलाषा की। इससे ऐसा प्रतीत होता था मानों मुक्तिरुपी लक्ष्मी ने कान के पास आकर मिलने का संकेत ही कर दिया हो।

यहाँ प्रख्यात पुरुष जयकुमार के चरित्र से कथाशं में चमत्कार है।

संसारसागरसुतीरवदादिवीर -
श्रीपादपादपपदं समवाप धीरः।
तत्राऽऽनमँस्तु झरदुत्तरलाक्षिमत्तवा
न्मुक्ताफलानि ललतिानि समाप सत्वात्॥[3]

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 23/66

2. वही, 25/86 3. वही, 26/69

जयकुमार भगवान् आदिनाथ के समवसरण में ले जाते हैं। वे वहाँ वृषभदेव के पास जाते है। इसका कवि ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

जयकुमार ने संसार रुपी सागर के उत्तम तटस्वरुप भगवान् वृषभदेव के चरणरुप वृक्ष के स्थान को प्राप्त किया। वहाँ नमस्कार करते हुए उन्होंने सात्तिवक भाव के कारण झरती हुई चंचल आँखों से युक्त हो मनोहर मोती प्राप्त किये।

भगवान् वृषभदेव के चरणों का सान्निध्य पाकर उनके नेत्रों से हर्ष के आँसू निकलने लगे। वे अश्रुकण मोतियों के समान जान पड़ते थे।

भगवान् वृषभदेव के प्रति अगाध भक्ति से उनके गुणों में चमत्कृति के दर्शन होते हैं।

एक और बानगी देखिए –

विधोरमृतमासाद्य सन्तापं त्यजतोऽर्कतः।
पूरणाय प्रभातं च सन्ध्यानन्दीक्षितश्रियः॥[1]

जब जयकुमार ने सांसारिक सुखों का परित्याग करके दिगम्बर मुद्रा को धारण किया और मुनि बनने के लिए कठिन परिश्रम करने लगे।

विधो : चन्द्रनामक वाम स्वर से अमृत – अमृत नामक प्राणायाम वायु को ग्रहण कर अर्कतः सूर्यनामक दक्षिण स्वर से रेचन वायु को छोड़ने वाले तथा साधुओं में शोभा सम्पन्न जयकुमार का प्रातःकाल समीचीन ध्यान की पूर्ति के लिए हुआ था, अर्थात् समस्त कार्यो की सिद्धि के लिए हुआ था।

रात्रि में विधु चन्द्रमा से अमृत लेकर दिन में सूर्य से संताप को छोड़ने वाले तथा आनन्दयुक्त जनों के द्वारा जिनकी शोभा अवलोकित है ऐसे जयकुमार के प्रभात और सन्ध्या दिन रात को पूर्ण करने के लिए होते थे, अर्थात् जब जयकुमार मुनि ध्यानारूढ होते थे तब रात्रि में चन्द्रमा उनके शरीर को शीतलता और दिन में सूर्य संताप पहुँचाता था, प्रातःकाल और सन्ध्याकाल क्रमशः निकलते जाते थे।

एक राजा होकर मुनिव्रत धारण करना बड़ा ही विचित्र है। अपने गुणों के कारण ही जयकुमार का चरित्र जगद्विख्यात है।

जयकुमार के इस उदात्त चरित्र से कथावस्तु में चमत्कार है।

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 28/61

तज्जन्मोत्थिमित्थमुन्मदसुखं लब्ध्वा यथापाकलि -
पश्चात्सम्प्रति जम्पती अदमतामेवं हृदा चारूणा।
प चाक्षाणि निर्जानि निर्मदतया तद्वृत्तमत्युत्तर्म
मडक्षूदगीतमिहोपवीतपदकैरित्युत्तृणाडक्कं मम।[1]

इस प्रकार भाग्योदय के अनुसार सांसारिक उत्तम सुख प्राप्त कर जिस दम्पत्ति ने सरल हृदय से अपनी पांचों इन्द्रियों का दमन किया था, उस दम्पत्ति जयकुमार और सुलोचना का यह उत्तम चरित मैंने यहाँ मद रहित हो संस्कारित पदों से शीघ्र ही प्रकट किया है। मेरा यह काव्य उतृणाडक-निर्दोष रहे, यह भावना है।

यं पूर्वजमहं वन्दे स वृषोत्तमपादपः।
एतदीयोपयोगायेयं सम्पल्लवता मम॥[2]

मैं जिसके पूर्व में **ज** है, ऐसे **य** अर्थात् जयकुमार को नमस्कार करता हूँ, क्योंकि वे धर्म के उत्तम वृक्ष थे। इन्हीं के उपयोग के लिये अर्थात् इन्हीं का चरित्र वर्णन करने के लिए मेरा यह समीचीन पदों का प्रयोग है, अथवा मैं उन पूर्ववर्ती गुरुवर्ग को प्रणाम करता हूँ, जो धर्म सम्बन्धी उत्तम आचरण का पालन करता था। मेरी यह शब्द रुप सम्पत्ति इन्हीं के उपयोग के लिये हैं।

जयकुमार की कथा इतिहास प्रसिद्ध है। इसलिये कवि भूरामल जी ने अपने काव्य को इस यशस्वी व्यक्तित्व से मण्डित किया है। इसलिए जयोदय महाकाव्य में चमत्कार आ गया है।

1. जयोदयमहाकाव्य, उत्तरार्ध, 28/70   2 वही, 28/71

नवम अध्याय

उपसंहार

कालिदासोत्तर संस्कृत कवियों में चमत्कार – प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रायः देखी जाती है। इस तथ्य की जानकारी संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुशीलन से होती है। आचार्य क्षेमेन्द्र के **कविकण्ठाभरण** ग्रन्थ की विशेष रुप से प्रसिद्धि है। इसमें क्षेमेन्द्र ने दस प्रकार के चमत्कार का निरुपण किया है।

दशविधश्चमत्कारः, अविचारितरमणीयः, विचार्यमाणरमणीयः, समस्तसूक्तव्यापी, सूक्तैकदेशदृश्यः, शब्दगतः, अर्थगतः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः, प्रख्यातवृत्तगश्च।

इन सभी चमत्कारों के अनेकानेक उदाहरण जयोदय महाकाव्य में मिलते हैं। जयोदय महाकाव्य के प्रणेता वाणी भूषण पं. भूरामल जी बीसवीं शताब्दी के एक प्रतिभा सम्पन्न जैन महाकवि थे। भूरामलजी ज्ञान के अगाध सागर थे। वे धर्म, दर्शन, व्याकरण और न्याय के वेत्त एवं सदाचार की साकार प्रतिमा थे। निष्परिग्रहिता, निर्ममत्व, निरभिमानिता उनके भूषण थे। कवित्व उनका स्वाभाविक गुण था।

संस्कृत जैन महाकाव्यों की विशाल परम्परा आठवीं शती से वर्तमान शती पर्यन्त कुल एक हजार दो सो वर्षो की है। इसमें 18 वीं शताब्दी एवं 19 वीं शताब्दी शऊन्य काल के रूप में परिगणित है। इस शताब्दी में रचित जयोदय महाकाव्य आचार्य ज्ञानसागर जी की वाणी के चमत्कार के रुप में प्रस्फुटित कृति है। साहित्य साधना के उ्तकट प्रयत्न जिनवाणी के प्रति अनन्य भक्ति का साक्षात् मूर्तिमान स्वरुप है। काव्य के प्राण प्रमुख श्रृंगार, वीर एवं शान्तरस का जो मधुरिम परिपाक इसमें प्रकट हुआ है वह अद्वितीय है। इतिहास पुराण सम्मत व्यापक एवं गम्भीर कथानक युक्त तथा 28 सर्गो में निबद्ध यह महाकाव्य कवि की अनल्पकल्पना की प्रसवित्री नव नवोन्मेशालिनी प्रतिभा का अभिव्यजंक है। इसमें इतिहास विश्रुत महापुरुष जयकुमार एवं पतिव्रता नारी सुलोचना की पौराणिक कथा सुगुम्पित है। जयकुमार व सुलोचना के माध्यम से मानव चरित तथा मानव आदर्श को इस महाकाव्य में दर्शाया गया है। उनकी इस काव्य रचना में महाकाव्य के लिए अपेक्षित समस्त तत्व विद्यमान है। यह उनके अगाध पाण्डित्य और अपूर्व वाग्वैदग्ध्य का अप्रतिम निदर्शन है। आचार्य ज्ञान सागरजी ने जिस भाषा लालित्य और काव्य कौशल

से काव्यगत गुणों को इस कृति में विकीर्ण किया है, वह समचमुच स्तुत्य है।

इस महाकाव्य ने जैन संस्कृत महाकाव्य की धारा को पुररुज्जीवित कर दिया। यह महाकाव्य महाकवि माघ, भारवि, और हर्ष की शैली से विशेषतः अनुप्राणित है। जयोदय महाकाव्य नेषधीयचरित महाकाव्य की शैली का नुकरण करता है जिसमें कवि ने नेषधकार हर्ष की भाँति ही प्रत्येक सर्ग के अन्त में परिचय दिया है -

श्रीमान् श्रेष्ठि चतुर्भुजः स सुषुवे भूरामलोपाह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम्।
तेनास्मिन्नुदिते जयोदयनयप्रोद्धारसारश्रितो -
नानानव्यनिवेदनातिशयवान् सर्गोऽयमादिर्गतः॥[1]

जयोदय महाकाव्य प्रतिभा के चमत्कारों से भरा पड़ा है। इसके कलापक्ष और भाव पक्ष दोनों ही सहृदयों को आहलादित करते हैं।

इस महाकाव्य में नव्यता के पदे - पदे दर्शन होते हैं। विशेषतः रसों, कल्पनाओं, अलंकारविन्यास, छन्दोयोजना एवं भाषा प्रयोग में पूर्वापेक्षया नूतन मार्ग अपनाया गया है।

श्री भागीरथप्रसाद त्रिपाठी **वागीशशास्त्री** के शब्दों में **समष्टितः** यह महाकाव्य इस शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ काव्यकला का निदर्शन है। प्राचीनता के साथ नवीनता का असाधारण समन्वय प्रस्तुत करता है। **अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः** इस उक्ति का निदर्शन एदंभुगीन किसी काव्य में देखना हो तो वह **जयोदय महाकाव्यम्**। यह अलंकारों की मंजूषा, चक्रबन्धों की वापिका, सूक्तियों और उपदेशों की सुरम्य वाटिका है। इसमें कवि के पांडित्य एवं वेदग्ध्य का अपूर्व सम्मिलन काव्य की उदात्तता का परिचायक है। काव्यक्षेत्र के अन्धकार - युग को गौरव प्रदान करने वाला यह गौरवमय महाकाव्य है। नवार्थ - घटना के लिए इसकी कहीं कहीं दुरूहता अस्वाभाविक नहीं है। प्रकृति निरीक्षण में हाकवि की सूक्ष्मेक्षिका शक्ति को उसकी कल्पना शक्ति ने पूर्णतः परिपुष्ट किया है। जयकुमार एवं सुलोचना के विषय में विरचित पूर्ववर्ती काव्यों की रत्नमाला में जयोदयमहाकाव्य अनर्ध्य मणि के रुप में देदीप्यमान हो रहा है।

महाकवि ज्ञानसागर जी की अनुपम कृति जयोदय महाकाव्य रस परिपाक, कथानक आस्फालन, भवविस्तार, कला सौष्ठव, भाषा संगठन, एवं उद्देश्यता, महनीयता के स्तर का अजात शत्रु है। इस अनुपम कृति में सर्वाधिक रमणीयता

---

1. जयोदयमहाकाव्य, 1/113

समवेत अंग है उसमें अन्तः स्फूर्ति रमणीयार्थ प्रतिपादकता। रमणीयता – प्रत्येक कार्य की उत्तम परिणति जो मानव मन को उन्नत एवं आहलादित कर दें उसमें अनुभव किया जा सकता है। सामान्यतः रमणीय शब्द का अर्थ सुन्दर, मनोरम एवं रसात्मक समझा जाता है, परन्तु शौर्य चारित्रिक गुणात्मकता, जनहित देश, सेवा, त्याग एवं मानवीय भावों से अलंकृत प्रवृत्ति में भी रमणीयता अन्तःस्यूत रहती ही है। मानव व्यक्तित्व में सरलता और गुणात्मक वृद्धि भरने वाला प्रत्येक अर्थ रमणीय है। अतः इसी व्यापक अर्थ के धरातल पर जयोदय महाकाव्य की समीक्षा की गयी है। महाकाव्य में लक्षण से लक्षित इस महाकाव्य का नायक हस्तिनापुर का क्षत्रिय नरेश जयकुमार है। अतः इसी धीरोदात्त नायक जयकुमार के जीवन चरित्र को ध्यान में रखते हुए इसका नाम **जयोदय महाकाव्य** रखा गया है। आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने संस्कृत काव्यों के नाम उदयान्त रखे है जिससे जयकुमार नायक का चरित्र अधिक ग्राहय एवं गौरव को प्रकट करने वाला है, तथा साथ ही जैन दर्शन के चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

यह काव्य कृति भाव, भाषा, काव्य सौन्दर्य, रस परिपाक वर्णन, वैचिरुप, अलङकार-योजना, भावानुरुप छन्द विन्यास, शास्त्रीय ज्ञान आदि सभी दृष्टि से अनुपमेय है। वर्णनात्मक दृष्टि से इसमें सूर्योदय सन्ध्या, दिशाओं में अन्धकार ताराओं का छिटकना, चन्द्रोदय, प्रातःकाल तथा चमत्कारिक ऋतु वर्णन आदि का महाकाव्य में वर्णन किया गया है, जो कवि की अलौकिक प्रतिभा को प्रदर्शित करता है।

कवि का उद्देश्य केवल इतवृत्त का वर्णन मात्र नहीं है बल्कि वह अपनी सफल लेखनी से ऐसा तथ्य सहृदय सामाजिक के लिए प्रस्तुत करता है जिससे पाठक को विगलितवेद्यान्तरसम्पर्कशून्य अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो सके।

संसार की निःसारता और उदवेगजनकता को देखकर महाकवियों ने लोकोत्तर आनन्द की उपलब्धि चतुवर्गफल की प्राप्ति के लिए काव्यात्मिका सरस्वती सृष्टि का निर्माण किया। इसीलिये प्रभु सम्मित वैदादिशास्त्र तथा सुहृदयसम्मित पुराण – इतिहास की शब्दावली से विलक्षण सत्कवि की मंजुभाषिणी कामिनी की भाँति मानव मन को आहलादित करती हुई उसे अपूर्व एवं अलौकिक आनन्द की उपलब्धि कराती है।

महाकवि भूरामल जी की वाणी द्वारा स्फूरायमाण दिव्य अलौकिक सरस काव्य रचना उनकी विलक्षण प्रतिभा को सूचित करती है। कवि जन

प्रतिनिधि होता है उसके विचार सबके विचार होते हैं, इसलिए उसकी अनुभूति ललित पद कदम्बक रुप में सहृदय के हृदय में प्रविष्ट होकर जड चेतनात्मक जगत से उसका तादात्म्याध्यास करा देती है। यह तादात्म्याध्यास ही तन्मयीभाव है, जहाँ अपने पराये की भावना समाप्त हो जाती है औक सहृदय सामाजिक अपने अन्त:स्थित और चिन्दविशिष्ट रत्यादिभावों का आस्वादन करता है। यह आस्वादन ही काव्य की पराउपनिषद् है ऐसी अनुभूति कराने में सक्षम कवि ही रससिद्ध कवीश्वर कहा जाता है, जिसके द्वारा पूण्यवान् व्यक्ति ब्रह्मस्वाद सहोदर रस की अनुभूति करता है।

जयोदय महाकाव्य में कला पक्ष अदभुत है और उसमें भी पदलालित्य समग्र महाकाव्य में परिव्याप्त है। कवि ने पदलालित्य योजना अनुप्रास, यमक, शब्द श्लेष, विरोधाभास आदि विविध अलङकारों के द्वारा की है। इन सब अलङकारों के माध्यम से अलङकारगत चमत्कार ने काव्य को प्रभावपूर्ण बना दिया है। जिस प्रकार कोई कमनीय कामिनी अपने विलासयुक्त पदनिक्षेप के द्वारा कामुकों के चित्त को बलात् चुरा लेती है, उसी प्रकार जयोदय महाकाव्य की अलंकारगत चमत्कार योजना युक्त कविता वनिता सहृदयों के हृदयों को बलात् आकृष्ट कर लेती है। कवि भूरामल जी ने एक शिल्पी के सदृश काव्य सौन्दर्य के लिए चुन-चुन कर ललित पदों के प्रयोग द्वारा अनिर्वचनीय लावणय राशि की सृष्टि की है।

आचार्य ज्ञान सागर जी का पदलालित्य मात्र बाह्य सौन्दर्य तक सीमित नहीं बल्कि कविता के कोमल एवं गम्भीर हृदय पक्ष का भी मर्मस्पर्शी है तथा ध्वनि प्रदर्शन के साथ रसनिष्पत्ति में पूर्णत: समर्थ है।

कवि की कविता नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा समुत्पन्न है मात्र अभ्यास जन्य नहीं। वे केवल कला प्रदर्शन तक ही सचेष्ट नहीं है बल्कि वे मानव के अन्तस तक रमने के लिए सचेष्ट है इसलिए आचार्य के पद लालित्य में श्रृङगारादि रसों के अनुकूल माधुर्य आदि गुणों और वेदर्भी आदि रीतियों का सम्यक् सम्मिश्रण मिलता है। पटलालित्य यदि रसानुकूल हो तो अधिक चमत्कारक और हृदयस्पर्शी होता है अन्यथा वह कला प्रदर्शन मात्र होता है।

जयोदय महाकाव्य रस ध्वनि से परिपूर्ण है। सामान्यतया श्रृंगारवीर, शान्त रस से भरपूर है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने परजहाँ शृंगार प्रमुख है वीर और शान्त गौण है और जहाँ वीर रस प्रमुख है वहाँ श्रृंगार और शान्त गौण है, परन्तु जब शान्त रस अपने पूर्ण वैभव और आन्तरिक्ता के साथ 28 वें सर्ग में आस्फालित होता है तो अन्य रस सर्वथा चुक ही जाते हैं। वह रस इस

महाकाव्य में अङ्गी रस है। आठवें सर्ग में जहाँ जयकुमार और अर्ककीर्ति का युद्ध वर्णन है वहाँ वीर रस की छटा देखते ही बनती है तथा 14 वें से 17 वें सर्ग में श्रङ्गार का वर्णन है।

कवि भूरामल जी ने कलापक्ष के साथ भाव पक्ष का भी अनुपम प्रयोग किया है। अनुप्रास और भिन्न विविध अलंकारं में भी पद्य रचना होते हुए भी ललित पद योजना द्वारा कवि पदलालित्य में प्रसिद्ध द्डी, माघ और हर्ष से भी आगे निकल गये हैं। नवीन रमणीय तथा अनवदय रसानुकूल पद शय्यायुक्त ललित पदावली में श्रुतिमधुरता, संगीतात्मकता और लयात्मकता का सम्यक् विनियोग जयोदय महाकाव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

काव्य में केवल पदों की तुकबन्दी नहीं हैबल्कि कवि का अभिनव ललित पदसन्निवेश सहसा सहृदयों के हृदयों को आवर्जि कर लेता है। पश्चात् अर्थ प्रतीति के माध्यम से काव्य रस में डुबो देता है।

जयोदय में अर्थगत चमत्कार की संयोजना हृदयावर्जक व आकर्षक है। अर्थगौरव के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है। अर्थ गौरव का तात्पर्य हैअल्प शब्दों में विपुल अथ4 का सन्निवेश कर देना। इसको हम गागर में सागर भरने वाली लोकोक्ति से उपमित कर सकते हैं। अर्थ गाम्भीर्य का तो यह जयोदय महाकाव्य ग्रन्थ अक्षय भंडार है। वास्तव में महाकवि भूरामल जी के बडे से बड़े अथ4 को थोड़े से शब्दो में प्रकट कर अपनी विलक्षण काव्य चातुरी दिखाई है। इस काव्यगत विशेषता के लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाये उतनी कम हैं।

अल्प शब्दों द्वारा अधिक अर्थ की अभिव्यंजना काव्य में प्रायः दो प्रकार से की जा सकती है। एक तो श्लेष, समासोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग करके दूसरे जीवन के सत्य का उद्घाटन करने वाली नीतिविषयक किन्तु रसमयी सूक्तियों के रमणीय विनियोजन द्वारा।

जयोदय महाकाव्य में भूरामल जी ने इन दोनों साधनों के द्वारा अथ4-गम्भीर्य को सशक्त कर चमत्कार उत्पन्न किया है।

महाकवि का कवित्व उस समय अधिक चमत्कारी होता है जब वे जड़ से चेतन के व्यवहार का आरोप करते हैं। वहाँ समासोक्ति अलंकार का प्रसङ्ग होता है।

श्लेष और समासोक्ति के अथ4 सङ्कुल प्रयोदों से यह महाकाव्य भरा पड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि महाकवि ने समासोक्ति श्लेष आदि के माध्यम से सास शैली में प्रस्तूयमान अर्थ गाम्भीर्य का सुष्ठु परिचय दिया है।

इन स्थलों पर महाकवि के पौराणिक ज्ञान लोकोत्तर वैदुष्य एवं गम्भीर चिन्तन का परिचय मिलता है। महाकवि भूरामल जी का वैदुष्य व्यापक था। उनकी सूक्तियाँ, नीति, राजनीति, लोक व्यवहार, धर्म दर्शन आदि के यर्थाथ एवं तलस्पर्शी ज्ञान से अनुस्युत हैं। उनमें कवि का गम्भीर पाण्डित्य झलकता है। उनका जयोदय महाकाव्य निस्सन्देह सुभाषित रतें का दैदीप्यभान भाण्डागार है।

महाकवि भूरामल जी अपने जयोदय महाकाव्य में अर्थ बाहुल्य की अभिव्यक्ति हेतु सभी अलंकारों का उपयोग करने में पूर्ण सफल हुए हैं। कवि की अनूठी कल्पना और द्विविध अर्थो को समेटने वाली प्रतिभा का मणिकांचनयोग हमें जयोदय महाकाव्य में पदे – पदे दृष्टिगत होता है। जयोदय महाकव्य अर्थ की गम्भीरता पर निबद्ध होने के कारण कई स्थल प्रभावोत्पादकता से समवेत है। यह पाठकों के दिल और दिमाग पर प्रभाव डालने में पूर्णतः सफल रहा है। ये अर्थ गौरव का निर्वाह करने वाले श्रेष्ठ कवि हैं। इनकी महत्ता किसी भी बहुश्रुत कवि भारवि आदि से कम नहीं है। महाकवि भूरामल जी ने अपने काव्य में शब्दों के द्वारा अभीष्ट अर्थ को द्योतना, कल्पना, सूक्ष्म विचारों का सुमधुर सम्मिश्रण किया है। उनका सम्पूर्ण महाकाव्य पूर्णतः समृद्ध है।

जयोदय महाकाव्य में प्रकृति वर्णन में मानवीय संवेदना के अनेक स्थल हैं। प्रकृति के नाना रुपों की व्याख्या बहुत रोचक और हृदयहारी है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने प्रथम, त्रयोदश, चर्तुदश, पंचदश, अष्टादश सर्गो में प्रकृति को उद्दीपन विभाव तथा कहीं कहीं स्वतन्त्र सहज रुप से चित्रित कियाहै। अष्टादश सर्ग में कवि ने प्रभात बेला का मनोरम चित्र अंकित किया है। यह सर्ग सम्पूर्ण काव्य में अपनी विशिष्ट रमणीयता और अर्थवत्ता के स्तर पर अनन्वय है। सूर्य चन्द्र का उदयास्त, वन पक्षियों का कलरव, सरोवर, नद, नदी, वापिका एवं उद्यान तथा बसन्त ऋतु आदि का स्वतन्त्र एवं सन्दर्भित चित्रण विशेष रुप से सहृदयजनों को आकृष्ट करता है। प्रकृति के मानवीय भावों के चित्रण से काव्य में दिव्य सजीवता का संचार हुआ है।

पं. भूरामल जी ने जयोदय महाकाव्य में अपने व्याकरण वेशिष्टय को जिस प्रकार वैयंजनिक भाषा में व्यक्त किया है वह भी अपने में विलक्षण है।

पं. भूरामल शास्त्री ने दार्शनिक और सदाचार सम्बन्धी तत्वों का निरुपण दर्शन की कर्कश शैली में नहीं किया है अपितु काव्य की मधुमय शैली में ही तत्व निरुपित है। जयोदय महाकाव्य में कवि का उद्देश्य दर्शन शास्त्र की गूढ़ और गहन बातों पर दृष्टि करना नहीं बल्कि जयकुमार एवं सुलोचना के कथा प्रसंगों के वर्णन में जीवन और जगत के रहस्यों का उदघाटन होने से विभिन्न

दार्शनिक सम्प्रदायों के सिद्धआन्तों को उपस्थापित करके अनेकान्त के आलोक में उनकी समीक्षा कर जैन दर्शन की प्रतिष्ठा की है। कवि ज्ञान सागर जी का दार्शनिक वर्णन उनके गहन दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन को द्योतित करने वाला है। जयोदय महाकाव्य में वर्णित दार्शनिक ज्ञान तत्वजिज्ञासुओं को सद्‌बोध एवं सत्य मार्ग की और अग्रसर करने में पूर्णतया सक्षम है।

आचार्य भूरामलजी ने जयोदय महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय को गिनाते हुए अर्थ और काम पुरुषार्थ लौकिक सुख के लिए और जन्मान्तरीय आगामी सुख के लिए मोक्ष पुरुषार्थ तथा धर्म पुरुषार्थ को दोनों ही जगह आवश्यक माना है। इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य ने अकर्मण्यता, देव प्राबल्य के स्थान पर पुरुषार्थों को बुद्धि पूर्वक सिद्ध करने का अमर संदेश दिया है। इस महाकाव्य की कथा को आचार्य ने **चर्तुवर्गनिसर्गवासा** कहकर चारों पुरुषार्थों को देने वाली कहा है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही पुरुषार्थों को जयोदय रुपी सागर में सम्यक संयोजना कर इस महनीय ग्रन्थ को सहृदय पाठकों के लिए परमोपादेय बना दिया है।

यह जयोदय महाकाव्य उत्तम काव्य की कोटि में गणनीय है इसमें कोई सन्देह नहीं है। महाकवि ज्ञानसागरजी ने अपनी अनल्प कल्पना शक्ति से समुचित महाकाव्य को विलक्षण बना दिया है।

इस महाकाव्य में वस्तु, अलंकार, रस इन तीनों प्रकार की ध्वनियों की अभिव्यंजना की गयी है। इस महाकाव्य में वाच्यातिशायी व्यंग्य के होने के कारण यह महाकाव्य उत्तम काव्य की कोटि में आता है। जैन दर्शन के सिद्धान्त जैसे अनेकान्तक, स्यादवाद, वस्तु की सरसरात्मकता समवाप का निराकरण आदि का चामत्कारिक काव्य की भाषा में गुम्फन करके श्री हर्ष जैसे दार्शनिक कवियों की श्रेणी में आ गये है।

इस महाकाव्य का जितना अध्ययन किया जाये उतना कम है। प्रत्येक बार रमणीय अर्थकी प्रतीति यहाँ होती है। पं. भूरामलजी का शब्द भाण्डागार अक्षय है। उनकी अलंकार योजना रसानुसारिणी है।

महाकाव्य काव्य कला का उत्कृष्ट निदर्शन है। जयोदय महाकाव्य में कदम कमद पर नवीनता के दर्शन होते है। यह महाकाव्य कवि की कल्पनाओं का अनुपम भण्डार है। जयोदय महाकाव्य में अभिनव पदलालित्य योजना, शोभाकारक अलंकारों का सन्निवेश और शान्तरस की माधुरी रुपी त्रिवेणी प्रवाहित हुई है जिसमें अवगाहन करके मानव सही रुप में सद्यः परिनिवृतिः

प्राप्त कर सकता है। नवीनता, रमणीयता तथा अनवद्य रसानुकूल पद, शययायुक्त ललितपदावली में श्रुतिमधुरता, संगीतात्मकता और लयात्मकता का सम्यक् विनियोग जयोदय महाकाव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

जयोदय का प्रयोजन आत्म कल्याण है। अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति कराना ही आचार्य ज्ञान सागर जी का अभिप्रेत है। यह महाकाव्य समाज का प्रशस्त दर्पण है। जिसमें मनुष्य अपने अवगुणों को समझकर उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें। इसमें समूचे जीवन का सार है। भूरामल जी ने जयोदय महाकाव्य का सृजन कर भारतीय संस्कृत साहित्य की समृद्धिशाली बनाया है। यह महाकाव्य काव्य एवनं साहित्य रुप उभय विषय से सम्पन्न है। यह सभी आबाल वृद्धों के पढ़ने योग्य है।

आचार्य ज्ञानसागर जी असंख्य गुणों के सागर है। इनमें ज्ञान तप, संयम, शील आदि काव्यत्व के गुण भी भरे पड़े हैं। इन्हीं गुणों के कारण उन्होंने अपने जयोदय महाकाव्य के साथ साथ अन्य काव्यों की गरिमा को बढ़ाया है। वास्तव में आचार्य जी उस प्रस्फुटित कमल की तरह है जिनकी यश रुपी सुगन्ध सारे संसार में व्याप्त है।

इतने विशाल एवं गम्भीर महाकाव्य के विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि यह कृति भावों की उदात्तता, भाषा की प्राजलता और शिल्प की अभिरामता के स्तरों पर दिवकालातीत है। कविप्रवर भर्तृहरि के समान महाकवि ज्ञान सागर जी का भी श्रृंगार वर्णन और शान्तरस वर्णन की परस्पर विरोधी स्थितियों पर असाधारण अधिकार है वे वस्तुतः लोकोत्तर महापुरुष है और उनका जयोदय महाकाव्य समस्त काव्योचित गुणों से युक्त आसाधारण महाकाव्य है।

प्रथम परिशिष्ट

जयोदय महाकाव्य में सुभाषित

1. किमन्यकैर्जीवितमेव यातु न याचितं मानि उपेति जातु समर्थवान मनुष्य अपना गौरव संभाले रखता है। भले ही जीवन समाप्त हो जाये वह कभी किसी से याचना करने नहीं जाता है। 1/72
2. अनुभवन्ति भवन्ति भवान्तकाः 1/94
   अगणित गुण जो विश्व में व्याप्त है वे ही समादर पाते हैं और संसार का अन्त करते हैं।
3. धान्यमस्ति न विना तृणोत्करम् - धान्य भूखे के बिना नहीं होता है।2/3
4. तवदूषरट के किलाफले का प्रसक्तिरुदिता निरर्गले 2/4
   औषधि के विना खुलजाने मात्र से दाद का रोग कैसे दूर हो सकता है अर्थात् कभी नहीं।
5. किन्नु काकगतमप्युपा श्रयत्यत्र हंसवदकुण्चिताश्रयः 2/9
   क्या हंस की तरह कोई उदारचेता कभी कौए की भी चाल ग्रहण करता है अर्थात् कभी नहीं।
6. सम्मता हि महतां महान्वयाः। 2/11
7. प्रस्तरेषु मणयोऽपि हि क्वचित्। 2/12
   कहीं कहीं पाषाण में भी मूल्यवान रत्न मिल जाया करते हैं।
8. नेव लोकविपरीतमलिचतुं शुद्धमप्यनुमतिर्गृहीशितुः 2/15
   शुद्ध वात भी लोकविरुद्ध होने पर गृहस्थ लोग स्वीकार नहीं करते।
9. सर्वमेव सकलस्य नौषधम्। 2/17
   सभी औषधियाँ सबके लिए उपयोगी नहीं होती।
10. वार्षिकं जलपीह निर्मलं कथ्यते किल जनैः सरोजलम् 2/33
    वर्षा का निर्मल जल तालाब में एकत्र होने पर लोग उसे तालाब का जल ही कहते हैं।
11. अज्ञता हि जगतो विशोधने स्यादना त्मसदनावबोधने। 2/45
    अपने घर की जानकारी न रखते हुए दुनिया को खोजना अज्ञता हो होगी।
12. योग्यतामनुचरेन्महामतिः कष्टकृद्भवति सर्वतो ह्यति। 2/51
    समझदार को चाहिए कि वह योग्यता से काम ले, क्योंकि अति सर्वत्र दुखदायी ही होता है।
13. श्री प्रमाणपदवीं व्रजेन्मुदा वाग्विशुद्धिरुदितार्थशुद्धिदा। 2/52
    वचन की शुद्धि ही पदार्थ की शुद्धि की विधायक होती है।

14. श्री प्रजासु पदवीं व्रजेत्परा व्यर्थता हि मरणाद्भयङ्करा। 2/59
धनहीनता मरण से भी बढकर भयंकर दुःखदायिनी होती है।

15. नाम्बुधौ मकरतोऽ हिता। 2/70
समुद्र में रहकर मगरमच्छ से विरोध करना हितवाह नहीं होता।

16. मूलमस्ति विनयो हि धर्मसात्। – धर्म का मूल विनय ही है। 2/73

17. भस्मना किममुना परिष्कृतं धान्यमस्त्यघृणितं न साम्प्रतम्। 12/77
भस्म द्वारा संस्कारित धान्य धुनता नहीं है।

18. स्वर्णमग्निकलितं हि राजते। 2/81
अग्नि के द्वारा तपाया गया सुवर्ण ही चमकदार बनता है।

19. का गतिर्निशिं हि दीपकं विना। 2/97
रात्रि में दीपक के विना गति ही क्या है।

20. देयमन्नवसनाद्वनत्पशः स्यात् परोपकृतये सतां रसः। 2/99
भले पुरुषों का वैभव तो परोपकार के लिए ही हुआ करता है।

21. कन्यकाकनककम्बलिन्विति निर्वपेद्धि जगतां मिथः स्थितिः। 2/100
संसार में जीवों का जीवन निर्वाह परस्पर के सहयोग से ही होता है।

22. नर्वमित्यथमुचिताय दीयतां हीङ्गित स्वपरशर्मणे सताम्। 2/104
सत्पुरुषों की चेष्टाएं तो अपने और पराए दोनों के कल्याण के लिए ही होती है।

23. प्रार्थयेत् प्रभुमभिन्नचेतसा चितिस्थतिर्हि परिशुद्धिरेनसाम्। 2/122
चित्त की स्थिरता ही पापों से बचाने वाली होती है।

24. सहेत विद्वानपदे कुतो रतम्। 2/140
विद्वान् पुरुष अयोग्य स्थान में की जाने वाली रति क्रीडा कैसे सहन कर सकता है।

25. भावस्तृणमिवारण्येऽभिसरन्ति नवं नवम्। 2/147
वनों में नयी नयी वास घास चरने वाली गायों की तरह व्यभिचारिणी स्त्रियाँ नवीन-नवीन पुरुषों की ओर अभिसरण किया करती है।

26. वामा गतिर्हि वामानां को नामावेतु तामितः। 2/150
निश्चय ही स्त्रियों की चेष्टाएँ विपरीत, परस्पर विरुद्ध होती है। इस संसार में कौन पुरुष उनका रहस्य जान सकता है।

27. विसारसन्ततेः किं स्याज्जीवनं जीवनं विना। 3/31
जल के विना मछली का जीवन कैसे ?

28. सहभावो हि वन्धुता। साथ देना ही वन्धुता होती है। 3/70

29. इष्टे प्रमेये प्रयतेत विद्वान् विधेर्मनः सम्प्रति को नु विद्वान् 13/85

विद्वान का कार्य है कि वह अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए प्रयत्न करता रहे।

30. योग्येन हि योग्यसङ्गमः। 3/88

योग्य के साथ योग्य का सम्बन्ध ही सुशोभित हुआ करता है।

31. शोभते शोचिषां सार्थैस्तेजस्वी तपनोऽपि चेत। 3/102

सूर्य स्वयं तेजस्वी है, फिर भी किरणों के विना उसकी शोभा नहीं होती।

32. श्री चतुष्पथक उत्कलिताय कस्यचिद् व्रजति चिन्न हिताय। 4/7

चोराहे पर धरे हुए रत्न को लेने के लिए किसका मन नहीं चाहता।

33. किंविधोः शरदि नाप्युपचारः। 4/9

क्या शरद ऋतु में चांदनी की पूछ नहीं होती (होती ही है)

34. दुग्धतो हि नवनीतमुदेति गोस्तृणानि हि समादरणेऽति। 4/21

मक्खन गाय के दूध से ही निकलता है और विना आदर के गाय भी घास नहीं खाती।

35. सविहाय हृदयं न गुणेभ्यः स्थानमन्यदुचितं खलु तेभ्यः। 4/26

क्षमादि गुणों के लिए हृदय को छोड़ दूसरा कौन सा स्थान उचित हो सकता है।

36. धीमतामपि धिया किमसाध्यम्। 4/33

बुद्धिमान के लिए कौन सा कार्य कठिन है।

37. नानुवर्तिनि रवो प्रतियाते दीपके मतिरूदिते विभाते। 5/25

प्रातःकाल के समय सूर्य के उदित होने पर दीपक को कौन याद करता है।

38. भानोरिव सोमकलां कुमुद्रतीकन्दसुकृतांशाः। 6/56

कुमुद्वती के पुण्यांश चन्द्रमा की कला को सूर्य से खींच लेते हैं।

39. याञ्चामिव निर्धनाज्जनों धनिनम्। 6/77

याचक जन अपनी याचना निर्धन मनुष्य के पास से हटाकर धनवान् के पास ले जाते हैं।

40. मुनिजन इव संसार च्वेतोवृत्तिं निजां सुहिवाम्। 6/90

मुनि लोग परितृप्त चित्तवृत्ति को संसार से हटा लेते हैं।

41. किमु देवे विपरीते परूषाण्यपि पोरूषाणि स्युः। 6/97

जब दैव विपरीत हो जाता है तो क्या पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाते है।

42. माकन्दक्षारकमिव कापि पिका सा मधो ख्याता। 6/101

बसन्तऋतु में कोयल अन्य वृक्षों को छोड़ आम के बोर पर ही पहुँच जाती है।

43. अहो मायाविना मा या मायातु सुख्तः स्फुटम्। 7/4
मायावियों की माया सरलता से साधारण लोगों की समझ में नहीं आती।
44. अहो धार्तस्य धूर्तत्वं धूर्तवज्जगजञ्चति। 7/14
धूर्त की धूर्तता धतूरे के समान दुनिया पर अपना प्रभाव जमाती है।
45. स्वातन्त्र्येण हि को रत्नं व्यक्त्वा काचं समेष्यति। 7/15
स्वतन्त्रतापूर्वक कौन रत्न छोड़ काँच ग्रहण करेगा।
46. मालाञ्चोपैमि बाहां हि नीतिविधोऽभिनन्दति। 7/31
नीतिमान् व्यक्ति अपनी भुजाओं का भरोसा करता है।
47. प्रमापणं जनः पश्येन्नीतिरेव गुरुः सतान्। 7/47
नीति ही सबकी गुरु है।
48. द्विपेन्द्रो नु मृगेन्द्रस्य सुतेन तुलनामियात्। 7/49
हाथी यद्यपि औरों से बड़ा है फिर भी वह सिंह के बच्चे की बराबरी कर सकता है।
49. नीतिरेव हि बलाद् बलीयसी 7/78
बल की अपेक्षा नीति ही बलवान् होती है।
50. स्थानं चकम्पेऽहिचरस्य तावद्भव्यस्य देवं लभते प्रभावः 8/76
भव्य पुरुषों का प्रभाव अनायास ही भाग्य को अनुकूल कर लेता है।
51. ददो यतश्चावसरेऽङ्गवत्ता निगद्यते सा सहकारिसत्ता। 8/77
मोके पर हाथ बटाना ही सहकारीपन कहा जाता है।
52. स्वास्थ्यं लभतां चित्तं ह्यादायायोग्यमिह च किमु वित्तम्। 8/82
अयोग्य धन को पाकर क्या कभी चित्त स्वस्थ, प्रसन्न हो सकता है ?
53. किमिह भवन्ति न तृणानि स्वयं जगति धान्यकणस्पुर्तेः।
इस जगत् में जमीन में धान के बीच छिटक देने पर वहाँ घास स्वयं नहीं उगती।
54. उरसि सन्निहतापि पयो र्पयत्यथ निजाय तुजे सुरभिःस्वयम्। 9/12
दूध पीते समय बछड़ा गाय की छाती में चोट मारता है, फिर भी गाय अप्रसन्न न होकर स्वयं उसे दूध ही पिलाती है।
55. यदिव कोकरुतेन दिनश्रियः समुदयः कृतनक्तलयक्रियः। 9/20
चकवे के विलाप से रात्रि चली जाती और दिन श्री का समुदय हो जाता है।
56. कथमिवान्धकलोष्ठमपि क्रमः कनकमित्युपकल्पयितुं क्षमः। 9/28
अधक पाषाण को कोई सोने का कैसे बना सकता है ?

57. सुमुखनाम चरं निदिदेश सभुवि सतां सहता हि दिशा दृशः। 9/58
सन्तों की दिशा दृष्यि की दिशा स्वभावतः सदैव अनुकूल ही हुआ करती है।

58. तपति भूमितले तपने तमः परिहृतो किमु दीपपरिश्रमः। 9/73
पृथ्वी पर सूर्य के अपने पूर्ण तेज से तपते रहते अन्धकार मिटाने के लिए क्या दीपक को थोड़े ही श्रम करना पड़ता है ?

59. भवति दीपकतोऽञ्जनवत् कृतिन् नियमा खलु कार्यकपद्धतिः।
दीपक से कज्जल अतः कारण के अनुसार ही कार्य हुआ करता है, ऐसा सर्वथा एकान्तिक नियम नहीं है।

60. उररीक्रियते न किं पिकाय कलिकाम्रस्य शुचिस्तु सम्प्रदायः। 12/31
आम की मंजरी क्या कोयल के लिए अंगीकरणीय नहीं होती ?
अपितु अवश्य अंगीकार्य होती है, यह पवित्र सम्प्रदाय सनातन है।

61. जगतां तुजुपायनोऽपि कूपः किमु नो वारिदवारिदक्षरूपः। 12/86
कुआँ दुनियाँ की प्यास को मिटाने वाला होता है फिर भी वह बरसात के पानी को संग्रह करने में तत्पर रहता ही है।

62. सरसः सुत तामृते कुतः श्रीः कमलिन्यै किल यत्पुनःसदस्त्रि। 12/98
सरोवर कमलिनी की रक्षा करता है तो कमलिनी के द्वारा सरोवर की शोभा होती है।

63. विनयान्नास्त्यपरा गुणज्ञता वे। 12/100
विनय से बढ़कर अन्य कोई गुण ग्राहकता नहीं है।

64. कार्येऽस्तु भनग्विलम्बनम्। 13/6
करने योग्य कार्य में विलम्ब करना अच्छा नहीं होता है।

65. वंशिनः प्रत्युपकारशून्याः। 13/105
उत्तम वंश वाले लोग प्रत्युपकार को भुला नहीं करते।

66. विषममदं विषस्य भवतीति। 14/39
विषं की औषधि विष ही होती है।

67. जडप्रसङ्गे मोनं हि हितम्। 14/77
जड़ मूर्खों के प्रसंग में मौन रह जाना ही हितकर होता है।

68. कलुषतामगादपि च जडानां पराभवः कष्टकरो नाना। 14/84
मुग्धबुद्धि जनों को भी पराभव नाना कष्टों का करने वाला होता है।

69. विपत्सु सम्पत्सवपि तुल्यतेवमहो तटस्था महतां सदेव। 15/2
महापुरुषों की प्रवृत्ति संपत्ति और विपत्ति में सदा एक समान होती है।

70. कृतज्ञतां ते खलु निर्वहन्ति तमामसुभ्यो प्यमलास्तु सन्ति। 15/3

जो शुद्ध स्वभाव वाले होते हैं वे प्राण देकर भी कृतज्ञता का अत्यन्त निर्वाह करते हैं।

71. लोलुपानां तु कुतः प्रबुद्धिः 16/48
लोभी जीवों को विवेक कहाँ होता है ?

72. नित्यं विभावमयदं।षविशोधनाय पङ्केरूहस्य पुरतः शशिनीऽभ्युपायः। 20/10
अपने सदातन विरोध को दूर करने के लिए कमलों के आगे चन्द्रमा का ही उद्यम हो रहा हो।

73. सर्वस्वमूल्यमिति तुल्यतयानिजस्य कुर्याच्छ्रितं लघुमपीह जनःप्रशस्यः। 20/15
उत्तम मनुष्य शरण में आये हुए साधारण मनुष्य को भी स्वयं अपने समान कर लेता है।

74. किं तत्र चाञ्चतु रुचिं चतुरस्य चेतः। 20/28
विचारशील मनुष्य का चित्त क्या रुचि कर हो सकता है अर्थात् नहीं ?

75. अर्केण बालामतिकर्कशेन किं मल्लिमालान्वयते कुशेन। 20/35
क्या अत्यन्त कठोर डाभ के द्वारा मालती की माला गूथी जाती है ?

76. मत्सी सरस्याश्रयिणी यदच्छया सा प्रेक्षते साम्प्रतमबुपृच्छया। 20/42
मछली सरोवर में स्वेच्छानुसार चलती अवश्य है, पर वह पानी की आज्ञा से ही चलती है, उसका उल्लंघन कर नहीं चलती।

77. समश्चविषमः सूक्तिरित्येषास्ति न वारिता। 20/52
कभी मित्र भी शत्रु हो जाते हैं।

78. भाले विशाले दुरितान्तकाले भवन्ति भावा रमिणां रमासु। 21/82
पाप कर्म का अन्त अर्थात् पुण्य कर्म का उदय होने पर स्त्रियों के विषय में पुरुषों के अनुकूल भाव होते ही हैं।

79. विभवमयो रवसम्पदा पिकः। 22/4
श्वसम्पदा, आशिक सम्पदा से कौन मनुष्य वैभवसाली होता है।

80. यदपाङ्गश्चित्रं सो भूत्कण्टकिताङ्गः। 22/38
अङ्गहीन व्यक्ति के द्वारा काटों का विस्तार करना सम्भव नहीं है।

81. अभ्यागतस्य विश्रान्तये सा छायेवोपकारिणी। 22/82
छाया अतिथि के विश्राम के लिए उपकारिणी थी।

82. अहो दुरन्ता भवसभवावनिः। 23/19
वास्तव में जन्म से सहित यह पृथ्वी दुःख रूप परिणाम से सहित है।

83. तदावचेतुः परितः प्रवृत्तिः सखीषु सख्यं व्यसनेऽनुवृत्तिः। 23/21
विपत्ति में साथ रहना ही मित्रता कहलाती है।

84. महात्मनामप्यनुशिष्यते धृतिरहो न यावद् विनिरेति संसृतिः। 23/34
जब तक संसार निवृत्त नहीं होता है तब तक महापुरुषों की भी आकांक्षा अवशिष्ट रहती है।

85. अहो जगत्यां सुकृतैकसन्ततेरभीष्टसिद्धिः स्वमेव जायते। 23/35
पृथ्वी पर पुण्य की अद्वितीय परम्परा से वांछित अर्थ की सिद्धि स्वयमेव हो जाती है।

86. यथाङ्कुरोत्पादनकृद् धनागमः फलत्यहो किन्तु शरत्समागमः। 23/36
वर्षा ऋतु अंकुर उत्पन्न करती है परन्तु फल देता है शरद ऋतु का आगमन।

87. अहो सज्जनसमायोगो हि जगतामापदुद्धर्ता। 23/42
सत्पुरुषों का समागम समस्त जीवों की आपत्ति दूर करने वाला होता है।

88. भवान्तरारिः स्वरितो च किन्तु महो जनाः सत्तपसा व्रजन्तु। 23/70
नमीचीन तप से मनुष्य उत्तम प्रभाव को प्राप्त होता ही है।

89. स्थाने मनः प्रण्यनं हि भवेन्महत्तवम्। 23/84
समुचित स्थान में मनका जाना ही महत्त्वपूर्ण होता है।

90. कस्य लब्धिर्न युगस्य दत्तिः। 24/88
लेना एक न देना दो।

91. चिन्तामर्णि प्राप्य नरः कृतार्थः किमेष न स्याद्विदिताखिलार्थ। 24/94
चिन्तामणि रत्न को प्राप्त कर क्या मनुष्य कृतार्थ नहीं होता।

92. सुमानि सम्प्राप्य सुगन्धिमन्ति सौगन्ध्यमारान्नृशयं नयन्ति। 24/95
सुगन्धित पुष्प अपने संपर्क से मनुष्य के हाथ को सुगन्ध प्राप्त करा ही देता है।

93. मुहरहो स्वदिते ज्वलिताधरः स्विदभिलाषपरो मरिचीं नरः। 25/23
चटपटा खाने का अभिलाषी मनुष्य ओठ के जलते रहने पर भी बार-बार मिर्च का स्वाद लेता है।

94. असुहतिष्वपि दीपशिखास्वरं शलभ आनिपतत्यपस म्बरम्। 25/24
पतिंगा प्राणघात करने वाली दीप शिखाओं पर बिना किसी प्रतिबन्ध के शीघ्र ही आ पड़ता है।

95. शिरसि सन्निहिताश्छगलो बलावपि धृतोत्ति मुदा यवतण्डुलान्। 25/35
बलि के संकल्पित बकरा शिर पर रखे हुए जौ और चावलों को प्रसन्नता से खाता है पर मृत्यु की ओर नहीं देखता।

96. अनयनस्य वटोवलनं पुनः कवलितं च शकृत्करिणा ततः। 25/68
अन्धा वटे बछड़ा खाय।

97. सत्या त्वदुक्तिः शतपत्रनीतिर्गुणेषु नष्टेषु परेऽपि हीतिः। 26/81

गुणों के नष्ट होने पर गुणी भी नष्ट हो जाता है।

98. प्रयोजनाधीनकवन्दनस्तु विलोकते क्वापि जन न वस्तु। 27/52

जो अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए आत्मा की वन्दना करता है, वह अपने प्रयोजन के अतिरिक्त कहीं भी किसी वस्तु को नहीं देखता है।

99. अङ्गिनः स्वतलसादभासिनी दीपिकेव जगते प्रकाशिनी। 27/62

संसारी मनुष्य की बुद्धि दीपक के समान यद्यपि जगत् को प्रकाशित करती है परन्तु अपने आपको प्रकाशित नहीं करता।

100. रमणी रमणीयत्व पतिर्जानाति नो पिता। 28/82

स्त्री के सौन्दर्य को पति जानता है, पिता नहीं।

101. कथमप्यैमि गुर्वीकः शस्यसम्पत्करं खलम्। 28/94

खलिहान भूसा से धान्य को अलग कर देता है।

102. निराश्रया न शोभन्ते वनिता हि लता इव। 3/65

स्त्रियाँ लताओं की तरह आश्रय विहीन होकर कभी सुशोभित नहीं हुआ करती है।

103. हीराधा हि कुतः प्रतिपाद्याशिचिन्तामणो लसाति पूते। 8/91

चिन्तामणि रत्न के प्राप्त हो जाने पर हीरा, पन्ना आदि का कोई प्रयोजन ही नहीं।

द्वितीय परिशिष्ट

अनुशीलित एवं सन्दर्भित ग्रन्थों की सूचि

अलङ्कार सर्वस्व	रूय्यक
अलंकार चिन्तामणि	आचार्य अजितसेन
अपप्रभंश भाषा साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ	देवेन्द्र कुमार शास्त्री
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास, निर्णय सागर प्रेस।
आदि पुराण (भाग-1)	आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, वर्ष 1963
आदि पुराण (भाग-2)	आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, वर्ष-1965
औचित्यविचारचर्चा	क्षेमेन्द्र, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, वर्ष-1968
आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान	नित्यानन्द शर्मा
आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प	कैलाश वाजपेयी
कविकण्ठाभरण	क्षेमेन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, बनारस, प्रथम संस्करण, प्रा. वामन केशव लेले, वर्ष-1967
काव्यप्रकाश	मम्मटाचार्य, ज्ञानमण्डल, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, वर्ष-1960
काव्यादर्श	आचार्य दण्डी, भण्डारकर इन्स्टीट्यूट, पूना, प्रथम संस्करण, सन् - 1928
काव्यालंकार	भामह, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, सन् - 1928
काव्यानुशासन	हेमचन्द्र, निर्णयसागर प्रेम बम्बई, द्वितीय संस्करण, वर्ष-1934
चमत्कार चन्द्रिका	श्री आचार्य विश्वेश्वर।
चन्द्रभचरित	वीरनन्दी, जैन संस्कृत संरक्षक संघ, शोलापुर, प्रथम संस्करण, सन् 1971
चित्रमीमांसा	अप्प्रय दीक्षित।

जयोदय महाकाव्य (पूर्वार्ध)	श्री वाणीभूषण पं. भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, जयपुर (राजस्थान), द्वितीय संस्करण, सन्-1994, पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री।
जयोदय महाकाव्य (उत्तरार्ध)	श्री वाणी भूषण पं. भूरामल जी शास्त्री, (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट जयपुर) राजस्थान, द्वितीय संस्करण डा. पन्नालाल साहित्याचार्य, सन्-1994
जैन धर्म	सिद्धान्ताचार्य श्री कैलाश चन्द्र शास्त्री मन्त्री, साहित्य विभाग, भारतीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा, चतुर्थ संस्करण, वर्ष-1966
जैन धर्मामृत्	हीरासिद्धान्त शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सं. 1965
जैन संस्कृत काव्य समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. नेमचन्द्र शास्त्री अखिल भारतीय विद्युत परिषद्
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-1 अंग आगम)	पं. पेचरदास दोशी, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जेनाश्रम हिन्दू युनिवर्सिटी, वाराणसी 1966, पं. दलमुख मालवणिया एवं मोहनलाल मेहता।
जैन साहित्य का बृहद्इतिहास (भाग-2 अंगबाह्य आगम)	डॉ. जगदीश चन्द्र जैन व डॉ. मोहन लाल मेहता, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी-5, वर्ष 1966 पं. दलसुख मालवणिया एवं डॉ. मोहनलाल मेहात।
जैन साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग-3 आगमित व्याख्याएँ)	डॉ. मोहनलाल मेहता, अध्यक्ष-पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान एवं सम्मान्य प्राध्यापक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी पार्श्वनाथ विद्याश्रम

	शोध संस्थान, जेनाश्रम, सन-1967 पं. दलसुख मालवणियां एवं डॉ. मोहन लाल मेहता (सम्पादक)
जैन साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग-4, कर्म साहित्य व आगमिक-प्रकरण)	डॉ. मोहन लाल मेहता व प्रो. हीरा लाल र. कापडिया, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जेनाश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-5, सन् 1968 पं. दलसुख मालवणिया एवं डॉ. मोहन लाल मेहता (सम्पादक)
जैन साहित्य का वृहद् इतिहास (भाग-5 लाक्षणि साहित्य)	पं. अंबालाल प्रे. शाह पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोख संस्थान, जैनाश्रम हिन्दु यूनिवर्सिटी, वाराणसी-5, सम्पा. पं. दलसुख मालवणिया एवं डॉ. मोहनलाल मेहता, सन् 1969
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-6 काव्य-साहित्य)	डॉ. गुलाब चन्द्र चौधरी पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान सम्पा. पं. दलसुख मालवाणिया एवं डॉ. मोहनलाल मेहता, हिन्दू युनिवर्सिटी वाराणसी-5, वर्ष 1973
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (भाग-7 कन्नड, तमिल, मराठी जैन साहित्य)	पं. के. भुजवली शास्त्री, श्री पी. टी. मीनाक्षी सुन्दरम पिल्ले, डॉ. विद्याधर जोहरापुरकर एवं श्री रंग शोरिराजन पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान सम्पा. सागरमल जैन, वाराणसी-5, वर्ष-1981
जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष (भाग-2)	जैनेन्द्र वरणी, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली।
जैन दर्शन	डॉ. मोहन लाल मेहता, श्री सन्मति ज्ञान पीठ, लोहा मण्डी, आगरा, प्रथम संस्करण, वर्ष-1959
दयोदय (चम्पूकाव्य)	आचार्य ज्ञान सागरजी महाराज डॉ. दरबारी लाल कोढिया न्यायाचार्य वीना (म. प्र.) द्वितीय संस्करण, 1994
धर्मदर्शन-मनन और मूल्यांकन	देवेन्द्र मुनि शास्त्री

	श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर, प्रथम संस्करण, वर्ष–1985
ध्वन्यालाके	आनन्दवर्धन, ज्ञानमण्डल लि., वाराणसी, वि. सम्वत् 2019
नाट्यशास्त्र	भरत मुनि, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1964
नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र, दिल्ली वि. वि., सन् 1961
नेषधचरितम् महाकाव्य	श्रीहर्ष, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
प्रवचन सार	श्री मद्भगवत्कुन्दाचार्य, श्री वाणी भूषण पं. भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर (राजस्थान) द्वितीय संस्करण, वर्ष–1994
प्राकृतकथा साहित्य परिशीलन	प्रेम सुमन जैन।
प्राचीन भारतीय संस्कृति	ईश्वरी प्रसाद।
वीरोदय महाकाव्य	श्री वाणी भूषण, पं. भूरामल शास्त्री, (आचार्य ज्ञान सागरजी महाराज) प्रकाशक–श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, अजमेर (राजस्थान) सम्पा. पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री द्वितीय संस्करण, 1994
विवेकोदय	क्षु. 105 श्री ज्ञान भूषण जी महाराज (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) सम्पा.–डॉ. दरवारीलाल कोढिया न्यायाचार्य, वीना श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट–अजमेर (राजस्थान) द्वितीय संस्करण, 1994
वक्रोक्ति जीवित	कुन्तक, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, व्याख्याकार–राधेश्याम मिश्रा प्रकाशन वर्ष सम्वत् 2039
बृहत्कथामंजरी	क्षेमेन्द्र, द्वितीय संस्करण, 1931

भारतीय दर्शन	आचार्य उमेश मिश्र, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, द्वि. सं., वर्ष-1964
भारतीय दर्शन	आचार्य बल्देव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, रवीन्द्र पुरी दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, नवीन संस्करण, 1971
भारतीय संस्कृत के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान (खण्ड-1)	नेमचन्द्र शास्त्री।
भाग्योदय	श्री ज्ञानसागर जी महाराज, श्री जैन समाज-हॉसी, प्र. सं. सन् 1945
भारतीय साहित्यशास्त्रकोष	सम्पादक-डॉ. राजवंश सहाय हीरा विहार हिन्दी ग्रन्थ अदादमी।
भक्तिरसामृतसिन्धु	रुप गोस्वामी, प्र. सं. सन् 1963
भारतीय साहित्य शास्त्र (प्रथम भाग)	अपचार्य बल्देव उपाध्याय।
महापुराण (भाग-2)	महाकवि पुष्पादत्त, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. वर्ष-1979, सम्पा.-डॉ. पी. एल. वेद्य, अनुवादक, डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन (एन. ए. पी.-एच. डी.)
महाकवि आचार्य ज्ञानसागर अध्यात्म संदोहन	श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, जयपुर (राजस्थान) प्र. सं., सम्पा. डॉ. अरूण कुमार जैन शास्त्री, वर्ष-1996
महाकवि ज्ञानसागर के काव्य: एक अध्ययन	डॉ. किरण टण्डन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
मुनि मनोरञ्जना शीतिः	वाणीभूषण पं. भूरामल जी शास्त्री, (आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज) श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर (राजस्थान) सम्पा. डॉ. दरवारीलाल कोठिया, द्वि. सं., 1994
रस सिद्धान्त	डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, वर्ष-1964
रसगंगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, त. सं., सन्-1970

रघुवंशम्	कालिदास, चोखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।
शिशुपालवध	महाकवि माघ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र. सं. सन् 1952
श्रृंगार शतक	भर्तृहरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सन् 1979
श्रीतत्वार्थ-सूत्र-महाशास्त्र की तत्वार्थ दीपिका	हिन्दी टीकाकार श्री 105 क्षु. श्री ज्ञान भूषण जी महाराज (आचार्य ज्ञान सागर जी) श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज -अजमेर (राजस्थान) वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, द्वि. सं., वर्ष-1994
सुदर्शनोदय	वाणीभूषण पं. भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट, अजमेर (राजस्थान) द्वितीय संस्करण, 1994, सम्पा. पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री।
संस्कृत काव्यशास्त्र	पाण्डुरंग वामन काणे, इन्द्रचन्द्र शास्त्री, अनु. मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी।
संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान	डॉ. नेमचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
संस्कृत हिन्दी शब्द कोश	वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, द्वि. सं., 1966
संस्कृत साहित्य का इतिहास	बल्देव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, वर्ष 1968
सम्यक्त्व सार शतक	वाणीभूषण पं. भूरामल जी शास्त्री (आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज) श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज, अजमेर (राजस्थान) वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, जयपुर, सम्पा. दरवारी लाल कोढिया, न्यायालय, वीना (म. प्र.) द्वि. सं. 1994
साहित्यदर्पण	आचार्य विश्वनाथ, चोखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, प्र. सं., वर्ष-1969

संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, प्र. सं. सन् 1957।
सल्लेखना दर्शन	डॉ. रमेश चन्द्र जैन, श्री तामपत्र, शास्त्र एवं प्रकाशन समिति श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटामन्दिर ललितपुर (उ. प्र.) प्र. सं., वर्ष-1994
समयसार	आचार्य कुन्द कुन्द, आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज, श्री दिगम्बर जैन समिति एवं सकल दिगम्बर जैन समाज अजमेर (राजस्थान) द्वि. सं. वर्ष 1994
हिन्दी वक्रोक्तिजीवित	हिन्दी व्याख्या आचार्य विश्वेश्वर दिल्ली दिल्ली द्वारा प्रतिपादित।
History of Sanskrit Poeties	P.V. KANE, Motilal Banaidas, Varanasi, IIIrd Ed., 1961
Indian thought through the ages	V. G. Gokhie
Kshemendra Studies	Dr. Suryakanta
A History of Sanskrit Literature	Dr. A. B. Keith
Problems of Modern aesthetios artistic image	Mthain obsyannikob

पत्र - पत्रिकाएँ

1. जैन मित्र, अज्ञात, जैन प्रकाशन सूरत, अप्रेल सन् 1966 ई.।
2. बाहुबली सन्देश मासिक प्रपत्र।
3. संस्मरण - श्री ज्ञान सागर जी महाराज का संक्षिप्त जीवन परिचय मुनि संघ व्यवस्था समिति नसीराबाद (राजस्थान) सन् 1974 ई.

ग्रन्थमाला प्रकाशन - सूची पत्र

भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला अतिशय क्षेत्र सांगानेर (जयपुर) से निम्न पुस्तकें आज तक प्रकाशित हो चुकी हैं

1. **प्रवचनसार** 75/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
2. समयसार 80/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
3. जयोदय महाकाव्य
   (पूर्वार्ध एवं उत्तरांश) 150/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
4. वीरोदय महाकाव्य 100/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
5. सुदर्शनोदय महाकाव्य 75/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
6. दयोदय (चम्पू) 30/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
7. विवेकोदय 30/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
8. समुद्रदत्त चरित्र (भाग्योदय) 30/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
9. सम्यक्त्व सार शतक 60/-
   महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
10. तत्वार्थसूत्र महाशास्त्र 60/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
11. मुनि मनोरंजनाशीति 20/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
12. भक्ति संग्रह 20/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
13. हित सम्पादक 30/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
14. मानवधर्म (हिन्दी) 30/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
15. कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन 30/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
16. भाग्य परीक्षा 25/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
17. ऋषभ चरित्र 26/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
18. गुण सुन्दर वृत्तान्त 20/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
19. सरल जैन विवाह विधि 15/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
20. पवित्र मानव जीवन 20/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
21. सचित्त विवेचन 12-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
22. सचित्त विचार 12/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
23. स्वामी कुन्दकुन्द और
    सनातन जैन धर्म 20/-
24. इतिहास के पन्ने 15/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
25. शांतिनाथ पूजन विधान 20/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
    (अनुवादक निहालचन्द जैन)
26. मानवधर्म (अंग्रेजी) 50/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
27. सुदर्शनोदय (अंग्रेजी) 100/-
    महाकवि आचार्य ज्ञानसागरजी
    (डॉ. बलजीतसिंह)
28. महा. आ. ज्ञानसागरजी के हिन्दी साहित्य
    की मौलिक विशेषताएं 10/-
    डॉ. के. एल. जैन
29. महाकवि आ. ज्ञानसागरजी संस्कृत
    साहित्य में प्रकृति चित्रण की

विशेषतायें 10/-
डॉ. किरण टण्डन

30. महाकवि आ. ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन 65/-
डॉ. किरण टण्डन

31. आ. ज्ञानसागर साहित्य में पर्यावरण एक दृष्टि 50/-
पं. निहालचन्द जैन

32. आ. ज्ञानसागर द्वारा स्मृत साहित्य 50/-
डॉ. रमेश चन्द जैन

33. आचार्य विद्यासागर ग्रन्थावली I, II, III, IV 100/-, 85/-
आ. विद्यासागर जी

34. विद्याधर से विद्यासागर 50/-
डॉ. सुरेश "सरल"

35. जे गुरू चरण जहां पड़े 20/-
एलबम

36. आध्यात्मिक पनघट 15/-
मुनि श्री सुधासागर जी

37. नग्नत्व क्यों और कैसे ? 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

38. मुनि का मुखरित मौन 15/-
(कविताएं)
मुनि श्री सुधासागर जी

39. अद्यो सोपान 15/-
मुनि श्री सुधासागर जी

40. जीवन एक चुनौती 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

41. सम्यक्त्वाचरण 10/-
मुनि श्री सुधासागर जी

42. दृष्टि में सृष्टि 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

43. तीर्थप्रवर्त्तक 35/-
मुनि श्री सुधासागरजी

44. श्रुत दीप 16/-
मुनि श्री सुधासागरजी

45. जियें तो कैसे जियें ? 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

46. चित्त चमत्कार 14
मुनि श्री सुधासागरजी

47. संस्कृति संस्कार 14/-
मुनि श्री सुधासागरजी

48. नियति की सीमा 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

49. फूटी आंख विवेक की 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

50. नाव और नाविक 15/-
मुनि श्री सुधासागरजी

51. कड़वा मीठा सच 20/-
मुनि श्री सुधासागरजी

52. वास्तुकला का कीर्तिस्तम्भ 7/-
मुनि श्री सुधासागरजी

53. सुधा सन्दोहन 5/-
मुनि श्री सुधासागरजी

54. मु. श्रीसुधासागरजी व्यक्तित्व और कृतित्व 35/-
मुनि श्री सुधासागरजी

55. कुन्द-कुन्द वाणी 15/-
विशेषांक

56. अंजना पवनंजय नाटकम् 20/-
मुनि श्री सुधासागरजी

57. आदिब्रह्मा ऋषभदेव 25/-
अनुवाद डॉ. रमेशचंद जैन

58. बौद्ध दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा 30/-
डॉ. रमेशचंद जैन

59. हे ज्ञानदीप आगम प्रणाम 10/-
डॉ. रमेशचंद जैन

60. वास्तुसार प्रसाद मंडन 125/-

61. वास्तुसार प्रकरण 125/-
श्री परम जैन चन्दाडगज ठक्कर फेरू

62. सल्लेखना दर्शन 20/-
सम्पादक-डॉ. रमेशचन्द जैन
सल्लेखना पर विद्वत् संगोष्ठी-ललितपुर

63. विश्व के कीर्तिस्तम्भ 151/-
नवगजरथ स्मारिका ललितपुर

64. कीर्तिस्तम्भ 185/-
आ. ज्ञानसागर द्वारा रचित वीरोदय पर
द्वितीय विद्वत संगोष्ठी, अजमेर (राज.)

65. लघुत्रयी मंथन 90/-
(आ. ज्ञानसागर द्वारा रचित सुदर्शनोदय
भद्रोदय/दयोदय पर तृतीय विद्वत्
संगोष्ठी-ब्यावर)

66. जयोदय महाकाव्य परिशीलन150/-
(आ. ज्ञानसागर रचित जयोदय पर
चतुर्थ विद्वत संगोष्ठी-किशनगढ़)

67. महाकवि आ. ज्ञानसागर अध्यात्म
सन्दोहन आ. ज्ञानसागर साहित्य पर
पंचम विद्वत संगोष्ठी, जयपुर 90/-

68. जैन दर्शन में रत्नत्रय का स्वरूप 20/-
डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन

69. जैन राजनैतिक चिंतनधारा 20/-
डॉ. विजय लक्ष्मी जैन

70. जयोदय महाकाव्य का
समीक्षात्मक अध्ययन 45/-
डॉ. कैलाशपति पाण्डेय

71. जयोदय महाकाव्य का शैली
वैज्ञानिक अनुशीलन 35/-
डॉ. कु. अनुराधा जैन

72. सर्वार्थसिद्धि का समीक्षात्मक
अध्ययन 50/-
डॉ. सीमा जैन

73. पासणाहचरिउ-एक समीक्षात्मक
अध्ययन 50/-
डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

74. संस्कृत साहित्य में बीसवीं शताब्दी
के जैन मनीषियों का योगदान 50/-
डॉ. नरेन्द्रसिंह राजपूत

75. चारित्र चक्रवर्ती 80/-
पं. सुमेरचन्द दिवाकर

76. मोक्ष मार्ग प्रकाशक 65/-
पं. टोडरमलजी

77. नीति वाक्यामृत 65/-
प. सोमदेव

78. आहारदान कैसे 8/-
श्री देशराज 'एडवोकेट'

79. माँ मुझे मत मारो 15/-
डॉ. सुनील जैन एवं त्रिशला जैन

80. जिनपूजा 25/-
संकलन

81. महाकवि आ. विद्यासागर की साहित्य
साधना एवं शोध संदर्शिका 15/-
मुनि श्री सुधासागर जी

82. आ. ज्ञानसागरवाङ्मय में नय निरूपण
पं. शिवचरण लाल जैन 35/-

83. आ.ज्ञानसागर साहित्य में चित्रालंकार
डॉ. रुद्रदत्त त्रिपाठी 30/-

84. आ. विद्यासागर का व्यक्तित्व एवं
काव्यकला 50/-
डॉ. माया जैन

85. महापर्व-राज 20/-
मुनि श्री सुधासागर जी

86. जिन्दगी का सच 15/-
मुनि श्री सुधासागर जी

87. पणमामि चरणं विसुद्धतरं
मुनि श्री सुधासागरजी

88. सुधासागर हिन्दी इंग्लिश डिक्शनरी
सम्पादक - डॉ. रमेसचंद 300/-

89. सांख्य दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा
डॉ. शक्तिबाला कौशल

90. आ.ज्ञानसागर की साहित्य साधन एवं सांगानेर जिन बिम्ब दर्शन
91. शोध संदर्शिका महाकवि आचार्य ज्ञानसागर के वाङ्मय समाहित शोध विषयक शीर्षक
प्रेरणा मुनि सुधासागरजी 70/-
92. अब आई अक्ल ठिकाने 15/-
मुनि श्री सुधासागर जी
93. ऋषभदेव चारित्र 40/-
आचार्य ज्ञानसागर जी
94. व्रत विधि विधान संग्रह 20/-
95. सांगानेर वाले बाबा भगवान आदिनाथ पूजन आरती चालीशा 5/-
96. भद्रोदय (अंग्रेजी) 50/-
97. सामान्य-ज्ञान-प्रथम 15/-
क्षु. गम्भीरसागर जी
98. पार्श्वनाथ चरित्र 50/-
जय कुमार जैन
99. ज्ञान का सागर 50/-
सुरेश सरल
100. समागम 15/-
101. सुधा का सागर 60/-
सुरेश सरल
102. वसुधा पर विद्यासागर 15/-
103. आ. विद्यासागर ग्रन्थावली परीक्षीलन सीकर स्मारिका रमेशचन्द 150/-
104. पथ ऑफ ड्यूटी 35/-
105. गुण सुन्दर व्रतांत में आगम कथायें
श्रीमती अलका मिश्रा 50/-
106. आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण परिशीलन (कोटा स्मारिका) 150/-
पं. सुरेन्द्र कुमार जैन
107. वीरोदय महाकाव्य की सूक्तियों का समीक्षात्मक अध्ययन 20/-
हेमंत सिंह रावत
108. आचार्य ज्ञान सागर द्वारा विरचित ''जयोदय'' महाकाव्य ''चमत्कारतत्व'' के परिप्रेक्ष्य मे समीक्षात्मक अध्ययन 50/-
109. अनेकान्त एवं स्याद्वाद विमर्ष 35/-
110. छहढ़ाला 15/-
पं. चम्पालाल जैन विशारद
111. दिगम्बरत्व एवं दिगम्बर मुनि 35/-
112. आचार्य ज्ञानसागर महाराज का दार्शनिक अवदान 50/-
113. रत्नकरण्ड श्रावकाचार 15/-
पं. मोहनलाल शास्त्री
114. आदर्शों के आदर्श 20/-
प्रवचन आचार्य विद्यासागरजी
115. सांगानेर वाले बाबा की कथा 35/-
सुरेश सरल
116. अमृत वाणी 35/-
प्रवचन-मुनि श्री सुधासागर महाराज
117. सुधा वाणी 25/-
118. नित्य पूजा 20/-
119. तत्वार्थ सूत्र (गुटका) 5/-
120. अंहिसा का शंखनाद 10/-
121. आचार्य ज्ञानसागर के हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन
डॉ. राजुल जैन 50/-
122. जयोदय महाकाव्य का दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन 50/-
डॉ. रेखा रानी
123. परम सुधासागर 50/-
पं. लालचन्द जैन 'राकेश'
124. मुनि सुधा सागर व्यक्तित्व और सृजन
डॉ. दीपक कुमार जैन 60/-
125. यागमण्डल पंचकल्याणक पूजन संकलन ब्र.सुरेन्द्र जैन 'सरस' 25/-

Printed by : Deepak Banti Jain, Ajmer Mob. : 94141-56061

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी, सांगानेर, जयपुर का विहंगम दृश्य